कटिककारन-मञ्जूषा

१.४

गया।
मौसम कार्यालय से आज शाम प्राप्त
के अनुसार इस अवधि में गोरखपुर,
ी, फैजाबाद, इलाहाबाद और लखनऊ
के अनेक स्थानों में वर्षा हुई।
ामपुर के अलावा बहराइच में इस दौरान
मी, ककरेहा में ६ सेमी बस्ती में चार,
र और बांसी में दो दो सेमी तथा रिगौली
सेमी वर्षा रिकार्ड की गयी।
ले २४ घण्टे के दौरान फैजाबाद,
क और वाराणसी मंडलों में दिन के
न में काफी गिरावट आयी। इस दौरान
में सर्वाधिक ३४ डिग्री सेल्शियस तापमान
सी में रिकार्ड किया गया
ले ४८ घंटे में प्रदेश के गोरखपुर,
सी, फैजाबाद, गढ़वाल और कुमायूं
तथा इलाहाबाद एवं फतेहपुर जिलों में
वर्षा होने की संभावना है। इसके अलावा
के शेष स्थानों में वर्षा होने का अनुमान है।

# स्वेच्छा से जानकारी

नयी दिल्ली, १३ जून (यू.)। केंद्रीय विधि मंत्री डा. सुब्रह्मण्यम स्वामी ने आज कहा कि राष्ट्रीय मोर्चा नेताओं को चाहिये कि लिट्टे के साथ अपने संबंध के आधार पर उनके पास जो भी जानकारी हो स्वेच्छा से दें।

उन्होंने संवाददाताओं से यहां कहा कि पूर्व

## स्वामी ने कहा-

प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या में लिट्टे के हाथ की पुष्टि हालांकि अभी नहीं हुई है, लेकिन मौजूदा साक्ष्य संदेह की सुई श्रीलंकाई उग्रवादी गुट की ओर करते हैं।

उन्होंने आरोप लगाया कि लिट्टे के साथ राष्ट्रीय मोर्चा के नेताओं का स्थायी संबंध रहा है

और राज्य सभा में द्रम
गोपाल स्वामी का इस
संबंध है।

डा. स्वामी ने कहा
बात है कि देश के बाह
प्रधानमंत्री की हत्या क
मोर्चा के नेताओं को च
से जुड़े लोगों का पता
सहयोग दें।

यह पूछे जाने पर कि वह इस तरह का अपील सिर्फ राष्ट्रीय मोर्चा नेताओं से ही क्यों कर रहे हैं डा. स्वामी ने कहा कि राष्ट्रीय मोर्चा शासन के एक वर्ष में लिट्टे की गतिविधियों को बहुत बढ़ावा मिला। वह तमिलनाडु से असम तक फैल गया।

यह याद दिलाये जाने पर कि श्री गांधी जब प्रधानमंत्री थे उस समय सरकार के कुछ लोगों का लिट्टे से संबंध था उन्होंने कहा कि कांग्रेस (इ) के शासन काल में लिट्टे की गतिविधियां एक सीमा से आगे नहीं बढ़ सकी थीं लेकिन राष्ट्रीय मोचा के शासन काल में उन्हें खुली छूट दे दी गयी। उन्होंने कहा कि द्रमुक तथा उसके नेता बी. गोपालस्वामी के लिट्टे से संबंध होने की बात ... छुपी नहीं है।

उन्होंने कहा कि देश के एक लोकप्रिय नेता की भारत की धरती पर विदेशी संस्था द्वारा हत्या की गयी है जिसे साधारण रूप से नहीं लिया जाना चाहिये।

अटकल शरद पवार के नाम पर अ
बसु जैसे नेताओं के नाम तक थम जा
अगर बहुमत नहीं मिला तो वह स
बनाने का फैसला करेगी।

## दरभंगा में बम फ
## १ मरा

दरभंगा, १३ जून (सं.)। जि
थानान्तर्गत बैरमपुर गांव में व
विस्फोट में एक व्यक्ति मर गया
अन्य घायल हो गया।

पुलिस अधीक्षक उमेश कुमार
यहां बताया कि बम विस्फोट
बदमाशों ने किया था। इस सं
थाना में एक प्राथमिक सूचना रिपो
गयी है।

कहा कि बं ... ने बाढ़ लिए काप एक ... क्रम में मैच एक युवा टीम भेजने का बंगला देश का आमंत्रण स्वीकार कर लिया है। ा कि बोर्ड ने बंगला देश बोर्ड से ांगी है कि वह कब भारतीय टीम का है और दौरे में कितने मैच खेले

मया ने बताया कि न्यूजीलैण्ड की ० वर्ष से कम) अगले वर्ष फरवरी- के दौरे पर आयेगी। यह तीन टेस्ट एक दिवसीय मैच खेलेगी।

हा कि भारत के आस्ट्रेलिया दौरे के अभी अंतिम रूप नहीं दिया गा है। ा क्रिकेट बोर्ड चाहता है कि का दौरा २७ अक्टूबर से शुरू कप शुरू होने तक चलता रहे य बोर्ड विश्व कप के पहले टीम के कें लिये कुछ समय का अंतराल

ाम इस दौरे में पांच टेस्ट मैच ंसन एंड हेजेज श्रृंखला में भाग आस्ट्रेलिया और वेस्टइण्डीज भी के अलावा दौरे में भारतीय टीम सीय व एक दिवसीय मैच भी

ा के अनुसार जुलाई में लंदन में ाष्ट्रीय क्रिकेट परिषद की बैठक

संयुक्त दक्षिण अफ्रीका क्रिकेट बोर्ड से बात करेंगे।

हर्ड ने पिछले माह अली बेचर, जो बोर्ड के अधिकारी हैं और एएनसी स्पोर्ट्स के प्रवक्ता स्टीव श्वेती से भी बातचीत की थी।

अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट कौंसिल दक्षिण अफ्रीका के पुनः प्रवेश के आवेदन पर १० से १२ जुलाई तक होने वाली अपनी आम बैठक में विचार करेगी।

दक्षिण अफ्रीका के १९६१ में कामनवेल्थ से निष्कासित कर दिया गया था। तब से दक्षिण

## कराटे प्रशिक्षुओं का प्रशिक्षण शिविर

बंगलोर, १३ जून। आगामी तीन व चार अगस्त को यहां आयोजित २५ हजार रुपये इनामी नाकडाउन टूर्नामेंट 'मकट-९१' की तैयारी के सिलसिले में अंतर्राष्ट्रीय कराटे संगठन १८ जून से ४५ दिवसीय प्रशिक्षण शिविर का आयोजन करेगा। भारत के शाखा प्रमुख सेनमेइ राकुम खुद प्रशिक्षण देंगे और प्रशिक्षुओं की देखभाल करेंगे।(यू.)

## फोरमैन, टायसन से भिड़ने के

नई दिल्ली, १२ जून। २१ से २८ सितम्बर तक मध्य क्षेत्र में आयोजित विल्स ट्राफी चैम्पियनशिप के साथ देश में १९९१-९२ क्रिकेट सत्र की शुरुआत होगी। इसके बाद २ से ६ अक्टूबर तक ईरानी ट्राफी मैच रणजी विजेता हरियाणा और शेष भारत की टीम के बीच फरीदाबाद में होगा।

भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के सचिव जगमोहन डालमिया ने आज संवाददाताओं को बताया कि रणजी ट्राफी चैम्पियनशिप के मैच २५ अक्टूबर से ३१ दिसम्बर तक होंगे।

श्री डालमिया ने कहा कि दिलीप ट्राफी चैम्पियनशिप अगले वर्ष पांच से २५ जनवरी तक पश्चिम क्षेत्र में होगी। पश्चिम क्षेत्र के प्रतिनिधि स्थान निर्धारित करेंगे। देवधर ट्राफी २८ जनवरी से पांच फरवरी तक पूर्वी क्षेत्र में होगा। देवधर ट्राफी के स्थान का निर्धारण पूर्वी क्षेत्र के प्रतिनिधि करेंगे।

'वार्ता' के अनुसार श्री डालमिया ने कहा कि उत्तर प्रदेश क्रिकेट एसोसियेशन कूच विहार ट्राफी और सी.के. नायडू ट्राफी (दोनों १९ वर्ष से कम आयु वर्ग के लिये) की मेजबानी करेगी।

कूच विहार ट्राफी के मैच २५ अक्टूबर से २५ नवम्बर और नायडू ट्राफी के २५ से ३१ दिसम्बर तक होंगे। कूच विहार ट्राफी के लीग मैच तीन दिन के और फाइनल चार दिन का होगा।

कूच विहार ट्राफी विजेता एसोसियेशन एम.ए. चिदम्बरम ट्राफी (१९ वर्ष से कम) का आयोजन करेगी। इसका ... कूच विहार विजेता

हजारे ट्राफी के २८ जनवरी से ... होंगे।

कार्यक्रम के अनुसार रणजी मुकाबले २५ अक्टूबर से ३१ दि... जायेंगे। चैम्पियन हरियाणा और ... को बाई दी गयी है। यदि ये दोनों ... करते तो सम्बन्धित क्षेत्र के वि... स्थान दे दिया जाएगा।

नाक आउट दौर में पूर्वी क्षे... पश्चिम के उपजेता से और ... विजेता मध्यक्षेत्र के उपजेता से ... क्वार्टरफाइनल के ये मैच ... तक खेले जायेंगे।

क्वार्टर फाइनल में उत्तर क्षेत्र ... टक्कर उपजेता (पूर्वी क्षेत्र) ... (पश्चिम क्षेत्र) मुकाबले के वि... जबकि मध्य क्षेत्र के विजेता की ... क्षेत्र के उपजेता से होगी।

तीसरे क्वार्टरफाइनल में पूर्वी क्षे... सामना उत्तर क्षेत्र के उपजेता ... अंतिम क्वार्टरफाइनल में पश्चिम ... की मुलाकात विजेता (दक्षिण ... उपजेता (मध्य क्षेत्र) से ... क्वार्टरफाइनल २८ फरवरी से तीन ... खेले जायेंगे।

सेमीफाइनल मैच १३ से १७ ... जायेंगे। क्वार्टरफाइनल के जिस ... क्षेत्र विजेता टीम शामिल रहेगी ... टीम प्रथम सेमीफाइनल में खेले...

श्रीर्विजयते

# फक्किकारत्नमञ्जूषा

विश्वनाथं प्रणम्याथ ध्यात्वा गुरुपदाम्बुजम् ।
फक्किकारत्नमञ्जूषा क्रियते छात्रहेतवे ॥ १ ॥

## अथ संज्ञाप्रकरणम् ।

ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयमिति शिष्टाचारात् 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते, वीरपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषाणि च भवन्त्यध्येतारश्च सिद्धार्था यथा स्युः' इत्यादिभाष्यप्रामाण्याच्च मङ्गलमवश्यं कर्तव्यमित्यवधार्य्य प्रत्यवायप्रशमनाय समुचितऋषित्रयनमस्काररूपमङ्गलमारचयति-**मुनित्रयमिति** । येन विना यदनुपपन्नं तत्तेनैवाक्षिप्यत, इति न्यायात् 'पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते' इत्यत्र यथा-भोजनं विना पीनत्वानुपपत्त्या रात्रिभोजनाक्षेपस्तथैव प्रकृते विरच्यत इति कर्म्मप्रत्ययान्तक्रियापदस्य कर्त्तारं विनाऽनुपपत्त्या मया भट्टोजिदीक्षितेनेति तृतीयान्तकर्तृपदस्याक्षेपः । अत एव भट्टोजिदीक्षितकृतिरित्यादिः श्लोकः सङ्गच्छते । तथा च-मया भट्टोजिदीक्षितेनेयं वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी विरच्यते विविधगुणविशिष्टा क्रियत इत्यर्थः । किं कृत्वा मुनित्रयं नमस्कृत्य तदुक्तीः परिभाव्य च तिरस्कृत्य विचार्य्येत्यर्थो वा । भटन्तीति भट्टास्तानुज्जेतुं शीलमस्येति भट्टोजिरत्र पृषोदरादित्वेनोदो दकारलोपे जिधातोः क्विप् तुगभावश्चागमशास्त्रस्यानित्यत्वात् । किंच उः शम्भुस्तस्माज्जातः उजो गणेशो वरो वा सोऽस्यास्तीति उजी भट्टश्चासावुजी चेति भट्टोजी दीक्षणं दीक्षा दीक्ष् धातोः 'गुरोश्च हलः' इत्यप्रत्ययः । दीक्षा सञ्जाताऽस्येति दीक्षितः 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इति सूत्रेणेतच् भट्टोजीचासौ दीक्षितश्चेति विग्रहस्तेन । व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणं व्याङ्पूर्वककृधातोः 'करणाधिकरणयोश्च' इति करणे ल्युट् तस्य स्थाने 'युवोरनाकौ' इत्यनादेशः । व्याकरणमधीते विदन्ति वा वैयाकरणा इति विग्रहे 'तदधीते तद्वेद'

इत्यणि "न य्वाभ्याम्' इत्यादिनैजागमः। असेधीदिति सिधुः सिद्धो निष्पन्नोऽन्तो निर्णयो येषां ते सिद्धान्ताः, यद्वा वादिप्रतिवादिभ्यां निर्णीतत्वेनाक्षेपरहिता अर्थाः सिद्धान्ताः, वैयाकरणानां सिद्धान्ता वैयाकरणसिद्धान्ताः। मोदनं मुद् (मुद हर्षे) भावे 'सम्पदादिभ्यश्च' इति क्विप्, कौ पृथिव्यां मुदानन्दो यस्मादसौ कुमुचन्द्रस्तस्येयं कौमुदी। 'तस्येदम्' इत्यण्। 'टिड्ढाण' इति ङीप्। वैयाकरणसिद्धान्तानां कौमुदीव चन्द्रिकेवेत्यर्थः।

ननु 'नमः(१) स्वस्ति' इत्यनेन नमःशब्दयोगे चतुर्थीविधानेन मुनित्रयं नमस्कृत्येत्यनुपपन्नमिति चेन्न। 'उपपदविभक्तेः(२) कारकविभक्तिर्बलीयसी' इति परिभाषया द्वितीयाया एव प्राबल्यबोधनेन तदुपपत्तेः। पदमाश्रित्योत्पन्ना विभक्तिरुपपदविभक्तिः। क्रियामाश्रित्योत्पन्ना विभक्तिः कारकविभक्तिः। उत्कृष्टनिष्ठं यत्स्वनिष्ठापकृष्टत्वबोधनं तदनुकूलो व्यापारो नमश्शब्दार्थः॥

**तदुक्तेति**। मुनित्रयागामुक्तीरित्यर्थः। **परिभाव्येति**—विचार्येत्यर्थः। धातूनामनेकार्थत्वात्। अत्र ज्ञापकं 'परौ भुवोऽवज्ञाने' इत्यत्रावज्ञानग्रहणमेव, तथाहि सर्वत्र परिसमभिव्याहारे भूधातोरवज्ञानार्थस्यैव सम्भवाद् व्यावर्त्याभावेन व्यर्थमवज्ञानग्रहणं ज्ञापयति धातूनामनेकार्थत्वमिति ज्ञापिते तु तस्मिन्नर्थे भूधातोरवज्ञानातिरिक्तार्थस्यापि सम्भवादन्यस्मिन्नर्थे प्रत्ययव्यावृत्त्यर्थमवज्ञानग्रहणस्य सार्थक्यमिति भावः। 'अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया' इति कोशप्रमाणेन परिसमभिव्याहारे भूधातोस्तिरस्का-

---

(१) नमःस्वस्तीति—'नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च' इति सूत्रस्वरूपम्।

(२) उपपदविभक्तेरिति—इयं परिभाषा वाचनिक्येव नतु ज्ञापकसाध्या 'तत्र च दीयते' इति सूत्रभाष्यकैयटयोस्तथैवोपलम्भात्।

ननु कृधात्वर्थफलान्वयविवक्षायां द्वितीयायाः, नमःशब्दार्थान्वयविवक्षायां चतुर्थ्याश्च प्रवृत्त्या भिन्नविषयादुक्तपरिभाषया द्वितीयाप्राबल्यबोधनमसङ्गतमिति चेन्न। नमःशब्दस्य निपातत्वेन द्योतकतया द्योतकवाचकसमभिव्याहारे विनिगमनाविरहेण विषयतायामुभयप्रयोज्यत्वस्य सिद्धान्ततया नमःपदप्रयोज्यविषयतानिरूपितविषयताप्रयोजकत्वेन तात्पर्यविषयीभूतात्प्रातिपदिकाच्चतुर्थीति सूत्रार्थेन कृधात्वर्थफलेऽन्वयविवक्षायामुभयोः प्राप्त्या तत्सङ्गतेरिति भावः। नच नमस्कृत्येत्यस्य समस्तत्वेन जहत्स्वार्थायां नमःपदपर्याप्तप्रयोजकतानिरूपितविषयताया अभावाच्चतुर्थ्यप्रसक्त्या तदवस्थ एवोक्तदोष इति वाच्यम्। 'जहत्स्वार्था तु तत्रैव रूढिर्यत्र विरोधिनी'इत्युक्त्या रूढेर्योगार्थविरोधित्व एव जहत्स्वार्थोपगमादित्यलम्।

शर्थत्वादित्यस्य तिरस्कृतेत्यर्थाभ्युपगमे तदुक्तीरित्यस्य प्राचामुक्तीस्तिरस्कृत्ये त्यर्थो व्याख्येयः । उक्तशास्त्रस्य तत्रोक्तानुपूर्वीविशिष्टे एव शक्तिग्राहकत्वेन घञन्ताद्य-न्तस्यैव तादृशार्थबोधकत्वादिह विचारार्थकत्वे न कापि बाधा दृष्टिपथे पथिकायते इति केचित् ॥

इयं कौमुदी सिद्धान्तभूतसकलार्थप्रकाशजनिकेत्यर्थः । ग्रन्थरूपाया अस्याः कौमुद्या अर्थप्रकाशकत्वधर्मेण चन्द्रिकया साम्यमिति भावः, इयमिति प्रत्यक्षविषयकेने-दमानिर्देशो (१) भाविनोऽपि वस्तुनो बुद्ध्या विपर्याकरणात् ॥

मन्तारो वेदशास्त्रार्थतत्त्वावगन्तारो मुनयः मन्धातोः 'मनेरुच्च' इति मकारात्परा-कारस्योकार इन् प्रत्ययश्च । त्रयोऽवयवा यस्येति त्रयं त्रिशब्दात् 'संख्याया अवयवे तयप्' इति तयप् "द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा' इत्ययच् मुनीनां त्रयं मुनित्रयमिति विग्रहः॥

विषयश्चाधिकारश्च सम्बन्धश्च प्रयोजनम् । विनाऽनुबन्धं ग्रन्थादौ मङ्गलं नैव शस्यते, इत्यभियुक्तोक्तेर्वैयाकरणेत्यादिना(२)ऽनुबन्धचतुष्टयस्य ग्रन्थादावावश्यकत्वं प्रदर्शयति । तत्र विषयप्रयोजनाधिकारिसम्बन्धरूपम्बोध्यम् । तथा च वैयाकरणसि-द्धान्तज्ञानं विषयः । 'रक्षोहागमलध्वसन्देहा' इत्यादिभाष्योक्तमेव प्रयोजनम् ( त्रैवर्णि-कत्वे सत्यधीतकाव्यकोशादिः ) तज्जिज्ञासुरधिकारी, प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः सम्बन्ध इति सूचितम् ॥

(३)ननु 'सञ्ज्ञा च परिभाषा च' इत्यादिषड्विधसूत्रलक्षणस्य वृद्धैर्व्यवहृतत्वात् 'अइउण्' इत्यादीनां कथं सूत्रत्वमुपपन्नमिति चेन्न । एषामकारादिक्रमबोधकत्वेऽपि प्रत्याहारविधायकेन 'आदिरन्त्येन सहेता' इत्यनेनैकवाक्यत्वात् सञ्ज्ञासूत्रत्वे बाधका-भावेन तदुपपत्तेः, तथाहि-आदिरकारादिरन्त्येनेता सदृशेन णकारादिना सहोच्चार्यमाण आद्यन्ताक्षिप्तानां सञ्ज्ञेति भावः । एवं प्रत्याहारविधायकोक्तसूत्रेण सहैकवाक्यतया

---

( १ ) भाविन इति—यथा भाविघटविषयेऽयं घटो भविष्यतीति व्यवहारस्तथेय-मिति निर्देशः । सत्कार्यवादसिद्धान्ताश्रयणाद्वेयमिति निर्देश इति भावः । उपमान-कौमुदीगतलिङ्गस्यारोपाद्ग्रन्थे स्त्रीलिङ्गनिर्देशोऽप्युपपद्यत एव । बुद्धिसत्तासमाविष्टस्य शाब्दबोधविषयत्वमिति सिद्धान्त इति भावः ।

( २ ) अनुबन्धचतुष्टयस्येति—ग्रन्थाध्ययनप्रवृत्तिप्रयोजकज्ञानविषयत्वमनुबन्धसा-मान्यलक्षणम् ।

( ३ ) ननु सञ्ज्ञा चेति—'सञ्ज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च । अतिदेशो-ऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्' इति स्वरूपम् ।

'स्वौजसमौट्' इत्यादीनामपि सुबादिसञ्ज्ञासूत्रत्वं स्वादिविधायकत्वञ्च बोध्यम् ॥ वस्तुतस्तु पूर्वोक्तयुक्त्या सञ्ज्ञासूत्रत्वव्यवस्थापने परिभाषासूत्राणामपि विध्येकवाक्यतया विधिसूत्रत्वापत्तिरतोऽकारः साधुरित्येवंक्रमेण साधुत्वविधानाद्विधित्वमेव युक्तमिति मिश्राः ।

'अइउण्' इत्यादिचतुर्षु सूत्रेषु (१)सन्धिकार्य्यं न भवति (२)संहिताया अविवक्षणात् । अकारादिवर्णेभ्यः (३)कारप्रत्ययः कुतोनेति नाऽऽशङ्क्यम् (४)बाहुलकात् । ननु कथमकारादिवर्णेभ्यो न विभक्तिरिति चेन्न । (५)अनुकरणत्वात्(६)सौत्रत्वाच्चेति दिक् ॥

ननु चतुर्दशसूत्र्यामक्षरसमाम्नाय इति व्यवहारानुपपत्तिराम्नायसमाम्नायशब्दौ वेद एव प्रसिद्धौ वेदश्चानादिरस्याश्च पाणिनिकृतत्वेन सादित्वादित्यत आह—**माहेश्वराणीति** । महेश्वरादागतानीति तदर्थः । महेश्वरप्रसादाल्लब्धानीति फलितम् । न महेश्वरेण कृतानि नापि पाणिनिना कृतानि किन्त्वानुपूर्विका श्रुतिरेवैषेति ध्येयम् । एवञ्चास्याः श्रुतित्वेनोक्तव्यवहारोपपत्तिः सुलभेति बोध्यम् । अत्र प्रमाणं—'येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् । कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नम' इति शिक्षावचनम् । अत एव 'नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पञ्च-[१४] वारम् । उद्धर्तुकामः

---

(१) सन्धिकार्यमिति—अकारेकारयोर्गुणस्तस्याऽयादेशः ऋकारस्य यण् । एकारस्याऽय् । ऐकारस्याऽऽय्रूपसन्धिकार्यमित्यर्थः ।

(२) संहिताया अविवक्षणादिति । ननु 'संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः । नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते' ॥ इत्युक्त्या सुप्तिङ्चयरूपवाक्य एव संहिताया विवक्षाधीनत्वप्रतीत्या प्रकृते सुप्तिङ्चयरूपवाक्याभावात्कथमविवक्षेति चेदुच्यते—यत्र कारकान्वितक्रियायाः प्रतीतिस्तत्रैव तादृशवाक्यत्वाङ्गीकारः । प्रकृते तु शक्तपदसमुदायस्य वाक्यपदेन ग्रहणम् । यथा गवित्ययमाहेत्यस्य वाक्यत्वात्समासग्रहणं निर्वर्त्यत्वोपपत्तिः। नचैतादृशवाक्यत्वस्य वाक्ये तुसेत्यत्र ग्रहणे चक्रतुरित्यत्र कदाचिद्यण्रहितः प्रयोगोऽपि स्यादिति वाच्यम् । 'संहितैकपदे' इत्यनेन तत्र संहिताया नित्यत्वबोधनादिति ।

(३) कारप्रत्यय इति—'वर्णात्कार' इत्यनेनेति भावः । (४)बाहुलकादिति । 'रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम्' इत्यतोऽनुवृत्तबहुलग्रहणसामर्थ्यादित्यर्थः ।

(५) अनुकरणत्वादिति—अनुकार्यानुकरणयोरभेदविवक्षायामनुकरणशक्त्याऽर्थबोधकस्वरूपाऽर्थवत्त्वाभावेनाऽप्रातिपदिकत्वादिति भावः । (६)सौत्रत्वाच्चेति । अनुकार्यानुकरणयोर्भेदविवक्षायामनुकरणशब्दस्य शक्त्याऽर्थबोधकत्वरूपाऽर्थवत्त्वेन प्रातिपदिकत्वाद्विभक्त्यनुत्पत्तिरिति भावः ।

सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्' इति सङ्गच्छते । 'अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णचतुर्दशम् 'धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये' ॥ इति शिक्षावचनमिति दिक् ॥

'अइउण्' इत्यादि चतुर्दशसूत्रघटकाऽन्त्यवर्णैर्णकारादिभिरणादिसंज्ञोपपत्तये आह—

एषामन्त्या इत इति ॥

ननु 'उरण् रपरः' इत्यत्र रपरत्वसिद्ध्यर्थं रप्रत्याहारोपपत्तिरावश्यकी सा च 'लण्' सूत्रस्थाकारस्येत्संज्ञां विना न सम्भवतीति तत्सिद्धिप्रकारं प्रदर्शयति—लण्सूत्रेऽकारश्चेति । अत्र प्रमाणञ्च 'तुल्यास्य' सूत्रस्थं 'क्वचिदनन्त्येनापि प्रत्याहार' इति कैयटीयव्याख्यानशालि 'रपरत्वं वक्ष्यामि' इति भाष्यमेव । 'अतो ल्रान्तस्य' इत्यत्र पाणिनिकृतलकारोच्चारणेनानित्योऽयं प्रत्याहारः । अन्यथा प्रत्याहारेणैव निर्वाहात्तत्र लकारोच्चारणं स्पष्टमेव व्यर्थं स्यात् । प्रफुल्ल इत्यत्र 'रदाभ्याम्' इत्यनेन निष्ठातकारस्य नत्वाभावोऽनित्यत्वफलम्बोध्यमिति प्राञ्चः ॥

नव्यास्तु 'लण्' सूत्रस्थाकारो नानुनासिकः, प्रत्याहारेणैव निर्वाहे पाणिनिकृतस्य 'अतोल्रान्त' इत्यत्र लकारोच्चारणस्य वैयर्थ्यापत्तेः । अर्द्धमात्रालाघवाय यप्रत्याहारेणैव व्यवहारस्य समुचितत्वाद्यण्प्रत्याहाराश्रयणस्य वैयर्थ्यापत्तेश्च । 'आचारादप्रधानत्वाल्लोपश्च वलवत्तरः' इति भाष्योक्ततृतीयहेतोरव्यापकत्वापत्तेश्च । तथाहि, अनुबन्धाः प्रत्याहारजन्यबोधविषयत्वाभाववन्तः लोपशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात् । अत्र प्रथमः पक्षो द्वितीयः साध्यस्तृतीयो हेतुः, पक्षतावच्छेदेन साध्ये हेतोः पक्षतावच्छेदकव्यापकत्वनियमः प्रकृते 'लण्' सूत्राकारस्यानुबन्धत्वेन पक्षत्वसत्वेऽपि पूर्वोक्तसाध्यसत्वात् हल्प्रत्याहारसिद्धेः प्रागच्पदार्थासिद्ध्योपदेशेऽजित्यस्य वाक्यार्थाभावेन तस्येत्संज्ञालोपयोरभावाल्लोपरूपहेतोरसत्त्वेन तस्याऽव्यापकत्वापत्तिः तयोरभावे भाष्यकृता प्रत्याहारे(१)जातिग्रहणपक्षस्यैव सिद्धान्तितत्वेन हल्प्रत्याहारे लणित्यकारप्रवेशात्तस्य हल्त्वेन(२) मा मां त्रायस्वेत्यत्रानुनासिकपक्षेऽनुस्वारापत्तिः (३)सोऽस्तीत्यादौ सुलोपापत्तिश्च

---

(१) जातिग्रहणपक्षस्यैवेति—ननु हल्प्रत्याहारसिद्धेः प्राक् उपदेशेऽजित्यस्य वाक्यार्थबोधाऽभावेऽप्यण्प्रत्याहारकाले लणित्यकारस्येत्संज्ञालोपाभ्यामपहारसम्भवेनाक्षरसमाम्नायिकानामेव ग्राहकशास्त्रेऽण्पदेन ग्रहणेन साऽनुनासिकाकारस्याऽनण्त्वात्तेन दीर्घस्यानुनासिकस्य न ग्रहणसम्भव इत्याशङ्कामुत्तरयति—जातिग्रहणपक्षस्यैवेति ।

(२) मामांत्रायस्वेति—माम् आन् त्रायस्वेति पदत्रयम् । अत्राऽऽनिति अनितेः क्विबन्तस्य सम्बुद्धौ रूपम् । जातिग्रहणपक्षाश्रयणेन दीर्घत्वानुनासिकत्वसमानाधिकरणाच्त्वावच्छिन्नस्य हल्त्वादिह दोषः ।

(३) ननूक्तस्थलीयदोषवारणाय ह्रस्वत्वनिरनुनासिकत्वसमानाधिकरणाच्त्वजा-

स्यात् । तस्मादप्रामाणिकान्तस्यानुनासिकत्वम् ऋलृवर्णयोः सावर्ण्यात् 'उरण् रपरः' इत्यत्र लकारग्रहणमावश्यकमेवेति वदन्तीति दिक् ॥

ननु 'हयवर'इत्यदावकारोच्चारणेन तस्य हल्त्वप्रसङ्गात्तस्या पूर्वोक्तस्य मा आंज्ञायस्वेत्यत्रानुस्वारापत्तिरूपस्य सोऽस्तीत्यादौ सुलोपाद्यापत्तिरूपस्य च दूषणस्य दुर्वारत्वमित्यत आह—**हकारादिष्वकार उच्चारणार्थ इति** । अयम्भावः—'न पुनरन्तरेणाचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि भवति' इति भाष्यात्तस्योच्चारणार्थत्वमेव, न ग्रहणार्थत्वमिति, एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते यत्तुल्यजातीयांस्तुल्यजातीयेषूपदिशति अचोऽक्षु हलो हल्ष्विति प्रत्याहारेऽनुबन्धानां कथमज्ग्रहणेषु नेति वार्त्तिकभाष्याच्च तस्योच्चारणार्थत्वमेवेति दिक् ॥

ननु वाक्यार्थबोधे पदार्थज्ञानस्य कारणत्वमपेक्षितमेवञ्च 'हलन्त्यम्' इत्यस्य वाक्यार्थबोधे हल्पदार्थज्ञानमावश्यकं तच्च 'आदिरन्त्येन सहेता' इत्यस्य वाक्यार्थबोधमन्तरा न सम्भवतीति हलन्त्यसूत्रस्य वाक्यार्थबोधे आदिरन्त्येनेत्यस्य वाक्यार्थबोधोऽपेक्षितः, एवमादिरन्त्येनेत्यस्य वाक्यार्थबोधे इत्पदार्थज्ञानमावश्यकं तच्च हलन्त्यसूत्रवाक्यार्थबोधाधीनमित्युभयोर्वाक्यार्थबोधे उभयसूत्रवाक्यार्थबोधस्यापेक्षितत्वेन परस्परापेक्षितत्वरूपान्योन्याश्रयस्य प्रादुर्भावादेकस्यापि वाक्यार्थबोधो न स्यादन्योन्याश्रयाणि कार्याणि न प्रकल्पन्ते यथा—'नौर्नावि बद्धा नेतरत्राणाय भवति' इति भाष्यादित्यावृत्त्या तत्परिहरति—**हलन्त्यमिति** । आवृत्त्योभयहलन्त्यसूत्रस्य कल्पनात् पूर्वत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठ्या समासे हल्सूत्रस्यान्त्यं यत्तदित्संज्ञमित्यर्थः । परत्र राहोः शिर इतिवदभेदे षष्ठ्या समासे हल्रूपान्त्यमित्यर्थः । एवञ्च पूर्वहलन्त्यसूत्रवाक्यार्थबोधस्य जातत्वेनेत्पदार्थज्ञानस्य सुलभत्वादादिरन्त्येनेत्यस्य वाक्यार्थबोधे जाते हल्पदार्थप्रसिद्धौ द्वितीयहलन्त्यसूत्रवाक्यार्थबोधे कस्याप्यपेक्षाविरहात् नान्योन्याश्रयशङ्काकलङ्कलेशोऽपीति भावः । आवृत्तौ 'न विभक्तौ' इति सूत्रमेव प्रमाणमन्यथा हलन्त्यमित्यस्य वाक्यार्थाऽनिष्पत्त्येत्त्वाप्रवृत्तौ निषेधो व्यर्थ एवेति दिक् ॥

ननु रट्लानामिति वक्तव्ये रलयोरिति मूलोक्तिर्न युक्ता टकारस्यापि मध्यवर्त्तित्वादित्याह—**प्रत्याहारेष्वितां न ग्रहणमिति** । अनुबन्धानां तत्र ग्रहणाभावे 'अनु-

---

स्यवच्छिन्नस्यैव हल्त्वमास्तामित्यत आह—सोऽस्तीति । नच 'एतत्तदोः' इति सूत्रारम्भसामर्थ्यादकारस्य हल्त्वाभावज्ञापनान्न दोषः । अन्यथा एष विष्णुः स शम्भुरित्यादौ हलः परत्वेन हल्ङ्यादिसूत्रेणैव लोपसिद्धेः सूत्रवैयर्थ्यस्य स्पष्टत्वादिति वाच्यम् । उक्तसूत्रारम्भसामर्थ्याल्लण्सूत्राऽकारस्यैवाऽनुनासिकत्वाप्रामाण्यज्ञापने लाघवादिति भावः ।

नासिक' इति निर्देश एव ज्ञापकः । तथा हि—ककारस्याप्यच्प्रत्याहारमध्यगतत्वेन तत्त्वानभिज्ञिकारस्य यणि निर्देशासङ्गतिः ज्ञापिते तूक्तार्थे ककारस्याच्त्वाभावेन यणोऽप्राप्त्या निर्देशः सूपपन्नः । नन्वेकारविधानसामर्थ्याद्यणोऽप्राप्तिरिति वाच्यम् । शास्त्रस्य साक्षाद्बोधकत्वापेक्षया प्रत्याहारेऽनुबन्धानां न ग्रहणमित्यत्रैवेत्त्वविधानस्य ज्ञापकत्वे लाघवात् । एवं च तत्र 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य' इति प्रकृतिभावेन नोक्तदोषोदय इति वाच्यम् । तस्य वैकल्पिकत्वेन दोषस्य दुर्वारत्वात् । प्रत्याहारेऽनुबन्धानां ग्रहणन्नेति ज्ञापनात्प्राक् ककारेऽच्त्वस्य सत्वेन तस्मिन् भसंज्ञाप्रवृत्तेश्च । न च यणं बाधित्वा परत्वात् 'यस्येति च' इतीकारलोपे यणोऽप्राप्त्या निर्देशाद्यणभावः सिद्ध इति शेखरोक्तं कथं सङ्गतमिति वाच्यम् । इकारस्यापि परे यद्यत्प्राप्नोति तत्सर्वस्योपलक्षकत्वे तस्य तात्पर्य्यादिति दिक् ॥

ननु 'प्रत्याहारेऽनुबन्धानां कथमज्ग्रहणेषु ग्रहणन्न' इति वार्तिके प्रत्याहारशब्दस्य वर्णसमाम्नाये प्रसिद्ध्या प्रत्याहारेष्वितामित्यनुपपन्नमित्याह—**आदिरन्त्येनेति** । वार्तिके तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यंम्बोध्यम् । एवञ्च प्रत्याह्रियन्ते वर्णा एकत्रीक्रियन्ते यत्रासौ प्रत्याहार इति योगरूढिबलात्कृत्रिमन्यायाच्चैतस्यैव ग्रहणमिति भावः ॥

**आये इति** । अत्र 'निपाता आद्युदात्ता' इत्यनेन निपातस्याऽऽकारस्याद्युदात्तत्वम् । यच्छब्दस्य तु प्रातिपदिकं फिट् तस्यान्त उदात्त इत्यर्थकेन 'फिषोऽन्त उदात्त' इत्यनेनाऽन्तोदात्तत्वम् । जसः सुप्त्वात् 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' इत्यनेनाऽनुदात्तत्वम् । एकारस्य उदात्तेन सहैकादेश उदात्त इत्यर्थकेन, 'एकादेश उदात्तेनोदात्त' इत्यनेनोदात्तत्वम् ॥

**अर्वाङिति** । अभिमुखवाच्यव्युत्पन्नं प्रातिपदिकमिदम् 'फिषोऽन्त उदात्तः' इत्यनेन तस्यान्त उदात्तः, प्रथमस्य यस्मिन्पदे यस्योदात्तः स्वरितो वा विधीयते तमेकमचं वर्जयित्वा शेषं तत्पदमनुदात्ताच्कं स्यादित्यर्थकेन, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' इत्यनेनानुदात्तत्वम् । अर्वन्तमञ्चतीत्यर्थे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तत्वम् ॥

**अतन्त्रमिति** । स्वशास्त्रसङ्केतितरूपेण नार्थबोधजनकमित्यर्थः । किन्त्वर्द्धमात्रारूपार्थबोधजनकमिति बोध्यम् । एवञ्च दीर्घादावप्यर्द्धमात्राया एवोदात्तत्वमिति **नागेशाः** । **दीक्षितास्तु**—'एकाक्षरसमावेशे पूर्वयोः स्वरितः स्वरः । तस्योदात्ततरोदात्तादर्द्धमात्रार्द्धमेव वा' । इति प्रमाणबलेन दीर्घेऽप्यर्द्धस्यैवोदात्तत्वमित्यभ्युपगच्छन्ति उदात्तानुदात्तयोरेकस्मिन्समावेशे स्वरितो भवति तस्योदात्तापेक्षयोदात्ततराऽर्द्धमात्राऽर्द्धमेवोदात्तं वेत्युक्तकारिकाऽर्थात् ॥

ह्रस्वस्वरितोदाहरणम्–क्वेति । अत्र 'किमोऽत्' इत्यत्, 'क्वाति' इति क्वादेशे 'तित्स्वरितम्' इति स्वरितः, व इति । 'अनुदात्तं सर्व्वमपादादौ' इत्यनेन व इत्यस्याप-दादौ विद्यमानस्यानुदात्तत्वम् । दीर्घस्वरितोदाहरणम्—रथानामिति, थैरा इति । 'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ' इत्यनेनैकारस्य स्वरितत्वम् । ननु 'नोदात्तस्वरितोदयम्' इत्यनेन निषेधे कथमेकारस्योक्तसूत्रेण स्वरितत्वमिति चेन्न (१)'अनन्तरस्ये'ति न्यायब-लेन 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरित' इत्यस्यैव तेन निषेधकरणात् ॥

स्वरितपरमुदाहरति—शतचक्रमिति । अहेरित्यर्थेऽह्यः वृत्रस्येत्यर्थः । नात्र गुणशङ्कनीयः 'छन्दसि वा वचनं प्राङ्णौ चङ्युपधाया' इति वचनस्य जागरूकत्वात् 'उदात्तस्वरितयोः' इत्यनेन स्वरितत्वम् 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' इत्यनेन न सः छान्द-सत्वात् यच्छब्दस्य 'फिषोऽन्त उदात्त' इत्यनेनान्तोदात्तत्वं तदेकादेशस्य वा स्वरि-तत्वमिति दिक् ॥

ननु दण्डाढकमित्यादौ संवृतस्य ह्रस्वाकारस्य विवृतेन दीर्घाकारेण सह प्रयत्न-भेदात् 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति दीर्घो न स्यादित्यत आह—प्रक्रियादशायां तु विवृतमेवेति । साधनावस्थायां तस्य विवृतत्वं प्रतिज्ञेयमिति तदर्थः । एवञ्च तत्र दीर्घसिद्धिः सुलभेति भावः । 'ह्रस्वस्य प्रयोगे संवृत'मित्यत्र प्रमाणमाह—अ अ इति । 'सुपां सुलुग्'इति विभक्त्योर्लुक् । आद्योऽकारो विवृतः परश्च संवृतः प्रयत्नभेदा-त्तत्र सन्धिर्नेति बोध्यम् ॥

ननु 'अ अ' इति सूत्रेणाकारस्य संवृतत्वविधाने दण्डाढकमित्यादौ कथं दीर्घ इत्याह—अस्य, चाष्टाध्यायीमित्यादि । उक्तसूत्रस्य सम्पूर्णाष्टाध्याय्यामन्तिम-त्वेनासिद्धत्वादुक्तप्रयोगे दीर्घसिद्धिरिति भावः ॥

पूर्वत्रासिद्धमित्यस्याधिकारत्वे फलमाह—त्रिपाद्यामपीति । अस्य त्रैपादिकशा-स्त्राणामादिभूतस्याधिकारत्वं विना स्वोत्तरदेशगमनासम्भवेन त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति पर-शास्त्रमसिद्धमित्यर्थालाभात्पूर्वपदेन सापादिकस्यैव ग्रहणेन गोधुङ्मानित्यत्र परत्वात्कृ-तेषु जश्त्वानुनासिकेषु भष्भावानापत्तिः, अधिकारत्वे तूक्तार्थलाभेन परयोरपि जश्त्वा-नुनासिकयोर्भष्भावदृष्ट्याऽसिद्धत्वात्पूर्वं भष्भावे ततस्तावितीष्टसिद्धिः । वस्तुतस्तु घत्वे कृते 'झयः' इति वत्वापत्तिर्दोषो बोध्यः । नच परत्वाज्जश्त्वानुनासिकत्वयोः कृतयोर्न वत्वप्राप्तिरिति वाच्यम् । 'विप्रतिषेधे परम्' इत्यस्य यथोद्देशत्वेन त्रिपाद्यामप्रवृत्त्या पूर्वमुक्तकार्य्यद्वयस्याप्राप्त्या वत्वस्यैव प्रवृत्तेरिति भावः ॥

(१) अनन्तरस्येति—'अनन्तरस्य विधिर्वाभवति प्रतिषेधो वेति' न्यायस्वरूपम् ।

अनेन शास्त्रासिद्धत्वमेव विधीयते न कार्यासिद्धत्वम् । तथा सति अमू इति न सिद्ध्येत् । तथा हि—अद अ औ इति स्थितौ परत्वात्कृतस्य मुत्वस्य सापादिककार्य्यदृष्ट्याऽसिद्धत्वेऽपि देवदत्तहन्तृहतन्यायेनाकाराभावेन पररूपाद्यनापत्तेः शास्त्रासिद्धत्वे नोक्तदोषः, अन्तरङ्गत्वात्प्राक्प्रवृत्ते शास्त्र एवानेनासिद्धत्वबोधनात्पूर्वं पररूपे ततो वृद्धौ ततो मुत्वे च रूपसिद्धिरिति दिक् ॥

ननु अण्प्रत्याहारस्य पूर्वणकारेण परणकारेण चोपपत्तिसम्भवादणुदित्सूत्रे परेण पूर्वेण नोक्तप्रत्याहारग्रहणमितिसन्देहप्रादुर्भावे सिद्धान्तमाह—**अत्राण्परेण णकारेणेति** । 'ऋत उत्' इत्यत्र तपरकरणमुक्तार्थे ज्ञापकम्बोध्यम् । तथा हि—पूर्वणकारेणोक्तप्रत्याहाराङ्गीकारे ऋकारस्याण्त्वाभावादणुदित्सूत्रेण सवर्णग्राहकताऽप्रसक्तौ तद्व्यावृत्त्यर्थं तत्र कृतं तपरकरणं व्यर्थं सदुक्तार्थे ज्ञापकम् । परेण तदभ्युपगमे तु ऋकारस्याण्त्वेन ग्राहकशास्त्रप्रवृत्त्या प्राप्तसवर्णग्रहणव्यावृत्तये तपरकरणस्य सार्थक्यमिति तदाशयः ॥ वस्तुतस्तु नोक्तसूत्रघटकऋत इत्यत्र तपरकरणमुक्तार्थे ज्ञापकम्, तस्य तपरसूत्रेण लृकारग्रहणार्थमावश्यकत्वात् । एवञ्च 'उर्ऋत्' इत्यत्रत्य तपरकरणस्योक्तार्थे ज्ञापकत्वं बोध्यम् । तथाहि—चुरादिण्यन्तात्कॄत संशब्दने इत्यस्माद्धातोर्लुङि अचीकृतदित्यत्र दीर्घऋकारस्थाने ह्रस्व ऋकार एव यथा स्यादित्येतदर्थं तत्र तपरकरणं क्रियते, अत्र पूर्वणकारेणाऽण्ग्रहणे तु उद्देश्येन विधेयेन च ऋकारस्याऽणभिन्नत्वेन भिन्नकालस्याऽग्रहणान्न तस्य स्थानित्वस्य न वाऽऽदेशत्वस्य प्रसक्तिरिति व्यर्थमेव तत्, ज्ञापिते तूक्तार्थे ऋकारस्याऽण्त्वाद् ग्राहकशास्त्रेण सवर्णत्वबोधनाद्दीर्घादेशापत्तिरिति तद्व्यावृत्त्यर्थं तपरकरणं स्वांशे चरितार्थमिति भावः ॥

ननु कण्ठतालुस्थानिनोर्विवृतप्रयत्नवतोरैकारैकारयोरेवं कण्ठोष्ठस्थानिनोर्विवृतप्रयत्नवतोरौकारौकारयोस्तुल्यत्वेन 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' इत्यनेन परस्परं सावर्ण्यं स्यादित्याह—**ऐ औजिति सूत्रारम्भसामर्थ्यादिति** । उक्तवर्णद्वयस्य मिथः सवर्णत्वे एकारेणैकारस्यैवमोकारेणौकारस्य ग्रहणे सिद्धे पृथगैऔजिति सूत्रं व्यर्थं सत्तयोः सवर्णाभावत्वं ज्ञापयतीति तदाशयः । 'एचोऽयवायावः' इत्यत्र प्रत्याहारार्थमुक्तसूत्रस्य चारितार्थ्यमिति नाशङ्कनीयम् 'एङोऽयवायाव' इति न्यासे 'स्थानेऽन्तरतम' इत्यनेनैव निर्वाहसम्भवात् । नच 'वृद्धिरादैच्' इत्यत्र प्रत्याहाराय तदिति वाच्यम् । अत्राप्येङित्येव पठितव्यं तत्र गुणसूत्रे च मिथः सवर्णसंज्ञावादिनये चतुर्णां ग्रहणेन दोषाभावात् ।

न च(१) 'नय्वाभ्याम्' इत्यत्र (२)तदर्थं (३)तदिति वाच्यम् । अत्राऽऽऐं औ इति स्वरूपेण पाठकरणेनैव निर्वाहादित्युक्तसूत्रस्योक्तार्थं ज्ञापकत्वं सुस्थमेव । (४)विवृततरविवृततमेति प्रयत्नद्वयेनैङोरैचोश्च भेदप्रतिपादने तु नोक्तसूत्रस्य वैयर्थ्यमिति दिक् ॥

ननु कण्ठस्थानित्वेन विवृतप्रयत्नवत्त्वेन च तुल्यत्वादकारहकारयोः सवर्णसंज्ञायां विश्वपाभिरित्यादौ हकारसवर्णाकारस्य 'होढः' इति ढत्वं कुतो नेति चेन्मैवम् । नाज्झलाविति सावर्ण्यप्रतिषेधात् । नचात्राच्पदेन ह्रस्वस्यैवाकारस्य ग्रहणं वर्णसमाम्नाये हि ह्रस्व एवाकारः पठितः, दीर्घादेरपाठेन ग्रहणं न स्यात् । नचाच्पदे ग्रहणकशास्त्रप्रवृत्त्या दीर्घादीनां ग्रहणेन न निषेधानुपपत्तिरिति वाच्यम् । (५)प्रथमं वर्णानामुपदेश इत्यादि नाज्झलावितिसूत्रभाष्योक्तवाक्यापरिसमाप्तिन्यायात् । 'अणुदित्' सूत्रवाक्यार्थबोधस्य 'नाज्झलावि'त्यतः प्रागनिष्पत्तेरिति दीर्घाकारहकारयोः सावर्ण्यनिषेधो न स्यादिति वाच्यम् । 'नाज्झलावि'त्यत्राचः प्रागाकारस्य प्रश्लिष्टत्वादाकारसहिताज्झलोः सवर्णसंज्ञानिषेधादिति भावः । प्रश्लेषे प्रमाणं 'कालसमयवेलासु' इतिसूत्रमेव । अन्यथाऽऽकारस्य हकारसवर्णत्वेनेण्त्वात् 'आदेशप्रत्यययोरि'ति षत्वापत्त्या निर्देशासङ्गतिः । नन्वेवमपि हे यियाऽऽसो हे पिपाऽऽसो इति भाष्यप्रयोगानुपपत्तिरुक्तरीत्या षत्वापत्तेरिति चेन्न । उक्तभाष्यप्रयोगप्रामाण्येन तत्र प्लुताऽऽकारस्यापि प्रश्लेषेण तस्यापि हकारेण सवर्णत्वनिषेधात् । ईषद्विवृतमूष्मणां विवृतं स्वराणामिति रीत्या सावर्ण्याभावमुपपाद्य 'नाज्झलावि'ति सूत्रं प्रत्याचख्यौ भाष्यकार इति दिक् ॥

इति संज्ञाप्रकरणम् ।

---

(१) न य्वाभ्यामिति । 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्' इति सूत्रस्वरूपम् । (२) तदर्थमिति । ऐच्प्रत्याहारार्थमित्यर्थः ।

(३) तदिति । ऐ औजितिसूत्रमित्यर्थः ।

(४) विवृततरेति । एङो विवृततरप्रयत्नवत्त्वमैचश्च विवृततमप्रयत्नवत्त्वमित्येवं रूपेण तयोः प्रयत्नभेदात्सावर्ण्याभावोपपत्तौ तदर्थमै औजिति सूत्रवैयर्थ्यद्वारा तयोः सावर्ण्याभावसाधनप्रयासो न करणीयः स्यादिति भावः ।

(५) प्रथममिति । पूर्वं वर्णानामुपदेशस्तदुत्तरमित्संज्ञा तदुत्तरमादिरन्त्येनेति प्रत्याहारसिद्धिस्तदुत्तरकाला सवर्णसंज्ञा तदुत्तरकालमणुदिदिति, एतेन सर्वेण समुदितेन अन्यत्र सवर्णानां ग्रहणम्भवति न स्वस्मिन्नपि स्वाङ्गे न चात्रेकारः शकारं गृह्णातीत्येतत्सर्वमादिपदेन बोध्यम् ।

## अथ परिभाषाप्रकरणम्।

ननु 'आदेःपरस्य' इति परग्रहणघटितसूत्रकरणे योगविभागाङ्गीकारे च गौरवबाहुल्येन 'तस्मादित्युत्तरस्यादेरि'त्येव न्यासः करणीय इति शङ्कोत्थितौ समाधत्ते—**अष्टाभ्य औशित्यादाविति**। अयमभिप्रायः, परग्रहणयोगविभागाकरणलाघवायोक्तन्यासाभ्युपगमेऽष्टन्शब्दाज्जसि आत्वे अष्टा अस् इति स्थितौ 'अनेकाल् शिदि'त्यनेन 'आदेः परस्य' इत्यस्य परत्वाद्बाधानापत्त्याऽऽदेरेवादेशापत्त्या विभक्तिसकारस्य रुत्वे विसर्गे च कृतेऽष्टाविती[ष्ट]रूपस्य सिद्धिर्न स्यात्। राद्धान्ते 'आदेः परस्ये'त्यपेक्षया अनेकाल् शिदित्यस्य परत्वादनेन तस्य बाधे जस औशादेशे रूपमिष्टं सिद्ध्यतीति। नचोक्तन्यासस्य 'अनेकाल् शिदि'त्यतः प्राक् पाठे नोक्तदोषोद्बोध इति वाच्यम्। 'तस्मादित्युत्तरस्ये'तिवत् 'आदेः परस्ये'त्यस्याप्यागमविषये प्रवृत्त्या 'आज्जसेरसुगि'त्यनेनाकारस्यासुगागमे परसकारस्य संयोगान्तलोपे पूर्वस्य रुत्वे विसर्गे च देवासः ब्राह्मणास इत्यसिद्धेः। नच तत्र 'असुटी'ति न्यासे न दोष इति वाच्यम् 'अश्वक्षीरवृषलवणानामि'त्यनेनासुडापत्त्याऽश्वस्यतीत्यस्य सिद्ध्यनापत्तेः। नचात्र क्यचोऽसुङ्विधाने न दोष इति वाच्यम्। तथा सति 'क्यचि चे'त्यनेनेत्वस्य दुर्वारत्वात्। न च 'क्यच्यसुगि'ति न्यासे नोक्तदोष इति वाच्यम्। बहुलाघवाभावादिति सङ्क्षेपः॥

इति परिभाषाप्रकरणम्।

---

## अथ अच्सन्धिप्रकरणम्।

ननु व्यक्तिपक्षे 'उच्चारित एव शब्दः प्रत्यायको नानुच्चरित' इत्यणुदित्सूत्रभाष्योक्तेः वर्णसमाम्नाये ह्रस्वानामेव पाठादिक्पदोपस्थाप्यैकारादिभिर्दीर्घादीनामग्रहणात्सुधी उपास्य इत्यादौ 'इको यणचि' इति यणादेशो न स्यादतः प्रत्याहारग्रहणेषु तद्वाच्यवाच्ये निरूढा लक्षणा बोध्या। प्रत्याहारवाच्याकारादिवाच्ये दीर्घादौ लक्षणेति तदर्थः। अत्र प्रमाणम् 'दीर्घाज्जसि च' 'त्वादिभ्य' इत्यादिनिर्देश एव। एवञ्चेक्पदेन षट्षष्टेर्ग्रहणं यणूपदेन च सप्तानामिति न यथासङ्ख्यसम्भवः। नच लक्ष्यार्थबोधात्प्राग्भाविनं शक्यार्थबोधमादाय यथासङ्ख्यमस्त्विति वाच्यम्। ऋकारऌकारयोर्मिथः सवर्णत्वेन ताभ्यां प्रत्येकं त्रिंशदुपस्थितौ ऌवर्णस्थाने रेफस्य ऋवर्णस्थाने ऌकारस्य च प्रसङ्गापत्तेर्यथासङ्ख्यसूत्रेण निर्वाहो नास्ति, किन्तु 'स्थानेऽन्तरतम' इति सूत्रेणैवेत्याशयेनाह—**स्थानत आन्तर्य्यादिति**। जातिपक्षे यथासंख्यसूत्रेणापि निर्वाह

इति स्पष्टं 'स्थानेऽन्तरतम' इत्यत्र भाष्ये। (१)भाव्यमानपरिभाषया यणा सवर्णग्रहणाऽप्रसक्त्याऽनुनासिकस्थाने निरनुनासिक एव यणिति बोद्धव्यम्। अणुदित्सूत्रेण जातिपक्षेण गुणानामभेदकत्वेन च प्राप्तस्यापि सवर्णग्रहणस्योक्तपरिभाषया निषेधकरणाद् 'गुणा अभेदका' इति पक्षेऽपि न यणा सवर्णग्रहणमिति दिक्।

ननु सुध्युपास्य इत्यत्र यणादेशे कृते 'अनचि च' इति धकारस्य द्वित्वन्न स्याद्यकारस्य स्थानिवत्त्वेनाच्परत्वादनचीति निषेधप्रवृत्तेरिति चेन्न। अनल्विधाविति स्थानिवत्त्वनिषेधात्। तथाहि—'अनल्विधा'वित्यस्य द्विविधोऽर्थः—अल्त्वव्याप्यधर्म्मावच्छिन्नस्थानितानिरूपितादेशतावद्धर्मिकारोपप्रकारीभूतधर्मावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपकविधौ स्थानिवत्त्वन्नेत्येको नव्यमतसिद्धः। स्थान्यवयववाच्वृत्ती योऽल्त्वव्याप्यो धर्मस्तदाश्रयविधौ न स्थानिवदिति द्वितीयः प्राचीनसम्मतः। नच 'अचः परस्मिन्नि'ति स्थानिवत्त्वेऽच्परत्वस्य तादवस्थ्येन कथं द्वित्वमिति वाच्यम्। 'न पदान्त' इति सूत्रेण धकारस्य द्विर्वचने कर्त्तव्ये स्थानिवत्त्वस्य निषेधकरणादित्याशयेनाह—**इति धकारस्य द्वित्वमिति।** ननु सकारविसर्गाणां द्वित्वे कृतेऽधिकरूपस्य सम्भवाच्चत्वारीति कथनमयुक्तमिति चेन्न। धकारयकारयोर्द्वित्वविकल्पाच्चत्वारीति ग्रन्थकर्त्तुराशयादित्याह—**द्वित्वविकल्पाच्चत्वारि रूपाणीति।** नचान्तरङ्गद्वित्वदृष्ट्या वहिरङ्गयणोऽसिद्धत्वेन द्वित्वं दुर्लभमिति वाच्यम्। अन्तरङ्गपरिभाषायास्त्रिपाद्यामप्रवृत्तेः। नच कार्य्यकालपक्षे त्रिपाद्यामपि तत्प्रवृत्तिरिति वाच्यम्। एकतरपक्षेण लक्ष्यसिद्धौ पक्षान्तरमवलम्ब्य दोषदानस्य भाष्ये क्वाप्यदृष्टत्वात्। अत एव भाष्ये दध्यत्रेत्युदाहरणं 'यणो मयो द्वे वाच्ये' इत्यस्य दत्तमित्याहुः प्राञ्चः। अन्तरङ्गपरिभाषया 'वाह ऊठ्' इति सूत्रस्थोठ्ग्रहणज्ञापकसिद्धत्वात्सपादसप्ताध्यायीस्थत्वेन तद्दृष्ट्या त्रिपाद्या असिद्धत्वेन नात्र कार्य्यकालपक्षेऽपि तत्प्रवृत्तिः। अत एव 'तस्य दोषः संयोगादी'ति वार्तिकस्य साफल्यम्। अन्यथाऽन्तरङ्गसंयोगादिलोपदृष्ट्या वहिरङ्गयणादेरसिद्धत्वेनैव चक्री अत्रेत्यादिसिद्धौ वार्त्तिकं स्पष्टमेव निष्फलं स्यादिति नव्याः॥

**सुद्ध्युपास्य इति।** ननु 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्ये'ति प्रकृतिभावे कथं ? यणिति

---

(१) भाव्यमानेति। 'भाव्यमानेन सवर्णानां न ग्रहणमि'ति परिभाषास्वरूपम्। अणुदित्सूत्रेऽप्रत्यय इत्यनेन सामर्थ्यात्सूत्रप्राप्तं जातिपक्षेण प्राप्तं गुणाभेदकत्वेन च प्राप्तं सवर्णग्रहणं विधीयमानेन न भवतीत्यर्थः। अप्रत्यय इति प्रतिषेध इमां परिभाषां ज्ञापयति। ज्याद ईयस इत्येवान्तर्यतो दीर्घे सिद्धे ज्यादिति दीर्घोच्चारणमपि ज्ञापयतीति बोध्यम्।

चेन्न । 'न समासे' इत्यनेन समासे तन्निषेधात् । नच नित्यसमास एव तन्निषेध इति वाच्यम् । भाष्यकृता नित्यग्रहणस्य प्रत्याख्यातत्वात् यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यात् ।

ननु ध्यायतेः सम्प्रसारणेन सुधी शब्दस्य निष्पन्नत्वात् 'सम्प्रसारणाच्च' इति पूर्वरूपापत्त्या सर्वथा यणो दुर्लभत्वमेव तत्रेति चेन्न । सम्प्रसारणपूर्वत्वे समानाङ्गग्रहणमिति वार्तिकेन तदप्राप्तेः सम्प्रसारणस्थानिकादेशस्यासम्प्रसारणत्वाच्चेति भावः ॥

ननु 'न भूसुधियोः' इति निषेधस्य जागरूकत्वात्सुद्ध्युपास्य इत्यत्र कथमिको यणचीत्यस्य प्रवृत्तिरिति चेन्न । अन्तरङ्गत्वेन प्रत्यये परत एवोक्तनिषेधप्रवृत्तेः । (१) अनन्तरस्येति न्यायेन 'एरनेकाच' 'ओः सुपी'त्यनयोरेव निषेधकरणाच्चेति दिक् । धात्त्रंश इति । अत्र 'दीर्घादाचार्याणामि'त्यनेन तकारस्य द्वित्वम् । यत्तूक्तसूत्रे आचार्यग्रहणस्य पूजार्थकत्वान्नित्य एव निषेध एवञ्च द्वित्वन्नेति तन्न, पूजार्थतायाः प्रामाणिकैरनुक्तत्वात् । 'त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्ये'त्यत्र शाकटायनग्रहणस्यापि पूजार्थकत्वापत्तेश्च । नचेष्टापत्तिः । संस्कर्त्तेति त्रिसकारपरकैयटहरदत्तादिग्रन्थविरोधात् । अत एव 'आत्वा रथमि'ति मन्त्रे तकारस्य द्वित्ववैकल्पिकत्वमुदाहृतम्भाष्ये । एवञ्च धात्त्रंश इत्यत्र द्वित्वञ्च भवतीति कस्यचिदुक्तिरतीवासङ्गतेति बोध्यम् । नच निषेधविकल्पे विधिविकल्पो भवतीत्यस्य फलितत्वादनचि चेति सूत्रेणैव सर्वत्र द्वित्वसिद्धौ व्यर्थं सूत्रत्रयोपादानमिति वाच्यम् । मतभेदप्राप्तव्यवस्थासूचनार्थमावश्यकत्वादिति दिक् ।

ननु 'वा हतजग्धयो'रिति व्यर्थं द्वित्वस्य 'अनचि चे'त्यनेनैव सिद्धत्वादिति चेन्न । पुत्रस्य द्वित्वं कान्ते चेद्धतजग्धयोरेवाक्रोश एवेति नियमार्थमावश्यकत्वात् । तत्फलन्तु पुत्रवित्तीत्यादौ द्वित्वाभावरूपम्बोध्यम् । नच पुत्रहतीत्यादौ हतशब्दपरत्वाभावेन द्वित्वं न स्यादिति वाच्यम् । (२)लिङ्गविशिष्टपरिभाषया हतशब्दपरत्वेन द्वित्वप्रवृत्तेरिति भावः

**आदित्यो देवतेति ।** अदितेरादित्यस्य वाऽपत्यमादित्यः आदित्यशब्दाद्देवतार्थे 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्य' इति ण्यप्रत्ययः 'यस्येति चे'त्यकारलोपे 'हलो यमां यमि लोपः' इति यलोपे आदित्यमित्येकयकारं रूपं सिध्यतीति भावः ॥

---

(१) अनन्तरस्येति । 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वे'ति न्यायस्वरूपम् ।

(२) लिङ्गविशिष्टपरिभाषयेति—'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' इति परिभाषास्वरूपम् । सामान्यरूपेण विशेषेण वा प्रातिपदिकबोधकशब्दग्रहणे सति लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्टस्यापि तेन ग्रहणं बोध्यम् । अपिना केवलस्यापीति तदर्थः । समानाधिकरणाधिकारस्थे कुमारश्रमणादिभिरिति सूत्रे स्त्रीलिङ्गश्रमणादिभिश्च कुमारीशब्दस्यैव सामानाधिकरण्यं नतु कुमारशब्दस्येति व्यर्थः श्रमणादिशब्दो ज्ञापकः ।

ननु गव्यूतिरित्यादौ 'लोपः शाकल्यस्ये'त्यनेन 'हलि सर्वेषामि'त्यनेन वा वलोपः स्यादित्याह—**वान्त इत्यत्रेति**। अयम्भावः, लुप्तनिर्दिष्टो वकार इति भाष्यात्सूत्रे 'लोपो व्योर्वली'ति लोपेन वकारः प्रश्लिष्यते तस्य प्रश्लिष्टलुप्तवकारस्य वार्त्तिकेऽनुवृत्त्या यूतिशब्दे परे श्रूयमाणवकारान्त आदेशः स्यादिति तदर्थः सम्पन्नः। एवञ्च नोक्तप्रयोगे वकारलोपप्रसक्तिः। नच गव्यं नाव्यमित्यादौ वलोपाभावाय सूत्रेऽपि प्रश्लेषस्यावश्यकत्वमिति वाच्यम्। तत्र यकारे पूर्वस्य भत्वात्पदत्वाभावेन सुतरां लोपाप्राप्तेः। नच गव्यमिच्छति गव्यतीत्यादौ लोपाभावार्थमस्तु सूत्रे प्रश्लेष इति वाच्यम्। 'नः क्ये' इति नियमेन तत्र पदत्वासम्भवात्, एवं तर्हि वार्त्तिके एव प्रश्लेषफलमित्याशयेनाह—**छकाराद्वेति**। नच 'लोपो व्योरि'ति सूत्रे वकारस्य भाष्यकृता प्रत्याख्यातत्वाल्लोपाप्राप्त्या प्रश्लेषो नावश्यक इति वाच्यम्। वलोपस्य लौकिकोदाहरणविषयत्वन्नास्तीति भाष्याभिप्रायवर्णनेनादोषात्। अत एव 'इको गुणे'ति'सूत्रे 'अतोल्रान्ते'त्यत्र लुप्तनिर्दिष्टो वकार इति भाष्योक्तं सङ्गतमिति। नचैवं गव्यूतौ वकारोच्चारणस्य चरितार्थत्वेन विष्णवे इत्यत्र (१)वकारलोपः कुतो नेति चेन्नैवम्। छन्दसि दृष्टस्यैवानुविधानेन गव्यूतिरित्यत्र लोपाप्राप्त्या तत्रोच्चारणसामर्थ्यादेव लोपाप्राप्तेः। अध्वपरिमाणेऽपि गव्यूतौ न वलोपस्तस्य संज्ञाशब्दत्वेन संज्ञात्वभङ्गापत्तेः। संज्ञात्वभङ्गभियैव रघुनाथेति संज्ञाशब्दे नित्यमपि णत्वन्न भवतीति भावः॥

ननु (२)लव्यमित्यादौ 'वान्तोयी'त्यनेनैव वान्तादेशे सिद्धे 'धातोस्तन्निमित्तस्यैवे'ति सूत्रं व्यर्थमित्यभिप्रायेण शङ्कते—**तन्निमित्तस्यैवेति किमिति**। अवयवद्वारा समुदाये प्रश्नः। अर्थात्सूत्रमेव किमर्थमिति प्रष्टुराशयः, समाधत्ते—**ओयत इति**। आङ्पूर्वकाद्वेञः कर्मणि लटि यकि सम्प्रसारणे पूर्वरूपे आङा सहाद्गुणे च रूपसिद्धिः। अत्र धातोरित्यस्याभावे 'वान्तोयी'ति वान्तादेशे रूपासिद्धिः, धातोरित्यस्य सत्त्वे तु न वान्तादेशप्राप्तिः यादौ प्रत्यये परे धातोरेचश्चेद्वान्तादेशस्तर्हि यादिप्रत्ययनिमित्तस्यैव धातोरेच इति नियमेन तद्व्यावृत्तेः। नन्वन्तरङ्गवान्तादेशदृष्ट्या वहिरङ्गगुणस्यासिद्धत्वेन वान्तादेशाप्राप्त्या नावश्यकं तत्सूत्रमित्याह—**औयत इति**। वेञः कर्म्मणि लङि यकि सम्प्रसारणे पूर्वरूपे आडागमे 'आटश्च' इति वृद्धौ रूपसिद्धिः। अत्र वान्तादेशे तदसिद्धिरिति कर्त्तव्यमेव सूत्रमिति भावः॥

---

(१) वकारेति—'तस्य लोप' इति सूत्रेण।

(२) लव्यमिति—लुनातेरचो यत्। 'सार्वधातुकार्द्धधातुकयो'रिति गुणः। आदिपदेनाऽवश्यलाव्यमित्यस्य संग्रहः। अत्र लुनातेः 'ओरावश्यके' इति ण्यत्।

ननु शब्दशास्त्रे पक्षद्वयं पदसंस्कारपक्षो वाक्यसंस्कारपक्षश्च । तत्र परस्परनिरपेक्षाणि पदानि संस्क्रियन्ते यत्रासौ पदसंस्कारपक्षः बाहुलकादधिकरणे घञ् । एवं वाक्यात्सुप्तिङन्तचयरूपादुद्धृत्य पदानि संस्क्रियन्ते यत्रासौ वाक्यसंस्कारपक्षः । उक्तञ्च भाष्ये वाक्यादुद्धृत्य पदान्यन्वाख्यायन्त इति, तथा च—पदसंस्कारपक्षे 'कानि सन्ती'त्यनयोः पृथङ्निष्पन्नत्वात् 'अचः परस्मिन्नि'त्यस्याप्राप्त्या यणः शङ्का नोदयते । वाक्यसंस्कारपक्षे तु कानि सन्तीति वाक्ये प्रक्रियाक्रमेण पूर्वं किम् शब्दस्तदुत्तरं जस् ततोऽस्धातुस्तदुत्तरं झीति किमः कादेशे जसः श्यादेशे नुमि दीर्घे च कानीत्यस्य सिद्धिः, अस् धातोः 'श्नसोरल्लोप' इत्यल्लोपे 'झोऽन्त' इति झेरन्तादेशे सन्तीत्यस्य सिद्धिः । एवञ्च स्थानिभूतादकारात्पूर्वत्वेन दृष्टस्येकारस्य यणि कर्तव्येऽचः परस्मिन्निति स्थानिवत्त्वेनाकारस्य सद्भावादस्त्येव यणः प्रसक्तिः । नचात्र पक्षेऽपि विनिगमकाभावात्पूर्वं सन्तीत्येव संसाध्य पश्चात्कानीत्यस्य संसाधने इकारस्याचः पूर्वत्वेन दृष्टत्वाभावात्स्थानिवत्त्वाप्रसक्त्या नोक्तदोष इति वाच्यम् । पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वान्तरङ्गत्वमादायान्तरङ्गाणां पूर्वं प्रवृत्तिरिति कानीत्यस्यैव प्राक् साधनादुक्तदोषस्य तादवस्थ्यादित्याशयेनाह—**कानि सन्तीत्यादि** । 'न पदान्त' इति सूत्रेण पदान्तविधौ स्थानिवत्त्वनिषेधान्न यणापत्तिरूपो दोष इति भावः ॥

ननु 'उरण् रपर' इत्यस्याद्गुण इत्यनेन सहैकवाक्यत्वेनान्वयादवर्णादकारेऽचि परे पूर्वपरयोः स्थाने प्रसज्यमान एव गुणोऽकारो रपरो भवतीत्यर्थे स्थान्यादेशयोरान्तरतम्याभावाद्रपरत्वाप्रसक्तौ कृष्णर्द्धिरित्यादि न सिद्ध्येदत आह—**तत्रान्तरतम्यादिति** । अरित्यस्य रेफशिरस्कस्य रेफद्वारा ऋकारेण स्थानसाम्यादिति तदर्थः । एतयोरनान्तर्यमेवान्तर्यमिति भाष्याच्च साम्यम्बोध्यम् । नच कृष्णर्द्धिरित्यादौ पूर्वपरयोः स्थानित्वेन ऋकारस्यैव स्थानित्वाभावाद्रपरत्वं न स्यादिति वाच्यम् । पूर्वपरयोरिति द्विर्वचननिर्देशेन सहितयोरवयवयोरेव स्थानित्वात् । उक्तं हि भाष्ये—यो हि उभयोः स्थाने भवति लभतेऽसावन्यतरतो व्यपदेशमिति । अत एव द्वयोः स्थानिनोर्द्वावादेशौ माभूतामित्येकग्रहणं कृतम् । वस्तुतस्तु गुणरूपविधेयगतैकत्वसंख्याविवक्षणात्पूर्वपरयोरुभयोरेकवाक्यतयैव विधेयान्वया दनयोः पूलयोः कटं कुर्वि'त्यादाविवोभयसम्बध्येकविधेयस्य प्रतीतेरेकग्रहणं स्पष्टार्थमित्यन्यत् । नच रलपराणामादेशानां विधाने सूत्रं व्यर्थमिति वाच्यम् । 'आप् ज्ञप्यृधामीत्' 'भ्रजामिदि'त्यादौ दोषापत्तेर्दुर्वारत्वादिति दिक् ॥

ननु अव एहीति स्थितौ पूर्वान्तवद्भावेनाऽऽङ्त्वात् 'ओमाङोश्च' 'एत्येधत्यूठ्सु' 'एङि पररूपमि'त्येतेषु प्राप्तेषु वृद्धेर्बाधकत्वादेङि पररूपमित्यस्य तथा बाधे बाध्यसा-

मान्यचिन्ताश्रवणादोमाङोश्चेत्यस्यापि बाधः स्यादित्याह—पुरस्तादिति। 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरानि'ति न्यायाकारः। अवश्यं स्वपरस्मिन्बाधनीये प्रथमोपस्थितानन्तरबाधेन चारितार्थ्ये पश्चादुपस्थितस्य परस्य बाधे मानाभावः, आकाङ्क्षाया निवृत्तेर्विप्रतिषेधशास्त्रबाधे बीजाभावाच्चेत्येतस्य बीजम्। आरम्भसोऽपवादा अव्यवहितोत्तरवर्त्तिनो विधीन्बाधन्ते न व्यवहितवर्त्तिन इति तदर्थः। तथा च प्रकृते एत्येधत्यूठ्स्वित्यनेन एङि पररूपमित्यस्यैव बाधो न त्वोमाङोश्चेत्यस्येति वृद्धेर्बाधकत्वादेङि पररूपमित्यस्य बाधेन लब्धावकाशायास्तस्याः सामर्थ्यविरहात्परेण (१) पररूपेण बाधादिति भावः।

ननु प्रौढ इत्यत्रेव प्रोढवानित्यत्राप्यूढशब्दपरत्वाद् वृद्धिः स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**अर्थवद्ग्रहणे नाऽनर्थकस्येति।** शाब्दिकनये वृत्तिविषये समुदायशक्त्यङ्गीकारेण भूतकालिकवहनकर्तृरूपार्थस्योढवानिति समुदायवृत्तित्वादूढवत एकदेशस्योढस्यार्थवाचकत्वाभावात् तस्मिन्वृद्धिर्वक्ष्यमाणज्ञापकज्ञापितयाऽर्थवत्परिभाषयाऽर्थवदूढशब्दावयवेऽचि परे तद्विधानादिति भावः। 'व्रश्चेति' सूत्रे राजेः पृथक् भ्राजिग्रहणमत्र ज्ञापकम्। तथा हि परिभाषाऽभावेऽर्थवदनर्थकोभयविधराजशब्दस्य ग्रहणे बाधकाभावाद् भ्राजौ राजेरपि सत्त्वेन राजिग्रहणेनैव भ्राजेरपि षत्वसिद्धौ व्यर्थं भ्राजिग्रहणमर्थवत्परिभाषां ज्ञापयतीति। न च भ्राजिग्रहणसत्त्वे फणादिराजिना साहचर्य्येण फणादेरेव भ्राजेर्ग्रहणात्षत्वं सिद्ध्यति तदभावे राजिना फणादेस्तदतिरिक्तस्य च भ्राजतेर्ग्रहणात्तस्य षत्वं स्यादिति फणादेर्भ्राजेर्ग्रहणाय तदतिरिक्तस्य तस्याग्रहणाय च भ्राजिग्रहणस्यावश्यकत्वेन तस्य ज्ञापकत्वमयुक्तमिति वाच्यम्। 'व्रश्चादिसूत्रे' राजृ इति पाठकरणादृकारानुबन्धकस्य राजो षत्वविधानसाहचर्यादुक्तानुबन्धकस्यैव फणादेर्भ्राजतेर्ग्रहणात्षत्वे तदतिरिक्तभ्राजेः प्राक् ऋकारमनुबध्य ऋभ्राज इति पाठेन 'भ्राजभासेति' विकल्पस्य वाचिकत्वादृकारस्यात्मनेपदमात्रफलकत्वेन तत्स्थानेऽकारमनुबध्य भ्राज इति पाठेन वा राजिना तस्याग्रहणात्कुत्वे च विभ्राट् विभ्रागिति रूपद्वयसाधुत्वस्य सुलभत्वेन भ्राजिग्रहणज्ञापकत्वस्य युक्तत्वादिति केचित्। वस्तुतस्तु व्रश्चादिसाहचर्य्येण धातुसंज्ञकराजेर्ग्रहणेन न भ्राजघटकराजो ग्रहणं तस्य धातुसंज्ञकत्वाभावात् साहचर्य्यपरिभाषाया अनित्यत्वेऽपि ऋकारानुबन्धकस्य राजतेर्ग्रहणेन भ्राजघटकराजशब्दस्योक्तानुबन्धकत्वाभावाद्राजिनाऽस्य ग्रहणं न स्यादृकारस्य समुदायानुबन्धत्वात् एवञ्च भ्राजि-

(१) पररूपेणेति। ओमाङोश्चेति सूत्रविहितेनेत्यर्थः।

ग्रहणस्यावश्यकत्वे परिभाषायां किं ज्ञापकमिति चेदत्र भाष्यतत्त्वविदः, उपस्थितार्थस्य शब्दं प्रति विशेषणत्वेनान्वयसम्भवे तत्यागे मानाभावोऽस्या ज्ञापकः । किञ्च 'स्वं रूपमि'ति सूत्रे स्वशब्देनाऽऽत्मीयवाचिनाऽर्थो गृह्यते रूपशब्देन स्वरूपं तेन तदुभयं शब्दस्य संज्ञीति सूत्रार्थः संपन्नः तत्रार्थो न विशेष्यस्तत्र शास्त्रीयकार्याऽसम्भवात्किन्तु शब्दस्य विशेषणम्, एवञ्चार्थविशिष्टः शब्दः संज्ञीति फलितं तेनाऽर्थवत्परिभाषा सिद्धेति भाष्ये स्पष्टमिति दिक् ॥

ननु रपरश्रुतेरन्यत्र चारितार्थ्येन प्र ऋच्छतीत्यत्र वृद्धौ कृतायां रपरत्वे च कृते पूर्वान्तवद्भावेन रेफस्य पदान्तत्वाश्रयणात्तस्य 'खरवसानयोरि'ति विसर्गः स्यादित्यत आह—**इह पूर्वान्तवद्भावेन पदान्तरेफस्य न विसर्ग इति ।** अत्र प्रमाणमाह—**उभयथर्क्षिवति ।** अयम्भावः, यद्येकादेशस्थले रेफस्य पदान्तत्वाश्रयणेन विसर्गः स्यात्तदा उभयथर्क्षिवत्यादावपि तदापत्त्या निर्देशासङ्गतिस्स्यादित्येतन्निर्देशादुक्तस्थले रेफस्य तत्वाश्रयणेन विसर्गो न भवतीति कल्पनादुक्तप्रयोगे न काप्यनुपपत्तिरिति । न चोक्तनिर्देशे गुणस्य पदद्वयसम्बन्धिवर्णद्वयाऽऽश्रितत्वाद्बहिरङ्गत्वेनाऽसिद्धत्वाद्रेफाभावेन विसर्गो नेति वाच्यम् । विसर्गस्यापि रेफषकारात्मकवर्णद्वयाश्रितत्वेन बहिरङ्गत्वात् । न च गुणस्य परनिमित्तकत्वरूपबहिरङ्गत्वसत्त्वाद्विसर्गदृष्ट्याऽसिद्धत्वेन रेफाभावान्न विसर्ग इति वाच्यम् । उक्तरूपबहिरङ्गत्वस्योभयोस्तुल्यत्वादिति । वस्तुतस्तु नात्र (१)बहिरङ्गपरिभाषाप्रवृत्तिः सम्भावनीया त्रिपादीस्थेऽन्तरङ्गे कर्त्तव्ये कार्यकालपक्षेऽप्युक्तपरिभाषाया अप्रवृत्तेः । अत एव 'उरण् रपर' इति सूत्रे नार्कुटी नार्कल्पिरित्यादौ रेफस्य विसर्गाभावाय ( रेफस्य पूर्वान्तवत्वे विसर्जनीयप्रतिषेधो वक्तव्य ) इत्यपूर्ववचनमङ्गीचकार भगवाञ्छ्रीपतञ्जलिः, अन्यथा बहिरङ्गपरिभाषया विसर्गदृष्ट्या वृद्धेरसिद्धत्वेन विसर्गाप्राप्त्या भगवताऽङ्गीकृतमपूर्ववचनमसंगतं स्यादिति दिक् ॥

ननु ( येन विना यदनुपपन्नं तत्तेनाक्षिप्यते ) यथाऽऽकृतिः पदार्थ इति नये घटमानयेत्यादौ जातेरमूर्त्तत्वादानयनासम्भवेन जात्या व्यक्तेराक्षेपस्तथोपसर्गसंज्ञा क्रियां

( १ ) बहिरङ्गपरिभाषेति । 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' इति परिभाषास्वरूपम् । अन्तरङ्गे कर्तव्ये जातं तत्कालप्राप्तिकं च बहिरङ्गमसिद्धमित्यर्थः । 'वाह ऊठ्' एतत्सूत्रस्थोठ्ग्रहणज्ञापितेयं परिभाषा, इत्थं हि ज्ञापनप्रकारः, ऊठ्ग्रहणाभावे सम्प्रसारणमात्रविधानेन लघूपधगुणे वृद्धिरेचीति वृद्धौ विश्वौह इत्यादिसिद्धावूठ्ग्रहणं व्यर्थं सत्परिभाषां ज्ञापयति ज्ञापितायामस्यां तु लघूपधगुणदृष्ट्या सम्प्रसारणस्यासिद्धत्वाल्लघूपधगुणाप्राप्त्या वृद्ध्यभावेन रूपासिद्धेः स्वांशे चरितार्थमूठ्ग्रहणमिति बोध्यम् ।

विना नोपपद्यते इत्युपसर्गेण क्रियाक्षेपः. क्रिया च धात्वर्थस्तस्याक्षेपो न सम्भवतीति तद्वाचिनो धातोरेवाक्षेपात्सिद्धे धाताविति व्यर्थमेवेत्याशयेन शङ्कते—**उपसर्गेणैवेति।** **पुनर्वृद्धीति।** योगविभागसामर्थ्याद् वृद्धिरेव न कदाचिदपि वृद्ध्यभाव इति भावः। नचोपसर्गेणाक्षिप्तेऽपि धातौ प्रगत ऋद्धः प्रर्द्धः इत्यत्र प्रस्योपसर्गत्वाद्धस्य ऋकारादि धातुनिष्पन्नत्वाच्च प्राप्तवृद्धिवारणायोपसर्गताप्रयोजकधातुत्वलाभार्थं धातुग्रहणस्यावश्यकत्वेन तस्य कथं पुनर्वृद्धिविधानार्थत्वमिति वाच्यम्। प्रशब्दस्य गमनिरूपितोपसर्गत्वेऽपि ऋकारादिधातुनिरूपितोपसर्गत्वाभावाद् वृद्ध्यप्राप्त्या धातुग्रहणस्योक्तार्थत्वाक्षतेः। उक्तं हि यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञे भवत इति। न च लाघवादुपसर्गपदं तिरस्कृत्य तत्स्थाने गतेरित्येवास्त्विति वाच्यम्। 'अच्छगत्यर्थवदेष्वि'ति गतिसंज्ञत्वादच्छर्च्छतीत्यादौ वृद्ध्यापत्तेरिति दिक्॥

ननु नाज्झलावित्यज्झलोः सावर्ण्यनिषेधादकः सवर्णेऽचि एव प्रसिद्धत्वेन सवर्णेऽच्येव दीर्घप्रवृत्तावचीति व्यर्थमेवेत्यभिप्रायेण शङ्कते—**अचि किमिति।** पूर्वं वर्णानामुपदेश इत्यादिभाष्योक्तरीत्या 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' 'नाज्झलावि'त्येताभ्यां प्राक् ग्रहणकशास्त्रस्यासिद्ध्या नाज्झलावित्यस्य वाक्यार्थबोधावसरेऽच्पदेन वर्णसमाम्नायस्थानां ह्रस्वानामेव ग्रहणात्तेषामेव सवर्णसञ्ज्ञानिषेधेन दीर्घाणां हल्भिः सावर्ण्यं स्यादेवेत्याशयेनाह—**कुमारी शेते।** इति भावः।

ननु 'अकः सवर्णे दीर्घ' इत्यनेन ऋॡएतयोर्द्विमात्रिकयोर्विधानेनोपपत्तौ वार्तिकद्वयं व्यर्थमिति चेन्न। दीर्घशब्देन विधीयमानापेक्षया वार्तिकद्वयेन विहितस्य विलक्षणत्वात्। किन्तद्वैलक्षण्यमिति दर्शयति—आद्यस्य मध्ये द्वौ रेफौ तयोरेका मात्राऽभितोऽज्भक्तेरपरा मात्रा, एवं द्वितीयस्य मध्ये द्वौ लकारौ तयोरेका मात्राऽभितोऽज्भक्तेरपरा मात्रा इत्थम्भूतयोः ऋॡवर्णयोरकः सवर्णे दीर्घ इत्यनेनोपपत्त्यभावाद्वार्तिकद्वयमावश्यकमित्यत आह—**ऋति सवर्णे ऋ वेति।** नच वार्तिकद्वयस्यावश्यकत्वेऽपि सञ्ज्ञाशब्दस्यार्द्धमात्रिकत्वादृति सवर्णे लोपो वेति न्यासेनैव सिद्धौ ऋकारविधानं निष्फलमिति वाच्यम्। लोपेन प्रयोगसिद्धावपि वार्तिकद्वयविहितविधेययोरनिष्पत्त्या ऋकारविधानस्य साफल्यात्। 'तुल्यास्य'सूत्रस्थभाष्ये तु सूत्रेणैव ऋकारद्वयस्य स्थाने रेफद्वयवत्तारु गुणकृतान्तर्य्येण कदाचिद्रेफद्वयगर्भस्य, विवृतत्वान्तर्य्येण कदाचिद्विवृतस्य, ॡकारे लकारवत्तान्तर्य्येण कदाचिद् द्विलकारस्य, कदाचिद्विवृतत्वसाम्येन रेफवत्तासाम्येन च तादृशस्य ऋकारस्य च विधानेन विकल्पफलमाश्रित्य वार्त्तिकद्वयं प्रत्याख्यातौ। वार्तिकद्वयविहितविधेययोरच्त्वं तु अइउण्सूत्रानन्तरं पाठाद्बोध्यमित्यलम्। **अभितोऽज्भक्ते**

रिति । 'ए ओङ्' सूत्रे भाष्ये यथा मातृणामित्यादौ णत्वाद्युपपत्तयेऽङ्गीक्रियमाणे वर्णैकदेशा वर्णग्रहणेन गृह्यन्ते इति पक्षे खट्वाभिमालाभिः वाचा तरतीत्यादौ प्राप्ताः तुगैच्-ह्रस्वजूलक्षणाष्ठनः 'दीर्घादि'ति तुग्विधानसामर्थ्य-तपरकरणसामर्थ्य-नौद्व्यच इति सूत्रस्थनौग्रहणसामर्थ्यैर्भेदेन प्रतिभासमानेषु अवयवसदृशस्वतन्त्रवर्णाश्रयकार्य्याभावज्ञापनेन वारिताः तथा प्रातर्ऋतमित्यत्र 'रोरी'ति लोपस्य तद्लृकार इत्यत्र 'तोर्लि'त्यस्य च शङ्कासमाधानकरणेन यत्तद्रेफात्परं भक्तिरिति 'हयवरट्' सूत्रस्थभाष्येण च वार्त्तिकद्वयविषययोः ऋलृवर्णयोरमितोऽज्भागस्य समुचितत्वमिति भावः ।

ननु अयङ् स्फोटायनस्येत्यत्र (१)धाराप्रवाहन्यायेनातीत्यस्य सम्बन्ध आहोस्वित् मण्डूकप्लुत्याऽन्नीत्यस्येति शङ्कां समाधत्ते—**अतीति निवृत्तमिति** । इत्थं हि समाधानुराशयः, 'प्लुतप्रगृह्या' इत्यत्र नित्यग्रहण किमर्थमिन्द्रे चेत्यारम्भसामर्थ्यादेव नित्यत्वलाभादिति भाष्योक्तमेत्र मण्डूकानुवृत्तौ ज्ञापकम् । अन्यथा गवेन्द्र इत्यादावतपरत्वाभावादवङोऽप्राप्त्या तदर्थं सूत्रस्यावश्यकत्वादारम्भसामर्थ्यान्नित्यत्वलाभ इति भगवदुक्तिरसङ्गता स्यात् । मण्डूकानुवृत्तिस्वीकारे पूर्वसूत्रेणैव तु तत्रावङ्सिद्धाविन्द्रे चेत्यस्य वैयर्थ्येन तत्सामर्थ्यान्नित्यत्वलाभसम्भवान्नित्यमिति किमिति तदुक्तेः सामञ्जस्यमेवेति । एतदुत्तरन्तु हरी एतावित्यादावयमेव प्रकृतिभावो यथा स्यादिति मूले एव स्फुटमस्तीति दिक् ।

ननु गो अग्रमित्यादाविव गवाक्ष इत्यत्रापि प्रकृतिभावो दुर्वार इत्यत आह—**व्यवस्थितविभाषयेति** । विगताऽवस्था विकल्परूपा जाताऽस्यामिति व्यवस्थिता सा चासौ विभाषा चेति व्यवस्थितविभाषा तया नैमित्तिकप्रवृत्त्येत्यर्थः । विभाषारूपे विकल्पे सामान्येन विधिनिषेधरूपांशद्वयमुपस्थितम् । प्रकृते विशेषविधिरूपा व्यवस्थिता, क्वचिन्निषेधरूपा व्यवस्थिता, यथा क्वचिन्न पापेऽभिनिवेश इत्यादि तदुदाहरणं मूले एव वक्ष्यति । देवत्रातो गलो ग्राह इतियोगे च सद्विधिः । मिथस्तेन विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतस्तेन प्राण्यवयवे नेति शश्छोरित्यत्र भाष्ये स्पष्टमिति न गवाक्ष इत्यत्रोक्तदोषः

(१) धाराप्रवाहेति—यथाऽविच्छिन्नेन धारा वहति तथाऽविच्छिन्नेन यत्किञ्चित्सूत्रस्थपदानामुत्तरोत्तरं सूत्रान्तरेषु सम्बन्धो भवति । इयमेव धाराप्रवाहन्यायेनानुवृत्तिरित्यभिधीयते । यथा मण्डूका उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गच्छन्ति तथा सूत्रस्थपदान्यपि व्यवधानेनोत्तरोत्तरं सूत्रान्तरेषु सम्बद्धानि भवन्ति । मण्डूकोत्प्लुतौ मध्ये कियत्स्थानं परित्यज्योत्तरस्थानेन सम्बन्धो भवति । तथा सूत्रस्थपदानां मध्ये कियत्सूत्रं परित्यज्योत्तरसूत्रसम्बन्धो भवति । इयमेव मण्डूकप्लुतिन्यायेनानुवृत्तिरित्यभिधीयते ।

'अभीत्प्रेषणे परस्य चे'ति सूत्रेणाभीदभीन्विहर इत्यत्र प्राप्तप्लुतवारणाय तत्र वार्तिककृता कृतस्य बहुलग्रहणस्य प्रत्याख्यानाय भाष्यकृता कृतेन 'विभाषा पृष्टप्रतिवचने हे'रित्यत्र विभाषेति योगविभागेन विभाषेत्यस्य व्यवस्थितविभाषात्वध्वननात् । नच व्यवस्थितविभाषयैवेन्द्रे नित्यानङः सिद्धाविन्द्रे चेति व्यर्थमिति वाच्यम् । भाष्योक्तातिरिक्तानां व्यवस्थितविभाषाणामप्रामाणिकत्वबोधनाय तस्य सत्त्वादिति भावः ॥

ननु 'नान्तः पादमव्यपरे' इत्थमेव सूत्रं लाघवाद्विधेयम् एतस्मान्नकारानुवृत्त्या गोशब्दस्य यत्प्राप्नोति तन्नेति 'सर्वत्र विभाषा गोः' इत्यस्यार्थकरणेऽपि न कश्चिद्दोष इति चेन्न । तथा सति 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यमि'त्यत्रापि नकारानुवृत्त्याऽचि परे प्लुतप्रगृह्ययोरेव निषेधेन दोषस्य दुर्वारत्वात् । एवञ्च 'प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे' इत्येव सूत्रपाठः समुचित इत्यत आह,—**अथ प्रकृतिभाव इति ।**

ननु 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यमि'त्येतद्घटकप्लुतादिपदार्थज्ञानाय तत्सञ्ज्ञाविधायकसूत्रानन्तरमेवोक्तसूत्रपाठस्य समुचितत्वात्तथाऽकरणेन प्राचीनपठितेन्द्रे च नित्यमित्यत्र नित्यग्रहणस्य प्रामादिकत्वज्ञापनान्नित्यस्यानुवृत्त्यभावेऽपि वाग्रहणनिवृत्त्यैव नित्यत्वलाभात्प्लुतप्रगृह्या इत्यत्र नित्यग्रहणं व्यर्थमित्यत आह—**नित्यमिति किमिति ।** अयम्भावः, नित्यग्रहणाभावे हरी ईशावित्यत्र लब्धावकाशस्य 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यमि'त्यस्य 'चक्रि अत्र' इत्यत्र सावकाशेन 'इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्चे'त्यनेन हरी एतावित्यादावुभयोः प्राप्तौ विप्रतिषेधेन परत्वाद्बाधे विकल्परूपो दोषः स्यात् । कृते तु नित्यग्रहणे नोक्तदोषः नित्यग्रहणसामर्थ्यात्तस्याकोऽसवर्णे इत्यस्य प्लुतप्रगृह्या इत्यनेन बाधादिति । नच प्रकृतिभावदृष्ट्या प्लुतत्वासिद्धत्वेन कथं प्रकृतिभाव इति वाच्यम् । प्रकृतिभावविधानसामर्थ्यात्तस्य सिद्धत्वकल्पनादिति दिक् ।

ननु 'अवङ् स्फोटायनस्ये'त्यतोऽचीत्यनुवृत्त्यैव सिद्धे 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यमि'त्यत्राचीति व्यर्थमिति चेन्न । तस्य सामर्थ्यात्प्रत्यासत्त्या यस्मिन्नचि प्लुतप्रगृह्ययोः प्रकृतिभावस्तदज्निमित्तकार्यस्यैव तेनाभाव इत्यर्थज्ञापनेन साफल्यात् । तेन जानु उ अस्य रुजतीत्यादावुञो निपातस्य प्रगृह्यत्वेऽपि जानू अस्य रुजतीत्यत्र सवर्णदीर्घरूपसन्धिर्भवत्येवेत्यलम् ।

ननु चकारेण प्रकृतिभावोऽनुकृष्यते तस्य च ह्रस्वविधानसामर्थ्येनैव सिद्धिरित्यत आह—**ह्रस्वविधिसामर्थ्यादेवेति ।** नच ह्रस्व-यणोर्विधानसामर्थ्याद्विकल्पसिद्धिरूपफलस्य सत्त्वेन ह्रस्वविधेः सफलत्वान्मूलोक्तमसङ्गतमिति वाच्यम् (१)अपदान्तादौ

(१) अपदान्तादाविति—**गौर्य्यौ इत्यादावित्यर्थः ।**

प्रश्लिष्टार्थेन सामर्थ्यविरहादुभयोर्विधानसामर्थ्याद्विकल्पासिद्ध्या ह्रस्वविधेर्वैयर्थ्यस्य स्पष्टत्वेन तस्मात्प्रकृतिभावसिद्धिः सुलभैवेति भावः ॥

चकारो न कर्तव्य इति । इत्थं हि तत्खण्डनप्रकारः—प्रकृतिभावस्य चकारेणानुकर्षणेऽपि तस्य चानुकृष्टत्वेन चानुकृष्टं नोत्तरत्रेति परिभाषया 'ऋत्यक' इत्यत्र सम्बन्धाभावात्तदर्थं ह्रस्वविधानस्यावश्यकत्वमिति तेनैव प्रकृतिभावसिद्धौ तदनुकर्षणार्थश्चकारो व्यर्थ एवेति । 'अन्यथैवं यथाभिप्रेताख्याने क्त्वाणमुलाविति' सूत्रे णमुल्ग्रहणमेवोक्तपरिभाषायां ज्ञापकं बोध्यम् । तथा हि परिभाषाऽसत्त्वे क्त्वा चेत्येव सूत्रमस्तु. चकारेण 'स्वाङ्गेमि णमुलि'त्यतो णमुलोऽनुकर्षणादेव सिद्धौ तत्सूत्रस्थं णमुल्ग्रहणं व्यर्थं सञ्ज्ञापयति चानुकृष्टं नोत्तरत्रेति ज्ञापितायामस्यां तु उत्तरत्र 'तिर्य्यच्यपवर्ग' इत्यादौ णमुलः सम्बन्धो न स्यात्तस्य चानुकृष्टत्वादिति तदर्थं णमुल्ग्रहणमावश्यकमिति तस्य स्वांशे चारितार्थ्यं जातमिति भावः । **भाष्ये स्थितमिति ।** प्रकृतसूत्रस्थभाष्ये पूर्वोक्तो भावः स्थित इति तदर्थः ।

ननु ह्रस्वाभावपक्षे प्रकृतिभावाय चकारस्यावश्यकत्वेन चक्री अत्र चक्रि अत्र चक्र्यत्रेति रूपत्रयसिद्धिरिति चेन्न । चकारस्य समुच्चायकत्वे तत्प्रत्याख्यानपरभाष्यविरोधात् । संहिताया अविवक्षयैव त्वदुक्तरूपस्य निष्पत्तेश्च । चक्र्यत्रेत्यत्र न 'स्कोः संयोगाद्योरि'ति लोपप्राप्तिः 'अचः परस्मिन्नि'ति यणः स्थानिवत्त्वात् । न च 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदि'ति शङ्क्यः । तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेष्विति तन्निषेधात् । ननु ऋत्यक इति पृथक् पाठाकरणरूपलाघवादकोऽसवर्णे शाकल्यस्येत्येव सूत्रमस्त्विति वाच्यम् । होतृ ऋकारो ब्रह्मर्षिरित्यादौ सवर्णार्थमनिगर्थञ्च तस्य पृथक् पाठावश्यकत्वादित्यलम् ॥

ननु अप्लुत इत्युक्ते प्लुतस्याध्याहार आवश्यकस्तथा च प्लुतोऽप्लुतो भवतीत्यर्थेनैव सिद्धौ वत्करणं व्यर्थमित्याशयेन शङ्कते—**वत्किमिति ।** इत्थं हि समाधातुराशयः, वद्ग्रहणसत्त्वे चन्द्रवन्मुखमित्यादौ मुखे चन्द्रगताऽऽह्लादकत्ववद् प्लुतेऽप्लुतगतसन्ध्यादिरूपकार्यमतिदिश्यते न तु प्लुतस्य निवृत्तिः क्रियतेऽतिदेशानां स्वभावात् तथा च अग्ना इतीत्यादावग्नीति प्रेषणे परस्य चेत्येतद्विहितप्लुताश्रयः प्रकृतिभावः प्राप्नोति परन्तु प्लुतस्यासिद्धत्वादीदूदेद्द्विवचनमित्यनेन कृते प्रगृह्यत्वे तदाश्रये प्रकृतिभावेऽपि प्लुतः श्रूयेत वद्ग्रहणाभावे प्लुतो नैव श्रूयेत प्लुतस्याप्लुतत्वविधानादतो वद्ग्रहणमावश्यकमिति । न च सत्यपि वद्ग्रहणे प्रसज्यप्रतिषेधाश्रयणात्प्लुतवन्नेत्यर्थस्यैव सम्भव इति वाच्यम् । तदाश्रयणे गौरवात् । नचाप्लुतवदित्यत्र पर्युदासेऽपी

इतीत्यादौ प्रगृह्याश्रयं प्रकृतिभावं बाधित्वा परत्वात्प्लुतवद्भावे दीर्घादिकं स्यादिति वाच्यम्। इतिशब्दसापेक्षाप्लुतवद्भावापेक्षया वर्णमात्रापेक्षप्रकृतिभावस्यान्तरङ्गत्वात्। नचाप्लुतवदित्यस्य प्लुतकार्यं नेत्येवार्थः कुतो नेति वाच्यम्। शब्दमर्यादया तदलाभात् शब्दतः प्लुतेऽप्लुतसादृश्यविधानस्यैव लाभात्। न च भाष्ये प्लुतकार्यं नेत्यर्थस्यैव दर्शनात्कथं तद्विरुद्धार्थस्वीकार इति वाच्यम्। तस्य फलितार्थाभिप्रायकत्वादिति दिक् ॥

ननु क्लीबे स्त्रीलिङ्गे वा अमू आसाते इत्यत्र मुत्वस्यासिद्धत्वादेकारान्तत्वेन ईदूदेद्द्विवचनमित्यनेनैव प्रगृह्यत्वे सिद्धेऽदसोमादित्यस्य तदुदाहरणमयुक्तमित्याशङ्क्य समाधत्ते—**रामकृष्णावमू आसाते इति।** अयम्भावः, क्लीब-स्त्रीलिङ्गयोः प्रगृह्यत्वे सिद्धेऽपि पुंलिङ्गे न तेन प्रगृह्यत्वसिद्धिर्मुत्वस्यासिद्धत्वेन तत्रौकारान्तत्वात्। अदसोमादित्येतत्प्रति न मुत्वस्यासिद्धत्वम् आरम्भसामर्थ्यादिति।

ननु 'मय उञो वो वे'ति वत्वविधानस्य प्रकृतिभावबाधनानुस्वारव्यावृत्तिरूपफलद्वयस्य सत्त्वात्प्रकृते किमित्याकाङ्क्षायामाह—**वत्वस्यासिद्धत्वान्नानुस्वार इति।** 'मय उञो वो वे'त्यस्य त्रैपादिकत्वादनुस्वारदृष्ट्याऽसिद्धत्वेन हल्परत्वाभावादनुस्वाराप्राप्तिः। (१) अन्यथा इको यणचीत्यस्यानन्तरमस्य पाठेन यणोऽनुवृत्त्यैव सिद्धे वत्वविधानस्य वैयर्थ्यं स्यात्। वस्तुतस्तु न त्रिपाद्यां पाठस्यानुस्वाराभावः फलं किन्तु वत्वस्यासिद्धत्वादुकाररूपेऽचि परे प्रत्यङ्ङ्वास्ते। प्रत्यङ्ङ्वकरोदित्यादौ ङमुट्सिद्धिरूपं तत्, अनुस्वारवारणन्तु (२) सन्निपातपरिभाषयैव सिद्धमिति भावः ॥

ननु 'ईदूतौ सप्तमी'त्येवं लाघवात्सूत्रमस्तु सप्तम्याः प्रत्ययत्वेन (३) प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्तविधानादीदूदन्तं यत्सप्तम्यन्तं तत्प्रगृह्यसंज्ञमित्यर्थेनैव 'सोमो गौरी

---

(१) अन्यथेति। वत्वविधानस्य प्रकृतिभावमात्रबाधनार्थत्वे।

(२) सन्निपातपरिभाषयेति। 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्ये'ति परिभाषास्वरूपम्। द्वयोः सम्बन्धः सन्निपातस्तल्लक्षणजायमानो विधिः स्वातिरिक्तसम्बन्धविघातकशास्त्रेऽनिमित्तं भवतीत्यर्थः। प्रकृते किमु उक्तमित्यनयोः उकाराव्यवहितोत्तरत्वरूपोऽजव्यवहितपूर्वत्वरूपश्च सम्बन्ध एव सन्निपातस्तल्लक्षणजायमानो वत्वविधिः स्वातिरिक्तसम्बन्धविघातकेऽनुस्वारे निमित्तं न स्यादित्थमनुस्वारवारणमवधेयम्।

(३) प्रत्ययग्रहणेति। 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' इति परिभाषास्वरूपम्। प्रत्ययग्रहणे शास्त्रे प्रत्ययबोधकं पदं विशेष्यान्तरासत्त्वे तदादिविशेष्यमादाय तदन्तोपस्थापकमिति तदर्थः।

अधिश्रित' इत्यादौ प्रत्ययलक्षणेन सप्तम्यन्तत्वात् प्रगृह्यत्वे सिद्धेऽर्थग्रहणं व्यर्थमित्याशयेन शङ्कते—अर्थग्रहणं किमिति । इत्थं समाधातुराशयः, अर्थग्रहणाभावे (१) संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्तीत्यनया परिभाषया तदन्तविधिनिषेधादीदूदेद्द्विवचनमितिवदीदूदन्ताया सप्तमीत्यर्थापत्तावेकादेशस्य परादिवद्भावात्सप्तमीत्वेन ययी आस्ते इत्यादावेव प्रगृह्यसंज्ञा स्यात्सोमो गौरी अधिश्रित इत्यादौ सप्तम्या लुकापहारेणाभावात्सा न स्यादिति तदर्थमावश्यकमर्थग्रहणमिति । न च ययीत्यादेरनभिधाना-त्किञ्चेकारांशे चारितार्थ्येऽप्यूकारांशे वैयर्थ्यस्य सद्भावेन सूत्रारम्भसामर्थ्यात् ईदूतौ सप्तमी प्रगृह्यम् अदस एव द्विवचनमिति लघुभूतन्यासेनैव निर्वाहे गुरुभूतन्यासकरणाच्च संज्ञाविधावित्यस्या अप्रवृत्तौ तदन्तविधिसत्त्वे ईदूदन्तं यत्सप्तम्यन्तमित्यर्थे 'सोमो गौरी अधिश्रित' इत्यत्र प्रगृह्यत्वे सिद्धे व्यर्थमेवार्थग्रहणमिति वाच्यम् । तस्य सामर्थ्यात्सप्तम्यर्थमात्रबोधकत्वे एवेदूदन्तस्य संज्ञा यथा स्यान्न तदधिकार्थबोधकत्वे इत्यर्थज्ञापनेन साफल्यात् । तेन 'वाप्यामश्वो वाप्यश्व' इत्यत्र न प्रगृह्यसंज्ञा । अत्र वापीशब्दस्य वापीनिष्ठाधिकरणतानिरूपिताधेयताश्रयबोधकत्वेन सप्तम्यर्थमात्रवृत्तित्वाभावादित्येवाह मूले—वृत्तावर्थान्तरोपसङ्क्रान्ते मा भूदिति । तथा चायं निष्कर्षः कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपायां वृत्ताववयवार्थान्वितसमुदायार्थोपसर्जने सति प्रगृह्यसंज्ञा मा भूदिति । तत्र समासवृत्तिमुदाहरति—वाप्यश्व इति । अत्र सुप्सुपेत्यनेन संज्ञायामित्यनेन वा समासः । 'समर्थः पदविधिरि'ति सूत्रात् वृत्तौ विशिष्टविषयकशक्त्यैकोपस्थितिजनकत्वरूप एकार्थीभावः स्वीक्रियते स च राजपुरुष इतिवृत्तावेव न तु वाक्ये 'राज्ञः पुरुष' इत्यत्र, वाक्ये पृथगर्थानि पदानि वृत्तावेकार्थानीति समर्थसूत्रभाष्यात् । एवञ्च 'वाप्यश्व' इत्यादौ अवयवार्थसंवलितसमुदायेन वाप्यधिकरणकद्रव्यरूपार्थ एव समुचित इति । अर्थग्रहणसामर्थ्यात् आधेयासंसृष्टाधारबोधकत्वं समभिव्याहृतपदान्तरार्थानन्वयित्वेनोपस्थितिविषयत्वरूपं वा सप्तम्यर्थपर्यवसन्नत्वं बोधयति । वाप्यश्व इत्यत्राधेयेऽश्वरूपे द्रव्ये सप्तम्यर्थस्याधारस्य संसृष्टत्वेन प्रगृह्यसंज्ञा न भवति 'सोमो गौरी अधिश्रित' इत्यत्राधेये सोमे सप्तम्यर्थस्याधिकरणरूपस्यासंसृष्टत्वेन भवत्येव प्रगृह्यसंज्ञा । न च कारकाणां क्रियान्वयसिद्धान्तात् अधिश्रयणक्रियायां गौरीपदबोध्याधिकरणत्वस्य

---

(१) संज्ञाविधाविति । संज्ञाविधायकशास्त्रे प्रत्ययबोधकं पदं तदन्तबोधकं नेत्यर्थः । सुप्तिङन्तं पदमित्यत्रान्तग्रहणमस्यां ज्ञापकम् । तथा हि, सुपस्तिङश्च प्रत्ययत्वात्प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदादिपदोपस्थापने तदन्तविधिना मूलोक्तार्थलाभे व्यर्थमन्तग्रहणं परिभाषां ज्ञापयति ।

विशेषणत्वेनान्वयादाधारस्य कुतो नाधेयसंसृष्टत्वमिति वाच्यम् । समुदायार्थमन्तरा यस्यावयवार्थस्य नोपस्थितिस्तस्यैवात्रोक्तलक्षणकोटिप्रविष्टकार्थीभावविषयत्वात् । अत्र तु अवयवार्थस्य पार्थक्येनाप्युपस्थितिरित्यदोषादित्यलम् । 'अल्पान्तरमि'ति सौत्रप्रयोगेण (सिद्धमनच्त्वादि)ति वार्त्तिकप्रयोगेण "कथमनच्त्वमि"ति भाष्यप्रयोगेण च वृत्तिघटकाचरदे पदान्तकार्यस्य तत्सन्निधानेन श्चुत्वस्य चाभावकल्पनादच्सन्धिरित्यत्र न कुत्वाद्याशङ्काकलङ्कलेशोऽपीति भावः ॥

इत्यच्सन्धिप्रकरणम् ॥

---

## अथ हल्सन्धिप्रकरणम् ।

ननु (१)परस्परान्वितार्थकपदानां सहैव प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च भवतीत्यर्थिकाया (२) 'एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिरिति' परिभाषायाः सद्भावेन 'न पदान्ताट्टोरनामि'त्यस्मात्प्राग्वर्त्तिनः 'ष्टुना ष्टु'रित्यतष्टोरनुवृत्त्या पदान्तात्षकार–टवर्गान्तरयोः स्तोः ष्टुर्नेत्यर्थेऽपि पदान्तषकारस्य जश्त्वेन डकारस्यैव सम्भवात्ततः परस्य ष्टुत्वनिषेधस्येष्टत्वादतिप्रसङ्गाभावेन सूत्रे टोरिति व्यर्थमेवेत्याशयेन शङ्कते—**टोः किमिति ।** नैवं सर्वत्रेति समाधत्ते—**सर्पिष्टममिति ।** अत्र 'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते' इत्यनेन विहितस्य षत्वस्यासिद्धत्वेन जश्त्वाप्रवृत्तौ पदान्तषकारादपि ष्टुत्वनिषेधापत्तेरावश्यकमेव सूत्रे टोर्ग्रहणमिति तदाशयः । यदा (३)क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तते इतिपरिभाषया ष्टुनेत्येकदेशस्य टोरित्यस्यैवानुवृत्त्या किञ्च ष्टुनेत्यसमस्तमेव तस्मादपि टोरेवानुवृत्त्या पदान्ताट्टवर्गादित्यर्थस्यैव लाभात्सर्पिष्टममित्यादौ न दोष इत्युच्यते तदा मास्तु टोर्ग्रहणमिति दिक् ॥

---

(१) परस्परान्वितार्थकपदानामिति । स्वप्रयोज्यविषयतया साक्षात्परम्परया वा निरूपिता या विषयता तत्प्रयोजकानां पदानां युगपत्प्रवृत्तिनिवृत्ती भवत इत्यर्थः ।

(२) एकयोगेति । अत्र ज्ञापकं तु 'ईदूदेद्द्विवचन'मित्यत्र ईदूदित्येतन्मात्रानुवृत्त्यैव सिद्धावेकारानुवृत्त्यर्थं क्रियमाणम् 'अदसो मा'दित्यत्र माद्ग्रहणमेव, ज्ञापितायान्त्वस्यां तत्रैकारानुवृत्तिनिरासाय माद्ग्रहणं चरितार्थम् । लिङ्सिचावित्यतः सिज्ग्रहणानुवृत्त्यैव सिद्धौ 'हनः सिच्' इत्यत्र सिज्ग्रहणञ्च ज्ञापकं बोध्यम् ।

(३) क्वचिदेकेति । 'एकयोगनिर्दिष्टानां क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तते' इति परिभाषास्वरूपम् । अत्र ज्ञापकं तु 'दामहायनान्ताच्चे'ति सूत्रे सङ्ख्यादेरिति वक्तव्यमितिवार्त्तिकप्रत्याख्यानपरभाष्यमेव, तत्र 'संख्याऽव्ययादेर्ङीबि'त्यत एकदेशस्यापि संख्यादेरित्यनुवृत्त्या प्रत्याख्यातं वार्तिकम्, एतत्परिभाषाऽसत्त्वेऽव्ययस्यानुवृत्तये संख्यादेरित्यस्याप्यनुवृत्तेः प्रत्याख्यानमसङ्गतं स्यादिति ।

ननु 'स्थानेऽन्तरतम' 'उरण् रपर' इति संहितापाठस्तत्र प्रथमान्तपाठपक्षे आदेशस्यान्तरतमो यः स्थानी तत्रैव षष्ठी उपसंहर्त्तव्या यत्रैव षष्ठी तत्रैवादेश इति सूत्रार्थेन प्रकृतिर्नियम्यते तथा च स्थानिनामन्तरतम आदेशो भवतीत्यर्थस्य फलितत्वात् (१)'यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तर्य्यं बलीय' इति परिभाषयाऽन्यान्तर्यापेक्षया स्थानकृतान्तर्य्यस्य बलवत्त्वबोधनेन चतुर्मुख इत्यादौ मूर्द्धस्थानजन्यरेफस्थानेऽन्याऽऽदेशापेक्षया मूर्द्धस्थानजन्यत्वसमानाधिकरणनासिकास्थानजन्यत्वेन सादृश्यात्तादृशणकाररूपोऽनुनासिकः स्यादित्याशङ्कां सप्तम्यन्तपाठेन निराचष्टे—**स्थानप्रयत्नाभ्यामिति** । अयम्भावः, सप्तम्यन्तपाठपक्षे आदेशानां येऽन्तरतमास्तत्र षष्ठी यत्र षष्ठी तत्रादेशा भवन्तीति सूत्रार्थेनादेशो नियम्यते तथा च आदेशानामन्तरतमे स्थानिनि सति आदेशो भवतीत्यर्थस्य फलितत्वेन ताल्वादिस्थानजन्यत्वसमानाधिकरणनासिकास्थानजन्यत्ववतां ञमङणनानामादेशभूतानामनुनासिकानां विधेः स्थानप्रयत्नोभयान्तरतम्येन स्पर्शे पण्णाम् एतन्मुरारिरित्यादौ चरितार्थतया चतुर्मुख इत्यत्र स्थानमात्रेणान्तर्यवति रेफे न प्रवृत्तिः । नच सप्तम्यन्तपाठपक्षे आदेशानां यणामर्द्धमात्रिकत्वेन तेषां मात्राद्वयन्यूनकालिकत्वरूपान्तरतम्येन स्थानिनोऽपि मात्रिकह्रस्वस्यैव समुचितत्वात्तत्र यणश्चरितार्थतया दीर्घे यणादेशाप्राप्त्या सप्तम्यन्तपाठस्य भाष्यकृता दूषितत्वेन चतुर्मुख इत्यत्रोक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यम् । 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण' इत्यतः परसवर्णघटकसवर्णपदापकर्षणेन सवर्णोऽनुनासिको भवतीत्यर्थे रेफस्य सावर्ण्याभावादनुनासिकाप्राप्तेः 'रेफोष्मणां सवर्णा न सन्तीति' भाष्यात् । अत एव 'स्वर्नयति प्रातर्नयतीत्यादौ' नानुनासिकः । नचैवमपि व्यक्तिपक्षे प्रतिलक्ष्यं लक्षणोपप्लवाङ्गीकारात् चतुर्मुख एतल्लक्ष्यविषयस्य 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वे'त्यस्याचारिताथ्यात्तत्रत्योक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यम् । लक्ष्यानुरोधाज्जातिपक्षाश्रयणेन लक्ष्यत्वजातेरैक्यादेतल्लक्ष्यवि-

---

(१) यत्रानेकविधमान्तर्यमिति । स्थानार्थगुणप्रमाणकृताऽऽन्तर्यमध्ये स्थानकृतान्तर्यस्यैव बलवत्त्वमित्यर्थबोधिकेयं परिभाषा । इत्थमस्याः सिद्धिप्रकारः, स्थानेन्तरतम इति सूत्रे अन्तरतम इत्येकं वाक्यं पूर्वं पठनीयं स्थाने इत्यपरं तत्र पूर्वस्मिन्वाक्ये स्थाने इत्यनुवर्तते प्रसङ्ग इति तस्यार्थः, तथा च प्रसङ्गे सति सदृशतमो भवतीत्यर्थः । द्वितीये स्थाने इति वाक्ये पूर्ववाक्यादनुवृत्तं स्थाने इति अन्तरतम इति च पदद्वयमनुवर्तते । सूत्रस्थं स्थाने इति स्थानेनेत्यर्थकम् तथा च प्रसङ्गे सति स्थानेन स्थानघटितधर्मेण सदृशतमो भवतीत्यर्थः । पूर्ववाक्येनैव स्थानघटितधर्मेण सदृशस्यापि विधानसम्भवाद्व्यर्थमिदं द्वितीयवाक्यं स्थानेनैव सदृशतमो भवतीति नियमार्थं तथा च फलितैवेयं परिभाषा यत्रानेकविधमान्तर्यमिति ।

 


षयकस्याप्युक्तसूत्रस्य चरितार्थत्वेनादोषात् । वस्तुतस्तु व्यनिपातेऽपि नैव दोषः तादृशव्यक्तौ चरितार्थस्योक्तशास्त्रस्यैतद्व्यक्तिविषयत्वेनानुपप्लवादिति ॥

ननु ककुमन्त इत्यत्र प्रत्यये भाषायामित्यनेन कुतो नानुनासिक इत्यभिप्रायेण शङ्कते—कथन्तर्हीति । समाधानमाह—दकारनिपातनादिति । अयम्भावः, तत्रानुनासिकस्येष्टत्वे प्रक्रियालाघवाय गुणेऽनुनासिकविशिष्ट एव पठितव्ये प्रकृतिप्रत्ययविशिष्टपाठसामर्थ्यात्तदभावकल्पनेन नानुनासिकः । किञ्च 'यचि भन्तसौ मत्वर्थे' इतिसंहितापाठे तकारात्प्राक् चर्त्वेन दकारप्रश्लेषाद्भत्वेन पदत्वाभावादनुनासिकस्य न प्राप्तिः पदान्तस्यैव यरस्तेनानुनासिकत्वविधानादिति । तसाविति द्विवचनोपपत्तिस्तु, तसयोर्द्वन्द्वोत्तरं दकारेण सहेतरेतरयोगाद्बोध्या । दकारेण समाहारद्वन्द्वोत्तरं सकारेण सहेतरेतरयोगेन तत्र द्विवचनं नोपपादनीयं सकारस्याल्पाच्तरत्वेन तस्य पूर्वनिपातापत्तेरित्यलम् ॥

ननु उद् स्थानमित्यत्र 'तस्मादित्युत्तरस्ये'त्येतद्बाधकेन 'आदेः परस्ये'त्यनेन सकारस्थाने प्राप्तेषु 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्ये'तद्विहितदकारसवर्णेषु त–थ–देषु युगपदेकस्थानिकानेकादेशासम्भवात्तेषाम्मध्ये क इहादेशः स्यादिति सन्देहोत्थितौ समाधानमाह—अत्राघोषस्येति । अयम्भावः । सकार–थकारयोर्दन्तस्थानजन्यत्वेन विवारश्वासा–घोष–महाप्राण प्रयत्नवत्त्वेन च सादृश्यात् 'स्थानेऽन्तरतम' इत्यनेन सकारस्थाने थकार एवादेशो जातः तस्य 'झरो झरी'ति लोपे दकारस्य 'खरि चे'ति चर्त्वे उत्थानमिति सिद्ध्यति। लोपाभावपक्षे न थस्य चर्त्वम् । तस्य चर्त्वदृष्ट्याऽसिद्धत्वात् । एवञ्च थकारद्वयघटितमुक्तरूपम्बोध्यम् । (१)हलो यमामिति सूत्रोक्तभाष्यसम्मताष्टाध्यायीपाठे तु थस्यासिद्धत्वाभावेन चर्त्वम्भवत्येव। अत एव (उत्पूर्वस्कन्दे रोगे उपसंख्यानम् उत्कन्दो रोग ) इति भाष्यं सङ्गच्छते । न चोक्तसूत्रीयभाष्यरीत्या थस्य सिद्धत्वकल्पनाच्चर्त्वोपपादने लोपाभावपक्षे तु थकारस्यैव श्रवणमित्यादिमूलोक्तस्यासङ्गतिरूपदोषप्रादुर्भाव इति वाच्यम् । प्राचामनुरोधेन तदित्यदोषात् । न च 'झलो झली'त्यनेन सलोपे उक्तप्रयोगसिद्धौ सूत्रमिदं व्यर्थमिति वाच्यम् । झलादौ प्रत्यये तेन लोप इत्यर्थज्ञापनेन तस्य चारितार्थ्यादिति ॥

ननु 'मोऽनुस्वार'इत्यस्य मकारस्यानुस्वारः स्याज्झलीत्यर्थेनैव 'हरिं वन्दे' इत्या-

---

(१)हलो यमामिति । एतत्सूत्रोक्तभाष्यसम्मतपाठक्रमस्तु–अनुस्वारस्य ययि, वा पदा, तोर्लि, उदःस्था, झयो हो, शश्छोटि, एतत्षट्सूत्र्यनन्तरं झलां जश्, अभ्यासे चर्च, खरि च, वावसाने, अणोऽप्रगृह्यस्येति ।

दावनुस्वारसिद्धावलं पदग्रहणेनेत्याशयेन शङ्कते—**पदस्येति किमिति**। अयम्भावः, तत्र सूत्रे पदग्रहणाभावेऽपदान्तमकारस्याप्यनुस्वारापत्तिरतस्तद्ग्रहणमावश्यकम्। न चापदान्तमकारस्याप्यनेनैवानुस्वारस्येष्टत्वे यशांसीत्यादावपि तेनैव तत्सिद्धौ 'नश्चा-पदान्तस्य झली'ति तस्य सामर्थ्यादपदान्तमस्य चेदनुस्वारस्तर्हि झल्येवेति नियमार्थ-करणेनोक्तदोषव्यावृत्तौ व्यर्थमेव पदग्रहणमिति वाच्यम्। तस्य 'नश्च' 'शि तुगि'--त्यादावनुस्वारार्थत्वेन साफल्यादिति ॥

ननु कुर्वन्तीत्यत्र 'रषाभ्यामि'त्यनेन णत्वं कुतो नेत्याशङ्क्य समाधत्ते—**कुर्वन्ती-त्यत्रेति**। कृञो लटि तत्स्थाने झौ, 'तनादिकृञ्भ्य उरि'त्यनेन उप्रत्यये 'सार्वधातु-कार्द्धधातुकयोरि'त्यनेन गुणे 'अत उत्सार्वधातुके' इत्यनेनोदादेशे 'झोऽन्त' इत्यनेन झेरन्तादेशे यणादेशे च कृते प्राप्तस्योक्तणत्वविधायकशास्त्रस्य 'नश्चापदान्तस्ये'त्येत-द्दृष्ट्यासिद्धत्वात्पूर्वं कृतेऽनुस्वारे तस्य 'अनुस्वारस्य ययी'त्यनेन नकारे परसवर्णे तस्य णत्वदृष्ट्याऽसिद्धत्वान्नकाराभावेन न णत्वप्राप्तिरिति भावः ॥

सम् स्कर्त्तेत्यत्र 'समः सुटी'ति समो मकारस्य रुत्वे 'अत्रानुनासिकः पूर्वस्ये'ति पाक्षिकाऽनुनासिके, तदभावे 'अनुनासिकात्पर' इति अनुस्वारे च कृते 'खरवसानयोरि'-ति विसर्गे तस्य (संपुंकानामि)ति सत्वे सँस्स्कर्त्ता संस्स्कर्त्ता इति सकारद्वयघटितं रूप-द्वयम्, "समो वा लोपमेके" इति भाष्येण सकारस्य पाक्षिके लोपे तस्यापि रुप्रकरण-स्थत्वेनाऽनुस्वाराऽनुनासिकाभ्यामेकसकारघटितं रूपद्वयं सँस्कर्त्ता, संस्कर्त्तेति। न च लोपपक्ष एव द्वित्वेन द्विसकारकरूपसिद्धावलं 'समः सुटी'त्यनेनेत्यत आह—**त्रिसका-रमपीति**। सकारत्रयघटितरूपसिद्ध्यर्थमावश्यकन्तदिति भावः। न च 'स्कोरि'ति सलोपः कुतो नेति वाच्यम्। "समो वा लोपमेके" एतद्विहितसलोपस्यासिद्धत्वेन तस्य संयोगादित्वाभावात्। ननु अनुस्वारस्यानच्त्वेन ततः परस्य सकारस्य द्वित्वासम्भवा-दनुस्वारपक्षे कथं त्रिसकारकरूपसिद्धिरित्यत आह—**अनुस्वारविसर्गेत्यादि**। द्वित्वपक्षे अयोगवाहानामट्सूपसंख्यानं शर्षु वेति (१)हयवरट्सूत्रभाष्योक्तेरनुस्वारस्या-प्यच्त्वात्ततः परस्य सकारस्य द्वित्वे सँस्स्स्कर्त्ता संस्स्स्कर्त्तेति त्रिसकारकं रूपं सिद्ध्यति। न चानुस्वारादीनामच्त्वे 'हरिं स्मरेत्, हरिः कर्त्ता, रामः पातु' इत्यादौ (२)यणाद्या-

(१)—हयवरेति। तत्र हि भाष्ये इमे अयोगवाहा न क्वचिदुपदिश्यन्ते श्रूयन्ते च। तेषां कार्यार्थं उपदेशः कर्त्तव्यः। के पुनरयोगवाहा विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानी-यानुस्वारयमाः। एषां क्वोपदेशः कर्त्तव्य इत्युक्त्वा अयोगवाहानामित्याद्युक्तम्।

(२) यणाद्यापत्तिरिति। यणाद्यापत्तिरित्यत्रादिपदेन सवर्णदीर्घो बोध्यः।

पत्तिरिति वाच्यम्। यणादिदृष्ट्या विसर्गादीनां त्रिपादीस्थत्वेनासिद्धत्वादिति भावः। अनुनासिकपक्षे त्रीणि। त्रीणि चानुस्वारपक्षे। एवं कृत्वा षड्रूपाणि। अनुनासिकपक्षे रूपत्रयघटकककारस्य 'शरः खय' इति द्वित्वे षट्। अनुस्वारपक्षे चानुस्वारस्य ककारस्य च द्वित्वे द्वादश इत्थं कृत्वाऽष्टादश रूपाणि। एषां तकारस्य 'अचो रहाभ्यामि'ति द्वित्वे (यणो मयो द्वे) इति वचनान्तरेण च द्वित्वे 'एकतं द्वितं त्रितमिति-चतुष्पञ्चाशद्रूपाणि। 'अणोऽप्रगृह्यस्ये'ति वैकल्पिकानुनासिकविधानादष्टोत्तरशतरूपाणि बोध्यानीत्यलम्॥

**व्युत्पत्तिपक्षेऽप्रत्ययस्येति षत्वपर्युदासादिति।** अयम्भावः, पुम् कोकिल इति स्थितौ 'पुमः खय्यम्परे' इत्यनेन रुत्वे उक्तसूत्रद्वयेन अनुनासिकेऽनुस्वारे च विसर्गे व्युत्पत्तिपक्षे 'पूञो डुम्सुन्'इत्यौणादिकसूत्रेण निष्पत्त्या प्रकृतिप्रत्ययविभागज्ञानादप्रत्ययस्येतिपर्युदासादिदुदुपधस्येत्यस्याप्राप्त्या ≍क≍पयोः प्राप्तौ (संपुंकानामि)ति सत्वम्। अव्युत्पत्तिपक्षे प्रकृति-प्रत्ययविभागज्ञानाभावादुक्तपर्युदासाप्राप्त्याऽनुनासिकपक्षे इदुदुपधस्येति प्राप्तषत्वमनुस्वारपक्षे च तेन व्यवधानादुदुपधत्वाभावात्षत्वाप्राप्त्या प्राप्तौ≍क≍पौ च बाधित्वा सत्वमेवेति। पुँस्कोकिल इति सिद्धयतीति॥

ननु चक्षिङो ल्युटि "ख्शादिरयमादेश" इति प्रकृतसूत्रस्थभाष्यात् 'चक्षिङः ख्याञ्' इत्यनेन ख्शादेशे 'शस्य योवे'त्यनेन शस्य यत्वे तस्यासिद्धप्रकरणस्थविधायकशास्त्रानन्तरपाठेन 'पुमः खय्यम्परे' इत्येतद्दृष्ट्याऽसिद्धत्वादम्परकत्वाभावेनोक्तसूत्राप्राप्त्या न रुत्वमित्याशयेनाह—**ख्शादेशे न, पुंख्यानमिति।** नच (वर्जनाऽर्थेशनयोश्च) इति निषेधात्कथमादेश इति वाच्यम्। (बहुलन्तणयन्नचधकगात्रविचक्षणाजिराद्यर्थेष्वि)ति वार्तिकस्थबहुलग्रहणादुक्तनिषेधाप्रवृत्त्याऽऽदेशस्य सौलभ्यादिति भावः॥

**येन नाप्राप्ताविति।** 'येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवती'ति न्यायाकारः (१)यत्कर्तृकावश्यप्राप्तौ यस्य विधेरारम्भः स तस्य बाधक इति तदर्थः। तथा च, विसर्जनीयस्य स एतत्कर्तृकावश्यप्राप्तौ 'कुप्वो≍क≍पौ चे'त्येतस्य विधेरारम्भात्तस्यैवानेन बाधो न तु शर्परे विसर्जनीय इत्यस्य तद्विषये एतत्कर्तृकावश्य-

(१) यत्कर्तृकेति। विशेषशास्त्रोद्देश्यविशेषधर्मावच्छिन्नवृत्तिसामान्यधर्मावच्छिन्नोद्देश्यकशास्त्रस्य विशेषशास्त्रेण बाध इति फलितम्। उत्सर्गशास्त्राऽप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यं ह्यपवादशास्त्रस्य बाधकत्वे बीजम्। शास्त्रं स्वीयोद्देश्यतावच्छेदकव्यापकधर्मावच्छिन्नोद्देश्यताकस्य शास्त्रस्य बाधकमिति ततोऽपि फलितम्।

प्राप्तेरभावात् । न च खरवसानयोरित्येतद्विहितविसर्गस्य कुप्वो ≍क≍पौ चेत्येतद्दृष्ट्याऽसिद्धत्वात्तस्य सत्वमेव शर्परे विसर्जनीय इत्येतद्विहितविसर्गस्य तु ≍क≍पौ दुर्वाराविति वाच्यम् । शर्परे इति सूत्रस्य कुप्वोरित्यत्रानुवृत्त्या शर्परयोः कुप्वोः ≍क≍ पावपवादो विसर्गस्य विसर्ग इति वाक्यभेदेन व्याख्यानेनादोषात् । तेन वासः क्षौममित्यादौ विसर्ग एव न सत्वमिति दिक् ॥

ननु उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयानि'ति परिभाषया तस्मिन्नित्यतः तस्मादित्युत्तरस्येत्यस्य प्राबल्यबोधनात्तदुपस्थित्या दीर्घादिति पञ्चम्या छे इति सप्तम्याः षष्ठीप्रकल्पनेन दीर्घात्परीभूतस्य छस्य तुगित्यर्थे छस्य तुगागमे छकारोपरि चकारश्रवणापत्तिर्दुर्वारेत्याशङ्कां समाधत्ते—**दीर्घस्यायं तुगिति** । उक्तरीत्या छकारस्य तुगागमे सेनासुराच्छायेति निर्देशासङ्गतिः स्यादत उक्तज्ञापकाद्व्याख्यानाद्वा दीर्घादिति षष्ठ्यर्थे पञ्चमी एवञ्च दीर्घस्यैव तुग् भवति न तु छस्येति नोक्तदोष इति भावः ॥

इति हल्सन्धिप्रकरणम् ॥

## अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम् ।

**अप्रत्ययस्य किमिति** । तदभावेऽग्निः करोतीत्यादौ प्रत्ययसम्बन्धिविसर्गस्य षत्वापत्तिरतस्तद्ग्रहणमावश्यकम् । न च विसर्गे प्रत्ययत्वं स्थानिवद्भावेन लभ्यं (१)तच्च न सम्भवति स्थानिवत्सूत्रदृष्ट्या विसर्गविधायकस्य त्रिपादीस्थत्वेनासिद्धतया पदान्तत्वाभावात्प्रत्ययत्वाभावाच्च विसर्गषत्वयोर्भावाभावयोरुपपादनस्याशक्यत्वादप्रत्ययग्रहणस्योक्तप्रत्युदाहरणदानमयुक्तमिति वाच्यम् । अप्रत्ययग्रहणसामर्थ्याद्वतिघटितातिदेशानां त्रिपाद्यामपि प्रवृत्तिरिति ज्ञापनेन स्थानिवत्सूत्रस्य त्रिपाद्यां प्रवृत्त्या प्रत्ययत्वस्य सुलभत्वेन प्रत्युदाहरणदानस्य युक्तत्वादिति तत्र षत्वव्यावृत्तयेऽप्रत्ययग्रहणमावश्यकमिति । न च दाधातोर्डुर्प्रत्ययेन निष्पन्नत्वात् दुःकरोतीत्यादौ प्रत्ययसम्बन्धिविसर्गस्य षत्वाभावायाप्रत्ययग्रहणस्य साफल्याज्ज्ञापकत्वमयुक्तमिति वाच्यम् । तथा सति द्विर्वचनादिग्रहणस्यैवोक्तार्थे ज्ञापकत्वादिति भावः ।

ननु 'इदुदुपधस्ये'त्यनेन मातुः कृपेत्यत्र षत्वं स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**एकादेशशास्त्रनिमित्तकस्येति** । एकादेशशास्त्रं 'ऋत उदि'ति तन्निमित्तकस्य विसर्गस्य न षत्वमित्यर्थः । प्रमाणञ्चात्र कस्कादिगणे भ्रातुष्पुत्रशब्दस्य पाठः अन्यथाऽनेनैव षत्वे सिद्धे तत्रोक्तशब्दपाठस्य वैयर्थ्यं स्यात् । नच ऋत उदित्यनेन कृते एकादेशे

(१) तच्चेति । प्रत्ययत्वञ्चेत्यर्थः ।

रपरत्वे च मातुरित्यस्य निष्पन्नत्वादेकादेशनिमित्तकत्वं रेफस्यैव न तु विसर्गस्येति कथं निषेध इति वाच्यम्। एकादेशनिमित्तनिमित्तकस्य न षत्वमिति तदर्थेनादोषात्। नच 'षत्वतुकोरसिद्ध' इत्यस्य सत्त्वेन षत्वे कर्त्तव्ये एकादेशस्यासिद्धत्वान्न षत्वमिति वाच्यम्। (पदान्तपदाद्योरेवैकादेशोऽसिद्धो नान्यत्रे)ति वार्तिकेनोक्तदोषाभावात्। (१) अन्यथा शकहूष्वित्यत्र षत्वं न स्यात् 'षत्वतुकोरि'त्यनेन षत्वे कर्त्तव्ये सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपैकादेशस्यासिद्धत्वेनाऽकारेण व्यवधानात्। उक्तवार्तिकोदाहरणन्तु कोऽसिचत् सोऽसिचदिति भावः॥

ननु सुजन्तद्वि-त्रिशब्दसाहचर्य्येण सुजन्तस्यैव चतुश्शब्दस्य ग्रहणात्तस्यैव षत्ववैकल्पिकत्वेन चतुष्कपाल इत्यत्रत्यचतुश्शब्दस्य सुजन्तत्वाभावेन दोषाभावात्कृत्वोऽर्थग्रहणं व्यर्थमित्यत आह—**कृत्वोऽर्थे किमिति**। समाधानमाह—**चतुष्कपाल इति**। अयम्भावः, व्यर्थं सज्ज्ञापयति कृत्वोऽर्थग्रहणं (२)साहचर्यपरिभाषाऽनित्येति। एवञ्च सुजन्तातिरिक्तस्यापि चतुश्शब्दस्य वैकल्पिकषत्वापत्तिरतस्तद्ग्रहणमावश्यकमिति। 'दीधीवेवीटामि'त्यत्र धातुसाहचर्य्येप्यागमस्येटो ग्रहणमुक्तपरिभाषाऽनित्यत्वफलं बोध्यमिति दिक्॥

ननु 'इसुसोः सामर्थ्ये' अत्र सूत्रे सामर्थ्यपदेनैकार्थीभावस्य ग्रहणात्सर्पिष्करोतीत्यादौ तदभावादुक्तसूत्राप्रवृत्ताविदुदुपधस्येति नित्यमेव षत्वं परमसर्पिःकुण्डिकेत्यादावेकार्थीभावरूपसमासेऽप्येतत्प्रवृत्त्या वैकल्पिकषत्वञ्च स्यादित्यत आह—**सामर्थ्यमिह व्यपेक्षेति**। इहैव न त्वन्यत्रेति तदर्थः। "पूर्वयोगे सामर्थ्यं व्यपेक्षारूपम् न चात्र व्यपेक्षासामर्थ्यमि"त्युत्तरसूत्रे भाष्योक्तेः। न च परमसर्पिःकुण्डिकेत्यादौ नित्यं समास इति षत्वापत्तिरिति वाच्यम्। अनुत्तरपदस्थस्येति निषेधात्। व्यपेक्षा च पृथगर्थानां पदानामाकाङ्क्षादिवशाद्यः परस्परसम्बन्धः सा। स्वार्थपर्यवसायिनां पदानामेकार्थोपस्थितिजनकत्वमेकार्थीभावरूपसामर्थ्यम्। व्यपेक्षारूपसामर्थ्यग्रहणे नित्यं समासेऽत्र सूत्रे समासग्रहणमेव प्रमाणम्। अन्यथा सामर्थ्यग्रहणानुवर्तनादेकार्थीभावस्य समासरूपत्वेन समासलाभे तद्ग्रहणं व्यर्थमेवेति दिक्।

ननु 'अतः कृकमी'त्यनेनैव सत्वसिद्धौ कस्कादिषु सर्पिष्कुण्डिकाशब्दपाठो व्यर्थ इत्यत आह—**कस्कादिष्विति**। **व्यपेनाचिरहे पाति**। आनय सर्पिः कुण्डिका

(१) अन्यथेति। उक्तवार्त्तिकानङ्गीकारे।

(२) साहचर्यपरिभाषेति। 'सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणमि'ति तत्स्वरूपम्।

तिङ्क्षित्यादौ । स्वयं त्याज्यमिति । इदं सर्पिः कुण्डिकाया इत्यादौ । यत्तु उत्तरप-दस्थत्वेऽपि परमसर्पिः कुण्डिकाया इत्यत्रत्यषत्वार्थः कस्कादिषु पाठ इत्याहुस्तन्न। नित्यं समासे इत्यत्रानुत्तरपदग्रहणवैयर्थ्यापत्तेः । अव्युत्पत्तिपक्षे इदुदुपधस्येत्यनेन सिद्धेश्च, "प्रातिपदिकविज्ञानाच्च भगवतः पाणिनेः सिद्धमि"ति भाष्येणाव्युत्पत्तिपक्षस्यैवाङ्गीकारा-देतस्मिन्नंशेऽपि न दोष इति भावः ।

ननु अतः कृकमीत्यत्र तपरकरणेन भास्कर इत्यत्र सत्वं न स्यादत आह—कस्कादिषु भास्कर इति । इति विसर्गसन्धिः ।

## अथ स्वादिसन्धिप्रकरणम् ।

ननु 'स्वौजसमौडि'त्यत्र सुस्थाने रुरेव विधेयः सर्वत्र सकारस्थाने रुत्वस्यैव विधा-नेन प्रक्रियागौरवात् । तस्मात् वौंजसित्येव सूत्रं न्याय्यमिति यत्तदयुक्तमिति ध्वनय-न्नाह–स्वौजसमौडिति सुप्रत्यये कृते शिवस् अर्च्य इति स्थित इति । अयम्भावः, तथा सति उत्वविधानस्य शिवोऽर्च्य इत्यादौ चारितार्थ्ये यशोऽत्रेत्यादावुत्वं प्रति रुत्वस्या-सिद्धत्वेन यशोऽत्रेत्याद्यसिद्ध्यापत्तिरिति भावः ।

(१) ननु 'स्वौजसमौडि'त्यत्र सुस्थाने रुरेव विधेयः । सर्वत्र सकारस्थाने रुत्व-स्यैव विधानेन प्रक्रियागौरवात् । नचैवं 'सुपि चे'त्यस्य स्थाने 'रुपि चे'ति सूत्रस्य कर्त्त-व्यतापत्तौ राम इत्यादौ दीर्घापत्तिरिति वाच्यम् । 'पथिमथ्यृभुक्षामात्' इत्यनेन दीर्घाकारविधानसामर्थ्येन 'प्रत्ययः' 'परश्चे'त्यादिनिर्देशेन च प्रथमैकवचने दीर्घो नेति ज्ञापनेनादोषात् । एवञ्च 'वौंजसि'त्येव सूत्रं न्याय्यमिति यत्तदयुक्तमिति ध्वनयन्नाह—**स्वौजसमौडिति सुप्रत्यये कृते शिवस् अर्च्य इति स्थित इति** । अयमेतदभिप्रायः, (२) तथासति (३) उत्वविधानस्य रुविधानवा-दिमते शिवोऽर्च्य इत्यादौ चारितार्थ्ये यशोऽत्र पयोऽत्रेत्यादावुत्वं प्रति रुत्व-स्यासिद्धत्वादुत्वाभावेनोक्तप्रयोगासिद्धिरापद्येत । नचाऽप्लुताद्ग्रहणसामर्थ्यादुत्वे

---

(१) नन्विति । इदं सङ्क्षेपतः पूर्वं व्याख्यातमपि पुनर्विशदरूपेण व्याख्यायते ।
(२) तथासतीति । रुप्रत्ययस्याङ्गीकारे सतीत्यर्थः ।
(३) उत्वविधानस्येति । अयम्भावः, शिवोऽर्च्य इत्यादौ रुप्रत्ययस्य सापादिकत्वे-नोत्वदृष्ट्या नासिद्धत्वमिति न दोषः, यशोऽत्रेत्यादौ तु सुप्रत्ययस्य 'स्वमोर्नपुंसका-दिति' लुक् प्रकृतिसकारस्य 'ससजुषोरुरि'ति रुत्वे तस्य च त्रैपादिकत्वादुत्वदृष्ट्याऽ-सिद्धत्वेनोत्वानापत्तिर्दोषो बोध्यः ।

कर्त्तव्ये रुत्वस्यासिद्धत्वाभावकल्पनाञ्चोक्तप्रयोगासिद्धिः, इतरथा (१) एहि सुश्रोत ३ अत्र स्नाहीत्यादावुत्वदृष्ट्या रुत्वस्यासिद्धत्वेनोत्वाप्राप्त्या प्लुताकारात्परीभूतस्य रोरुत्वाभावाय कृतस्याप्लुताद्ग्रहणस्य स्पष्टमेव वैयर्थ्यमिति वाच्यम्। (२)देवदत्ता ३ गतो ग्रामान् किमित्यादौ 'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः' एतद्विहितप्लुतविषये प्लुताकारात्परस्य प्रत्ययभूतस्य रोरुत्वाभावाय तस्य चारितार्थ्येन ज्ञापकत्वासम्भवात्। नत्रात इत्यत्र तपरकरणसामर्थ्यादुक्तकल्पनाञ्चोक्तदोषः, अन्यथा देवा अत्रेत्यादौ जसः सकारस्य रुत्वे तस्योत्वदृष्ट्याऽसिद्धत्वेन दीर्घाकारात्परस्य रोरभावादेवोत्वव्यावृत्तौ तदर्थं तपरकरणं निष्प्रयोजनमिति वाच्यम्। विश्वपा अत्रेत्यादौ दीर्घात्परस्य प्रत्ययभूतस्य रोरुत्वव्यावृत्तये तपरकरणस्यावश्यकत्वात्। न च रूपरात्रिरथन्तरेष्विति वार्त्तिकारम्भसामर्थ्यादुक्तार्थः कल्प्यतामेवञ्च नोक्तदोषः, अन्यथा रुत्वस्यासिद्धत्वादुत्वाप्राप्त्या वार्त्तिकस्य सत्त्वेऽसत्त्वे वा अहो रूपमित्यादेरनुपपत्त्या स्पष्टमेव तद्वैयर्थ्यमिति वाच्यम्। अहः—अहोभ्यामित्यादौ नलोपदृष्ट्या रत्वरुत्वयोरसिद्धत्वात्प्राप्तनलोपव्यावृत्त्यर्थं कृतायामहन्निति सूत्रावृत्तौ ज्ञापकत्वेन चारितार्थ्यात्। सामर्थ्यविरहेण (३) इह ज्ञापकत्वस्य वक्तुमशक्यतया अहन् शब्दात्परस्य रोरुत्वे कर्त्तव्ये नासिद्धिरिति विशेषापेक्षज्ञापनेन वार्त्तिकस्य चरितार्थत्वे प्रमाणाभावात्सामान्यापेक्षज्ञापनस्य वक्तुमशक्यतया वा तत्रत्यो दोषस्तदवस्थ एव तस्मादर्वाचीनाभिप्रेतन्यासो नाङ्गीकार्य इति। यत्तु अत इत्यत्र तपरकरणादेवेत्यारभ्य चिन्त्यमिदमित्याहुः केचिदित्यन्तं, तन्न। तपरकरणस्य पूर्वप्रदर्शितप्रयोगे चारितार्थ्यात् यच्च एतु जात ३ रत्र स्नासि किमित्यादावप्लुताद्ग्रहणं चरितार्थं, तदपि न। ज्ञाधातोर्जनधातोर्वा तृचि 'ज्ञाजनोर्जा' इति जादेशस्य 'जनसनखनां सञ्झलोरि'त्यात्वस्य चाप्राप्त्योक्तप्रयोगस्य सर्वथाऽनुपपत्तेः। पूर्वसूत्रेण शिति जादेशस्य, उत्तरसूत्रेण झलादौ सनि झलादौ क्ङिति चात्वस्य च विधानेनोक्तनिमित्ताभावात्। यद्यपि जनधातोः क्तप्रत्यये जातशब्दस्य निष्पत्तिस्तथापि रेफघटित उक्तप्रयोगोऽसाधुरेव, प्लुतश्रवणादुत्वाप्राप्त्या यत्वयलोपयोर्दुर्वारत्वात्। एवञ्च जात ३ अत्रेत्येव साधुरित्यलम्।

ननु यत्र यत्र पदान्तसकारस्तत्र सर्वत्र जश्त्वप्राप्तौ रुत्वविधानं व्यर्थमेव स्यादित्याशयेनाह—जश्त्वापवाद इति। वाध्यविशेषचिन्ताश्रयणे येन नाप्राप्ते न्यायेन

(१) एहीति। सुश्रोतस इति कस्यचित्संज्ञा 'दूराद्धूते चे'ति प्लुतः।

(२) देवदत्तेति। नेदं जसि रूपं किन्तु प्रथमैकवचन एव—दीर्घाकारश्रवणन्तु प्लुत्येति बोध्यम्। (३) इहेति। उत्वं प्रति रुत्वस्यासिद्धमित्यत्रेत्यर्थः।

रुत्वं जश्त्वस्य बाधकमिति भावः । बाध्यसामान्यचिन्ताश्रयणे तु श्रेयानित्यादौ संयोगान्तलोपानापत्तिः । तथाहि, जश्त्वशास्त्रदृष्ट्या रुत्वशास्त्रस्यासिद्धत्वाभावाय रुत्वशास्त्रे पूर्वत्रासिद्धमित्यस्यानुपस्थितौ रुत्वस्य सिद्धत्वात्परत्वात्संयोगान्तलोपं बाधित्वा रुत्वे यणः प्रतिषेधादकृतत्वाच्च संयोगान्तलोपाप्राप्त्या तदनापत्तिः । अतः पूर्वपक्ष एव युक्तः, अत्र च पक्षे, न तत्र संयोगान्तलोपानापत्तिः । रुत्वशास्त्रे पूर्वत्रासिद्धमित्युपस्थिते पूर्वं प्रति परमसिद्धमिति तेन बोधनाद्रुत्वशास्त्रापेक्षया संयोगान्तलोपस्य पूर्वत्वादेतद्दृष्ट्या रुत्वस्यासिद्धत्वेन ग्रहणेनापि सिद्धौ सर्वथा तत्र तदनुपस्थितौ मण्डूकप्लुतौ च बीजाभाव इत्युत्तराशयः ।

ननु उत्वदृष्ट्या यत्वस्यासिद्धत्वेन कृतेऽप्युत्वे तस्य स्थानिवद्भावाद्रुत्वबुद्ध्या यत्वं स्यादित्याह—**यत्वस्यापवाद इति** । अयम्भावः, तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्ये सति कृते न तस्मिन्चारितार्थ्यमिति तक्रन्यायमूलक येन नाप्राप्ति न्यायस्य बाधबीजम् । तथा च उत्सर्गशास्त्रस्य भो भगो अघो इत्यस्याप्राप्तियोग्यस्थलेऽचारितार्थ्येनात्वेन यत्वस्य तेन न्यायेन बाधे न पुनर्यत्वप्राप्तिः । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्यायेत्यत्र यथा तक्रदानेन दधिदानबाधे न पुनर्दधिदानं तद्वदिति दिक् ॥

ननु उत्वविधायकशास्त्रस्य सापादिकत्वेन तद्दृष्ट्या रुत्वस्यासिद्धत्वादुत्वं न स्यादित्यत आह—**उत्वं प्रति रुत्वं नासिद्धं रुत्वमनूद्योत्वविधेः सामर्थ्यादिति** । यद्येवं तर्हि उत्वविधानं व्यर्थमेव स्यादिति सामर्थ्यादसिद्धत्वाभावकल्पनान्न दोष इति भावः । नच त्रिपाद्यां 'रोः सुपी'त्यस्याग्रे 'अत उरति' इति सूत्रपाठेनैवासिद्धत्वाभावोपपत्तावलमेतेन सामर्थ्याश्रयणप्रयासेनेति वाच्यम् । तथा सति, उत्वस्यासिद्धत्वेन गुणप्रसक्त्या शिवोऽर्च्य इत्याद्यसिद्धयापत्तेः । मनोरथ इत्यत्र रोरीति लोपापत्तेश्चेति दिक् ।

**शिवोऽर्च्य इति** । ननु शिव उ अर्च्य इति स्थितौ प्राप्तं 'आद्गुण' इति गुणं बाधित्वा प्राप्ते 'प्रथमयोरि'ति पूर्वसवर्णदीर्घे पश्चात्तस्य 'नादिची'त्यनेन बाधेऽपि (१)भ्रष्टावसरन्यायस्य जागरूकत्वात्पुनर्गुणो न स्यादिति चेन्न । 'तौ सत्' 'मिथोद्ध्यौ नदे' इत्यादिनिर्देशेनोक्तन्यायस्यात्रानाश्रयणेन गुणप्रवृत्तेः सुलभत्वात् । देवदत्तहन्तृहतन्यायस्य तु नात्र प्रवृत्तिः । देवदत्ते हते सति तद्धन्तुर्हनने न पुनर्देवदत्तोज्जीवनमित्युक्तन्यायार्थात् । देवदत्तहननप्रसक्त्यज्ञदत्तहनने त्वस्त्येव देवदत्तोज्जीवनम्, प्रकृते न हन-

---

(१) भ्रष्टावसरेति । यस्यावसरो भ्रष्टः स पुनर्न प्रवर्तते इति न्यायस्वरूपम् ।

नस्थानीया वृद्धिर्हन्तुः पूर्वसवर्णदीर्घस्य लक्ष्ये प्रवृत्तिः, किन्तु बलनीयसजातीयं प्रसक्तिमात्रं प्रसक्तस्य बाधे बाध्योज्जीवने न बाधकमिति भावः ।

ननु अतः परस्य रोरुत्वं स्यादप्लुतेऽतीत्यर्थकेन 'अतो रोरप्लुते' इत्येतैव सूत्रेण शिवोऽर्च्य इत्यादावुत्वसिद्धौ व्यर्थमेवाप्लुतादग्रहणमित्याशयेन शङ्कते—**अप्लुतात्किमिति** । समाधत्ते—**एहि सुस्रोत ३ अत्र स्नाहीति** । अयम्भावः, तदभावे उक्तप्रयोगे प्लुताकारात्परस्यापि रोरुत्वापत्तिरतस्तद्ग्रहणम् । नचात इत्यत्र तपरकरणात् 'तपरस्तत्कालस्ये'त्यनेन तपरसमकालिकह्रस्वस्यैव ग्रहणात्प्लुतस्याग्रहणेन तस्मात्परस्य रोरतः परत्वाभावादेव तत्रोत्वव्यावृत्तावप्लुतादग्रहणं सर्वथा व्यर्थमेवेति वाच्यम् । उत्वदृष्ट्या प्लुतस्यासिद्धत्वादतः परत्वस्य सद्भावेन प्राप्तोत्वव्यावृत्त्यै तस्य सार्थक्यात् । ननु प्लुतस्योत्वदृष्ट्याऽसिद्धत्वेनातः परत्वस्य सद्भावात्कृतेऽप्यप्लुताद्ग्रहणे तत्रोत्वापत्तिस्तदवस्थैवेत्यत आह—**अप्लुतादिति विशेषणे तु तत्सामर्थ्यान्नासिद्धत्वमिति** । सति तु तस्मिन् प्रतियोगित्वेन प्लुतस्याश्रयणसामर्थ्यादसिद्धत्वं नेति तदर्थः । तत्सत्त्वेऽप्यसिद्धत्वे सर्वथा तद्वैयर्थ्यं स्यादिति भावः । नचात इत्यत्र तपरकरणसामर्थ्यादेवोक्तस्थलीयोक्तदोषोद्धारसम्भवात्तदर्थं कृतमप्लुताद्ग्रहणं व्यर्थमेवेति वाच्यम् । देवा अत्रेत्यादौ दीर्घाकारात्परस्य रोरुत्ववारणाय तपरकरणस्य चरितार्थत्वेन सामर्थ्यविरहात्तादृशकल्पनायास्तेन कर्तुमशक्यतया तदर्थमावश्यकत्वेन तस्य साफल्यात् । तस्मादप्लुतादित्यनेनैवोक्तकल्पना कर्तुं शक्यते न तपरकरणेनेति तद्ग्रहणमावश्यकं सति तस्मिन् सामर्थ्यान्नासिद्धत्वमिति न तत्र दोषः, अग्रहणे तु प्लुतस्योत्वं प्रत्यसिद्धत्वात्स्यादेव दोष इति निष्कर्षः । नचाप्लुताद्ग्रहणज्ञापितस्योत्वे प्लुतस्यासिद्धत्वन्नेत्यस्याभ्युपगमे 'दूराद्धूते चे'ति प्लुतस्य 'गुरोरनृत' इति प्लुतस्य चोत्वदृष्ट्या सिद्धत्वेन परत्वात्प्लुते पूर्वत्र रोरप्लुतपरत्वाभावात्परत्र चाप्लुतात्परत्वाभावात् 'अतो रोरि'त्यस्याप्राप्त्या पयस्यटति पयोददातीत्यर्थे आगच्छ हे पयोऽ३द् आगच्छ हे पयो३देत्यादावुत्वानापत्तिरिति वाच्यम् । एकपदस्थवर्णद्वयापेक्षमन्तरङ्गमुत्वं प्रति वाक्यसम्पादकपदान्तरापेक्षबहिरङ्गप्लुतस्यासिद्धत्वेनोत्वोपपत्तेः । अन्तरङ्गत्वात्प्रागुत्वे ततः प्लुते च नोक्तदोषावकाशः, अन्यथा शङ्कादलीयोक्तरीत्या तत्रोत्वं नैव स्यादिति भावः । नचोक्तपरिभाषायास्सापादिकत्वेनैतद्दृष्ट्या त्रैपादिकस्य प्लुतस्यासिद्धत्वात्कथं तत्प्रवृत्तिरिति वाच्यम् । स्वदृष्ट्या विद्यमानस्य परं प्रत्यविद्यमानत्वप्रतिपादनवत् परिभाषादृष्ट्या प्लुतस्याऽसिद्धत्वेपि तया तदसिद्धत्वप्रतिपादनस्य कर्तुं शक्यत्वात् । न च त्रिपाद्यां तत्प्रवृत्तौ नेयं त्रिपाद्यां प्रवर्तत इति सिद्धान्तविरोध इति

वाच्यम् । त्रैपादिकाऽन्तरङ्गस्यासिद्धत्वे तु प्रतिपाद्याभावात्प्रतिपादनासम्भवेन तदप्रवृत्तेः । यत्रान्तरङ्गशास्त्रं सापादिकं त्रैपादिकं च वहिरङ्गशास्त्रं तत्रान्तरङ्गशास्त्रे परिभाषा प्रवर्त्तते । परिभाषादृष्ट्या तस्य सिद्धत्वेन प्रतिपाद्यस्य सत्त्वात् । यत्रत्वन्तरङ्गशास्त्रं त्रैपादिकं तत्रान्तरङ्गशास्त्रे परिभाषा न प्रवर्त्तते । तादृशाऽन्तरङ्गशास्त्रस्यासिद्धत्वेन प्रतिपाद्याभावादित्युत्तराशयः । ननु प्रतियोगित्वेन प्लुतस्याश्रयणसामर्थ्यात् (१) उभयविधासिद्धत्वस्य वाधोऽस्त्विति चेन्न । आश्रयणसामर्थ्येन तु येन नाप्राप्ति न्यायेन प्रत्यक्षत्वात्पूर्वत्रासिद्धत्वस्यैव वाधो न त्वन्तरङ्गपरिभाषया वोध्यासिद्धत्वस्यापि मानाभावात् । नचोक्तपरिभाषया प्रागुत्वे ततः प्लुते च सुस्रोत ३ इत्यत्रैवोत्वापत्तिप्रदर्शनस्यैवौचित्येन पयोऽ३द् पयो३दित्यादौ तया तदनापत्तिप्रदर्शनमनुचितमिति वाच्यम् । तत्रान्तरङ्गत्वात्प्लुतस्यैव प्रवृत्त्योत्वाप्राप्त्या तदनापत्तेरिहप्रदर्शनस्यैवौचित्यात् । तथा हि, एकमात्रसापेक्षत्वेन प्लुतोऽन्तरङ्गः, भिन्नवाक्यस्थाकारसापेक्षत्वादुत्वं वहिरङ्गमित्यलम् ।

**असन्धिः सौत्र इति** । सूत्रे कृतः सौत्रः 'कृतलब्धक्रीतकुशलाः' इत्यण् । भगो अघोशब्दयोरोकारस्याकारस्य च पूर्वरूपात्मकः सन्धिः सौत्रत्वान्नेति तदर्थः । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्तानां वा रान्तानामनुकरणे तु यत्व–यलोपयोर्दुर्वारत्वात्तत्रासन्धिर्न्याय्य एवेति भावः । नच सान्ताऽनुकरणेनैव यत्व–यलोपाभ्यां सन्ध्यभावोपपत्तावलं रान्तानुकरणेनेति वाच्यम् । 'विभाषा भवद्भगवदघवतामोच्चावस्ये'ति वार्त्तिकनिष्पन्नानां भवदादिप्रकृतिकानां भोशब्दादीनामपि ग्रहणाय रान्तानुकरणस्यावश्यकत्वादिति बोध्यम् ।

ननु विसर्ग–यत्वयोः प्राप्तयोर्यत्वस्य विसर्गदृष्ट्याऽसिद्धत्वेन स एव स्यान्नतु यत्वमिति तद्व्यावृत्त्यर्थमशूग्रहणं व्यर्थमेवेत्यभिप्रेत्य शङ्कते–**अशि किमिति** । तन्निराचष्टे–**देवाः सन्तीति** । अयम्भावः, अशूग्रहणाभावे अवर्णपूर्वकरोः सत्त्वेन तत्र यत्वापत्तिरतस्तत् सति च तस्मिन्नशूपरत्वाभावान्न तदापत्तिः । नच यत्वस्यासिद्धत्वेन विसर्ग एव न तदिति न दोष इति वाच्यम् । यत्वस्य विसर्गदृष्ट्याऽसिद्धत्वेन तल्लाभेऽपि तस्य स्थानिवत्त्वेन रुत्वबुद्ध्या यत्वप्रवृत्तौ दोषस्य दुर्वारत्वात् । नच विसर्गेऽतिदेशेन रुत्वानयनासम्भवो रेफस्यैव विसर्गस्थानित्वात् । एवं च रत्वस्यैवातिदेशस्तथाचाऽनल्विधावित्यस्य स्थानिसम्वन्ध्यल्मात्रवृत्तिधर्माश्रयोद्देश्यताकविधौ न स्थानिवत्त्वमित्यर्थे विसर्गस्थानिसम्वन्ध्यल्रेफमात्रवृत्तिरत्वधर्माश्रयोद्देश्यकयत्वविधेः कर्त्तव्यत्वेन

(१) उभयेति । पूर्वत्रासिद्धत्वस्य परिभाषाबोध्याऽसिद्धत्वस्य चेत्यर्थः ।

स्थानिवत्त्वनिषेधान्न दोष इति वाच्यम् । रोरिति समुदायरूपस्याश्रयणेन रत्वस्याल्मात्रवृत्तित्वादनल्विधाविति निषेधाप्रवृत्त्या स्थानिवत्त्वस्य सुलभत्वेन दोषस्य तादवस्थ्यात् । विसर्गस्थानिनि रेफे रत्व-रुत्वोभयधर्मस्य सत्त्वादतिदेशेन यथेच्छयाऽतिदेष्टुं शक्यत्वाद्रुत्वातिदेशे कर्त्तव्ये निषेधाप्रवृत्तिरित्युत्तराशय इति (१) प्राञ्चः । (२)नव्यास्तु स्ववृत्त्यल्त्वव्याप्यधर्मावच्छिन्नस्थानितानिरूपितादेशतावद्धर्मिकारोपप्रकारीभूतधर्मावच्छिन्नोद्देश्यताके कार्ये न स्थानिवत्त्वमित्यर्थः, तथा च स्वपदेन स्थानी गृह्यते स च रेफस्तद्वृत्ती योऽल्त्वव्याप्यो धर्मः स च रत्वं तदवच्छिन्ना स्थानिता रेफनिष्ठा तन्निरूपितादेशतावान् विसर्गः स धर्मी यस्य एतादृशो य आरोपप्रकारीभूतो धर्मः स च रत्वं रुत्वञ्च तदवच्छिन्नो रेफो रुशब्दश्च तन्निष्ठोद्देश्यतानिरूपितविधेयताश्रये यत्वरूपे कार्ये कर्त्तव्ये स्थानिवत्त्वनिषेधाद्देवाः सन्तीत्यादौ दोषाभावेनाऽस्याऽशुग्रहणप्रत्युदाहरणत्वासम्भवात् । छन्दःसु पयःस्वित्यादावुक्तदोषस्य स्पष्टत्वादेतदेव तत्प्रत्युदाहरणम्बोध्यम् । तत्र हि 'रोः सुपि' इति विसर्गस्य स्थानी रुशब्दस्तद्वृत्तिरुत्वस्य रुशब्देऽपि सत्त्वादल्त्वव्याप्यधर्मत्वाभावेन रुत्वावच्छिन्नस्थानिताया अल्त्वव्याप्यधर्मावच्छिन्नत्वाभावेन निषेधाप्रवृत्तावतिदेशेन रुत्वबुद्ध्या तत्त्वापत्तेर्दुर्वारतया प्रत्युदाहरणत्वोपपत्तिरिति तद्भावः । यदि च 'रोः सुपी'त्यत्रापि रः षष्ठ्यन्तस्यानुवृत्तौ रोर्यो रेफस्तस्य विसर्ग इत्यर्थे रत्वावच्छिन्नस्थानिताया अल्त्वव्याप्यधर्मावच्छिन्नत्वेनोक्तनिषेधप्रवृत्त्योक्तस्थलीयदोषव्यावृत्तिस्तर्हि (३) अदृष्टार्थमशुग्रहणमित्याहुः । नन्वं परिष्कृतार्थस्वीकारे 'ग्रहोऽलिटी'त्यत्र दीर्घशब्देनाऽचोविधानात् 'अचश्चे'ति परिभाषोपस्थिताविटोऽचोदीर्घ इत्यर्थे अच्त्वावच्छिन्नस्थानिताया अल्त्वव्याप्यधर्मावच्छिन्नत्वेन तादृशस्थानितानिरूपितादेशतावान् अग्रहीदित्यत्राग्रहीस् इत् इति स्थितौ सकारात्पूर्वो दीर्घ ईकारस्तद्धर्मिकारोपप्रकारीभूतो धर्म इट्त्वं तदवच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयताश्रयत्वं सलोपस्येत्यनल्विधाविति निषेधादिट्त्वस्यानतिदेशेन सलोपानुपपत्त्याऽग्रहीदिति न सिद्ध्येदिति वाच्यम् । (४)तत्रापि अजभिन्नेट्त्वावच्छिन्नस्यैव स्थानित्वात्तादृशधर्मस्याल्त्वव्याप्यत्वाभावेन निषेधाप्रवृत्त्या स्थानिवत्त्वेनेट्त्वाऽऽनयनात्सलोपे तदुपपत्तेः । नचोक्तार्थस्वीकारे हे रामेत्यादौ सम्बुद्ध्यवयवस्य हलः सस्य लोपे तद्वृत्तिसुप्त्वस्यालधर्म-

---

(१) प्राञ्च इति । दीक्षितादयः । (२) नव्यास्त्विति नागेशप्रभृतयः ।
(३) अदृष्टार्थमिति । अदृष्टोऽर्थः प्रयोजनं यस्य तत् अदृष्टार्थम् पारायणादौ पुण्यजननप्रयोजनकमित्यर्थः । (४) तत्रापीति । ग्रहोऽलिटीत्यत्रापीत्यर्थः ।

स्थानिवत्त्वनिषेधे कथं पदत्वमिति वाच्यम्। (१)आनुमानिकादेशस्य रामेत्यस्य स्थानिवत्त्वात्सुबन्तत्वस्य तत्प्रयुक्तकार्यस्य वा लाभेन तदुपपत्तेरिति दिक्।

ननु ञमः पदत्वस्याव्यभिचरितत्वेन पदे इति तद्विशेषणं व्यर्थमित्यत आह—**पदे किमिति।** तदुत्तरयति—**तन्त्रयुतमिति।** इत्थं तदाशयः, पदे इत्यस्याग्रहणे तन्त्रयु (२)उतमिति स्थितौ उञ्परत्वाच्चलोपापत्तिरतस्तद्ग्रहणं सति च तस्मिन् उञ्परत्वेऽपि तस्य पदत्वाभावान्न तदापत्तिः। न च लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषया चादिपठितप्रतिपदोक्तस्यैवाऽत्र सूत्रे उञो ग्रहणेन सम्प्रसारणनिष्पन्नस्य लाक्षणिकस्य तस्याग्रहणात्तत्रोक्तदोषस्याप्रवृत्तौ व्यर्थमेव तद्विशेषणमिति वाच्यम्। उत्तरार्थत्वेन तस्य चारितार्थ्यात्। तथाहि, 'ङमो ह्रस्वादची'त्यत्र 'उञि च पदे' इत्यतः पदे ग्रहणमनुवर्त्य ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याजादेः पदस्य ङमुडिति व्याख्यानेन परमदण्डिनावित्यादौ न ङमुट् आवित्यस्य पदत्वाभावादिति प्राञ्चः। वस्तुतस्तु पदे ग्रहणस्योत्तरसूत्रेऽपि नोपयोगः। तत्र पदस्येत्यनुवृत्त्यैव निर्वाहात्। तदनुवृत्तौ ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात्परस्याचो ङमुडित्यर्थे उत्तरपदे चेति प्रत्ययलक्षणनिषेधात्परमदण्डिन्नित्यत्रान्तर्वर्तिविभक्त्या पदत्वासम्भवान्ङमन्तपदात्परस्याचोऽभावेनैव ङमुटोऽप्रसक्तेरित्युत्तराशयः। यदि माषकुम्भवापेनेत्यादौ 'पदव्यवायेऽपी'ति निषेधसिद्धये उत्तरपदस्य कार्यित्व एव उक्तवार्तिकेन प्रत्ययलक्षणप्रतिषेध इत्युच्येत तर्हि तत्र प्राप्तङमुट्निवृत्तये प्राचीनव्याख्यानमेव शरणम् इति युक्तमेव पदेग्रहणमुत्तरार्थमिति कथनम्। ननु 'हलि सर्वेषाम्' इत्यत्र पदेग्रहणमनुवर्त्य हलादौ पदे इत्यर्थलाभे वृक्षवृभ्यामित्यादौ न नित्यवलोपः। किन्तु 'लोपः शाकल्यस्ये'ति वैकल्पिक एव स इति पदेग्रहणस्य प्रयोजनमस्तीति चेन्न। हलि सर्वेषामित्यत्र वकारस्याननुवृत्त्याऽनेन लोपाप्राप्त्या वैकल्पिक एव लोपे पदेग्रहणस्य निष्प्रयोजनत्वादित्यलम्।

---

(१) आनुमानिकेति। अनुमानात्सिद्ध आनुमानिकः। एष चानुमानिकस्थान्यादेशभावः शब्दानित्यत्ववारणाय स्वीकृतः। एतत्स्वरूपन्तु तद्बुद्धिप्रसंगे एतद्बुद्धिः कर्तव्येति। प्रकृते हे राम इति बुद्धिः कर्तव्येति। अथवा हे रामस् इत्युच्चारणप्रसङ्गे उक्तानुशासनबलात् हे राम इत्युच्चारणीयम्। अथवा हे रामस् इत्यस्य स्थाने हे राम इत्यादेशः, एतद्रूप आनुमानिकस्थान्यादेशभावः। तथा च रामेत्यादेशस्य स्थानी रामस् इति तद्वृत्तिसुबन्तत्वस्य स्थानिवद्भावेनादेशे सुलभतया पदत्वं निराबाधमेवेति भावः।

(२) उतमितीति। वेञः क्तप्रत्यये सम्प्रसारणे रूपं सिद्ध्यति।

ननु 'रोऽसुपि' इत्यत्राऽसुपिग्रहणाऽभावे तस्य सुप्यपि प्रवृत्त्यापत्तावहन्सूत्रस्य वैयर्थ्येन सामर्थ्यादुक्तसूत्रस्य सुपि न प्रवृत्तिरिति कल्पनादसुप्येव तत्प्रवृत्तौ व्यर्थमेव तद्ग्रहणमित्यभिप्रायकः पूर्वपक्षः प्रादुर्भवति—असुपि किमिति। तं समाधत्ते—**अहोभ्यामिति**। अयम्भावः, (१) तथा सति, अहः, अहोभ्यामित्यादौ नकारस्य रेफादेशे तस्य नलोपदृष्ट्याऽसिद्धत्वेन प्राप्तनलोपव्यावृत्त्यर्थमावृत्तेरावश्यकत्वेन तदर्थमहन्सूत्रस्यावश्यकत्वादनेनोक्तकल्पनायाः कर्त्तुमशक्यत्वेन रोऽसुपीत्यस्य सुप्यपि प्रवृत्तावुक्तप्रयोगासिद्ध्यापत्तिरित्यावश्यकमेव सूत्रे तद्ग्रहणमित्यलम्।

ननु सूत्रे दीर्घपदश्रवणात् 'अचश्चे'ति परिभाषोपस्थितावच एव दीर्घविधानात्सिद्धौ व्यर्थमेवाण्ग्रहणमित्यत आह—**अणः किमिति**। प्रत्युदाहरति—**तृढः वृढः इति**। तृहू वृहू धातुभ्यां क्तप्रत्यये ऊदित्त्वेन वेट्कत्वात् 'यस्य विभाषा' इति निष्ठाया इण्निषेधे ढत्व धत्व ष्टुत्व-ढलोपेषु कृतेषु निष्पन्ने उक्तप्रयोगे ऋकारस्याच्त्वेन दीर्घापत्तिरतस्तद्ग्रहणं कृतं कृते च तस्मिन् ऋकारस्याण्त्वाभावान्नोक्तापत्तिः। न च परणकारेणाऽणो ग्रहणे सत्यपि तस्मिन् तत्रत्योक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यम्। अत्र पूर्वेणैवाण्ग्रहणस्य सिद्धान्तितत्वात्। अन्यथोक्तरीत्यैव सिद्धौ स्पष्टमेवाण्ग्रहणस्य वैयर्थ्यमिति भावः॥

ननु 'ढ्लोप' इत्यत्र सप्तमीश्रवणात्तस्मिन्निति परिभाषोपस्थित्यैव पूर्वस्येत्यर्थ लाभादिष्टसिद्धौ सूत्रे पूर्वस्येति व्यर्थमेवेत्याशङ्कां समाधत्ते-**पूर्वग्रहणमनुत्तरपदेऽपि पूर्वमात्रस्य दीर्घार्थमिति**। पूर्वग्रहणाऽसत्त्वे 'अलुगुत्तरपदे' इत्यत उत्तरपदोपस्थितौ ढ्लोपनिमित्तयोरुत्तरपदस्थढरेफयोः परयोः पूर्वस्याऽणो दीर्घ इत्यर्थे अजर्घा, लीढ इत्यादौ दीर्घानापत्तिः, उत्तरपदस्थढरेफपरकत्वाभावादुत्तरपदशब्दस्य समासचरमावयवे रूढत्वात्। नचाण्ग्रहणसामर्थ्यादेव तत्र दीर्घ इति वाच्यम्। आतृढ आवृढ इत्यादौ दीर्घव्यावृत्त्यर्थत्वेन तस्य चरितार्थत्वात्। ननु सूत्रारम्भसामर्थ्यादेव दीर्घोऽस्त्विति चेन्न। नीरक्तं दूरक्तं मित्यादौ तस्य सावकाशत्वात्। न च ढ्लोपादेस्त्रैपादिकत्वेनासिद्धत्वाद्दीर्घाऽप्राप्त्या तत्र सूत्रसावकाशत्वप्रदर्शनमसङ्गतमिति वाच्यम्। सूत्रारम्भसामर्थ्यादेवासिद्धत्वस्य बाधेन दीर्घप्रवृत्तिसुलभतया सावकाशत्वप्रदर्शनस्य युक्तत्वात्। इत्यावश्यकेन पूर्वग्रहणेन सामर्थ्यादुत्तरपदानुपस्थितौ न कश्चिद्दोष इति भावः॥

---

(१) तथा सतीति। असुपीत्यस्याभावेऽहन्सूत्रविषये रोऽसुपीति सूत्रे प्रवृत्ते सतीत्यर्थः।

मनोरथ इति । मनस् रथ इति स्थितौ सकारस्य रुत्वे कृते प्राप्तयोरुत्वलोपयोर्मध्ये कः स्यादिति सन्देहस्य जातत्वादाह—**विप्रतिषेधे परं कार्यमिति** । कर्मव्यतिहारे विद्यमानाद्विप्रतिपूर्वकात्संधतेर्घञि निष्पन्नस्य विप्रतिषेधशब्दस्य परस्परविरोधरूपोऽर्थः । (१)नित्यान्तरङ्गापवादभिन्नोऽस्य सूत्रस्य विषय इत्यभिप्रेत्योक्तार्थकविप्रतिषेधशब्दस्य पर्यवसितमाह—(२)**तुल्यबलविरोध इति** । तस्मिन् सति परं कार्यमिति तेन बाधिते देवो हसतीत्यादौ सावकाशस्य 'हशि चे'त्यस्य पुना रमते इत्यादौ लब्धावकाशेन 'रोरी'ति लोपेन परत्वाद्बाधे प्राप्ते 'पूर्वत्रासिद्धमि'त्यनेनोत्वदृष्ट्या लोपस्यासिद्धत्वबोधनात्सिद्धासिद्धयोरसमानबलवत्त्वेन विप्रतिषेधशास्त्राप्रवृत्त्या बाधकाभावादुत्वमेवेति तत्सिद्धिः, तदुक्तं, 'पूर्वत्रासिद्धे नास्ति विप्रतिषेधोऽभावादुत्तरस्ये'ति । 'पूर्वत्रासिद्धमि'त्यत्र शास्त्रासिद्धत्वमुत कार्यासिद्धत्वमिति तत्रैव निरूपितमिति तत एवाऽवसेयमिति भावः ॥

ननु साकच्कयोरेतत्तदोः शब्दान्तरत्वेन तद्विषये सूत्राऽप्राप्त्याऽतिप्रसङ्गाभावादकोरिति व्यर्थमित्यभिप्रेत्य शङ्कते—**अकोः किमिति** । समाधत्ते—**एषको रुद्र इति** । अकोरित्यनेनैव सामर्थ्यात् तन्मध्यपतितन्यायस्य ज्ञापनादकच्विशिष्टयोस्तयोरेतत्तच्छब्दाभ्यां ग्रहणात्तत्र प्राप्तसुलोपव्यावृत्त्यर्थन्तदावश्यकमिति भावः ॥

ननु नञोऽभावोऽर्थस्तत्र प्रतियोगिनस्तच्छब्दस्य विशेषणत्वेन पूर्वपदार्थस्याऽभावरूपस्य प्राधान्यादुत्तरपदार्थस्योक्तविशेषणस्याप्राधान्येनोपसर्जनत्वात् 'त्यदादीनामः' इत्यस्याप्रवृत्त्या हल्ङ्यादिलोपस्य दुर्वारतया नञ्समासे तच्छब्दात्परस्य सोर्लोपव्यावृत्त्यर्थमनञ्समासग्रहणं व्यर्थमित्यभिप्रायकः सन्देहो जागर्त्ति—**अनञ्समासे किमिति** । एतद्ग्रहणेनैव सामर्थ्यान्नञ्समासे उत्तरपदार्थस्य प्राधान्यमिति ज्ञापनात्त्यदाद्यत्वस्य प्रवृत्त्या हल्ङ्यादिलोपाप्राप्तौ तच्छब्दात्परस्य सोर्लोपवारणार्थमनञ्समासग्रहणमावश्यकमित्थं मनसि निधाय सन्देहं व्यावर्त्तयति—**असः शिव इति** । नञ्तत्पुरुषे उत्तरपदार्थप्रधानत्वाकल्पनात् अतौ स्त इत्यत्र द्विवचनस्य, अत्वं भवसीत्यादौ पुरुषव्यवस्थायाश्च नोपपत्तिः । उक्तकल्पनादेव, उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष इति प्रवादः सङ्गच्छते इति भावः ॥ इति फक्किकारत्नमञ्जूषायां स्वादिसन्धिः ॥

इति पञ्चसन्धिप्रकरणम् ॥

---

(१) नित्यान्तरङ्गेति । नित्यस्यावश्यकतयाऽन्तरङ्गस्य ज्ञापकत्वादिनाऽपवादस्य वचनप्रामाण्याद्बाधकत्वे निश्चिते तद्भिन्नोऽस्य विषय इत्याह—नित्येत्यादि ।

(२) तुल्यबलेति । स्वांशे स्वांशे लब्धावकाशयोरेकत्र युगपत्प्राप्तिरूपः सः ।

# अथ अजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् ।

अर्थवदिति । अत्र सूत्रेऽर्थवत्वम् एतत्संज्ञाफलभूतविभक्तीतरसमभिव्याहारानपेक्षया लोकेऽर्थविषयकबोधजनकत्वमिति नव्याः ।

प्राचीनास्तु—अर्थवत्सूत्रे सर्वप्रसिद्धसाधारणं वृत्तिमत्त्वमेवार्थवत्त्वम् । अयमाशयः, वृत्तिज्ञानाधीनोपस्थितिप्रयोज्यबोधजनकत्वेन तात्पर्यविषयत्वम् । अत एव रामादिघटकरेफादेर्बोधाजननेऽपि रामादेश्च प्रातिपदिकत्वोपपत्तिः । ननु पर्युदासेनाऽर्थवत्त्वलाभेऽर्थवद्ग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न । उत्तरार्थत्वात् । न चेहकरणं व्यर्थमिति वाच्यम् । 'इह किञ्चित्त्रपो' इति न्यायेनाऽर्थवत्त्वेनैव सादृश्यग्रहणे प्रमाणान्वेषणप्रयासक्लेशनिवृत्तिरूपफलेन साफल्यात् । प्रत्ययेऽतिव्याप्तिवारण तु अप्रत्ययपदावृत्त्योत्तरसूत्रघटकतद्धितग्रहणबोधितया सुव्यक्तमेव । नचैतदेव गौरवं दूषणमितिवाच्यम् । नवीनोक्तार्थवत्त्वलक्षणपरिष्कारप्रकारप्रयासबाहुल्यापेक्षयाऽस्य लघुत्वात् । इत्तरसूत्रे एकार्थीभावपर्याप्त्यधिकरणत्वमेवार्थवत्त्वमित्याहुः ॥

ननु पाचक औपगव इत्यादौ प्रत्ययान्तत्वेन प्रत्ययान्तपर्युदासेन निषेधात्पूर्वसूत्रेण प्रातिपदिकत्वाप्रसक्तौ तदर्थमुत्तरसूत्रे कृत्तद्धितोर्ग्रहणावश्यकत्वेऽपि समासे राजपुरुष इत्यादौ (१)प्रत्ययग्रहणपरिभाषया ङसन्तस्यैव स्वन्तस्यैव च प्रत्ययान्ततदादित्वबोधनात्समुदायस्य प्रत्ययान्ततदादिभिन्नत्वेन पूर्वेणैव तत्सिद्धौ समासग्रहणं व्यर्थम् । नच राज्ञः कुमारी राजकुमारीत्यादावन्तरङ्गत्वेन हल्ङ्यादिलोपेऽनुपसर्जनस्त्रीप्रत्यये तदादिनियमाभावादर्थादतदादावपि तदादित्वारोपाद्राजन् ङस् कुमारीत्यस्य प्रत्ययान्ततदादित्वात्पूर्वसूत्रेण प्रातिपदिकत्वसिद्ध्या तदर्थं समासग्रहणं विध्यर्थमिति वाच्यम् (२) (अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुग्बाधते) इति परिभाषया श्रूयमाणसुपा समासे राजन्

(१) प्रत्ययग्रहणपरिभाषयेति । प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणमिति परिभाषास्वरूपम् । यस्मात्प्रत्ययविधिरितिसूत्रे यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादीत्येको योगः प्रत्यये इत्यपरो योगः । गृह्यमाणे उपतिष्ठते इति शेषः । तथाच प्रत्यये गृह्यमाणे यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादीत्युपतिष्ठते इति तदाद्यन्तसिद्धिः । तदन्तांशसिद्धिस्तु विशेष्यान्तरासत्त्वे शब्दरूपविशेष्यमादाय येन विधिरित्यनेनैव । अत एवोक्तपरिभाषा लभ्यते इति बोध्यम् ।

(२) अन्तरङ्गानपीति । 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'ति सूत्रमस्या ज्ञापकं तथाहि, त्वत्कृतमित्यादौ लुगपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वाद्विभक्तिनिमित्तकेन त्वमावेकवचने इत्यनेनैव त्वादेशसिद्धावुत्तरप्रत्यये परे त्वादेशविधानार्थमुक्तसूत्रं व्यर्थं सत्परिभाषां ज्ञापयति । तच

दधृ कुमारी तु इत्यस्याप्रत्ययान्ततदादित्वेन पूर्वसूत्रेणैव प्रातिपदिकत्वसिद्धौ समासग्रहणवैयर्थ्यस्य तादवस्थ्यात् । नच शक्ति-लक्षणा-व्यञ्जनाऽन्यतमत्वेनार्थबोधजनकत्वमर्थवत्त्वमिति स्वीकाराच्छशश्रृङ्गमित्यादौ तदभावात्प्रातिपदिकत्वाप्राप्तौ तदर्थं समासग्रहणं निरर्थकमिति वाच्यम् । तत्रापि बौद्धार्थशक्तिस्वीकारात्सञ्ज्ञासिद्धेर्व्यर्थमेव समासग्रहणमित्यत आह—**पूर्वसूत्रेणैव सिद्धे समासग्रहणं नियमार्थमिति ।** पूर्वभागः पदमिति । स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हार्थवत्पदमिति तदर्थः । तेन गवित्ययमाहेत्याद्यनुकरणशब्दे गो इत्यस्यासुबन्तत्वेऽपि स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हार्थवत्त्वरूपपदत्वसत्त्वान्नियमफलोपपत्तिः । इति शब्दपरत्वाभावे अपिशब्दबलेन तत्परत्वे च 'अनुकरणञ्चानितिपरमि'त्यनेनानुकरणत्वबोधनात्तस्यापि स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हत्वात् । पूर्वभागः पदमिति उत्तरस्तु प्रत्ययो नेत्यस्याप्युपलक्षणम् । तेन जन्मवानित्यादौ प्रातिपदिकत्वसिद्धिः अन्यथा 'स्वादिष्वि'त्यनेन पूर्वभागस्य पदत्वात्सा न स्यान्नियमेन तद्व्यावृत्तेः । नच तत्र तद्धितग्रहणसामर्थ्यादेव प्रातिपदिकत्वोपपत्तिरिति वाच्यम् । तस्य भानव इत्यादौ चारितार्थ्यात् तत्र पूर्वभागस्य भत्वं न तु पदत्वम् । नचैवमयमियाजित्यादिसमुदायस्य प्रातिपदिकत्वं स्यादेव पूर्वभागस्य पदत्वेऽप्युत्तरस्य प्रत्ययत्वादनेन नियमेन वारयितुमशक्यत्वादिति स्पष्टं मनोरमायाम् । वस्तुतस्तु पूर्व इत्यनेनाक्षिप्तः परोपि स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हार्थवानेव गृह्यते तेन पुत्रकाम्यादौ न दोष इति भावः । ननु ज्ञापकस्य स्वांशे चारितार्थ्यं फलमन्यत्रेत्यस्य प्रसिद्धत्वात्समासग्रहणस्य ज्ञापकत्वं न स्यादुक्तज्ञापनोत्तरं तस्य स्वांशे चारितार्थ्याभावादिति चेन्न । 'यावता विना नोपपत्तिस्तावत्सर्वं ज्ञापयती'ति न्यायेन पूर्वसूत्रे पूर्वभागपदघटितसङ्घातातिरिक्तार्थवत एव ग्रहणमिति सङ्कोचेन समासे वाक्ये च पूर्वसूत्रेण प्रातिपदिकसञ्ज्ञाया अप्राप्तौ समासे संज्ञासिद्धये समासग्रहणस्य स्वांशे चारितार्थ्यात् । यत्र सङ्घातेत्यादिमूलोक्तो न नियमाकारः किन्तु साजात्यप्रदर्शनमात्रम् । तदाकारस्तु व्यर्थीभूतशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकव्यापकं वैयर्थ्यप्रयोजकशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकव्याप्यं यद्रूपं तद्रूपावच्छिन्नातिरिक्तत्वेन वैयर्थ्यप्रयोजकशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकावच्छिन्ने सङ्कोच इत्येव तथा च प्रकृते, व्यर्थीभूतसमासग्रहणरूपशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकसमाससंज्ञकार्थवत्त्वव्याप्यं यद्रूपं पूर्वभागपदघटितसङ्घातत्वं तद्रूपा-

---

पुत्रस्त्वत्पुत्र इत्यादौ तवममादिबाधनार्थं ज्ञापकीभूतोक्तसूत्रस्य चारितार्थ्यं तु अत्रानुवृत्तस्य मपर्यन्तग्रहणस्यैव ज्ञापकत्वं बोध्यम् । 'उत्सर्गसमानदेशा अपवादा' इति न्यायेन मपर्यन्तस्यैवादेशसिद्धौ व्यर्था सती मपर्यन्तानुवृत्तिः परिभाषाज्ञापिकेति भावः ।

वच्छिन्नातिरिक्तत्वेन वैयर्थ्यप्रयोजकशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकानवच्छिन्नेऽर्थेऽचति सङ्कोच इति दिक्।

ननु रमा गौरीत्यादौ (१)'प्रातिपदिकग्रहण' इति परिभाषयैव प्रातिपदिकपदेन ङ्यावन्तस्यापि ग्रहणात्स्वादिसिद्धौ 'ङ्याप्प्रातिपदिकादि'ति सूत्रे ङ्याब्ग्रहणं व्यर्थमित्याशयेन शङ्कते—**प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापीत्यादि**। इत्थं हि समाधातुरभिप्रायः, उक्तसूत्रे ङ्याब्ग्रहणाभावे, आर्यशब्दाट्टापः प्रागन्तरङ्गत्वात्कनि ततष्टापि आर्यकेत्यवस्थायामात्स्थानिकाकाराभावात् 'उदीचामि'त्यस्याप्राप्तौ 'प्रत्ययस्थे'-ति नित्यमित्वे आर्यिकेत्येकमेव रूपम्। एवं लोहितशब्दान्ङीपः प्रागन्तरङ्गत्वात्कनि ततष्टापि लोहितकेत्यवस्थायां तोपधत्वाभावेन 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो न' इत्यस्याप्राप्तौ 'प्रत्ययस्थेति नित्यमित्वे' लोहितिकेत्येकमेव रूपन्तु आर्यिका आर्यका लोहिनिका लोहितिकेति ङ्याब्ग्रहणमावश्यकम्, कृते ङ्याब्ग्रहणे तु तत्सामर्थ्यात्ताभ्यां प्राङ् न तद्धितोत्पत्तिरित्यर्थज्ञापनेन ङ्याबन्तादेव तद्धितोत्पत्तावुक्तरूपसिद्धिरिति। सूत्रे ङ्याब्ग्रहणं स्त्रीप्रत्ययमात्रोपलक्षणमर्थात्स्त्रीप्रत्ययमात्रं तद्धितोत्पत्तेः प्रागभवतीति फलितम्। तेन ब्रह्मबन्धूतरा युवतितरेत्यादि सिद्धिः, अन्यथा स्त्रीप्रत्ययात्प्राक् तद्धितोत्पत्तावुक्तप्रयोगोपपत्तिर्न स्यात्। (२)अत्र वयोवाचके वैकल्पिकजातित्वस्य स्वीकाराज्जातेश्चेति निषेधेन न पुंवत्त्वम्। तद्धितोऽपि व्याख्यानात्समासान्ततिप्रत्ययाद्यतिरिक्त एव गृह्यते तेन युवतिः, बहुगोमत्केति सिद्धम्। अन्यथा तिप्रत्ययात्कपश्च प्राङ्ङीपि यूनस्तिः बहुगोमतिकेति स्यादिति प्राञ्चः। नागेशास्तु अत्यन्तस्वार्थिकानां सुबुत्पत्तेः पूर्वमेवोत्पत्तिमङ्गीकृत्य 'लोहितान्लिङ्गबाधनं वे'ति वार्त्तिकेन लोहिनिका लोहितिकेतिरूपद्वयम्प्रतिपाद्य आर्यिकेत्येकमेव रूपमुक्तवन्तः। नागेशोक्तिरियमयुक्ता युक्ता वेति स्वयमूहनीया। वस्तुतस्तु स्वार्थद्रव्यलिङ्गसङ्ख्याकारकेति पञ्चविधप्रातिपदिकार्थप्रयुक्तकार्याणां क्रमनियमः प्रथमं शब्दप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन जातिबोधः, ततो धर्मित्वेन प्रधानत्वाल्लिङ्गादिभिरपेक्षितत्वाच्च व्यक्तिबोधः, ततः स्वमात्रापेक्षत्वाल्लिङ्गबोधः, ततो विजातीयक्रियापेक्षकारकापेक्षया सजातीयपदार्थापेक्षसङ्ख्यायाः प्रथममुपस्थितत्वेन सङ्ख्याबोधः ततः कारकरूपविभक्त्यर्थापेक्षया कारकबोधः ततो लिङ्गकार्योत्तरमेव तद्धितोत्पत्तिरिति नोक्तप्रयोगाणामनुपपत्तिरिति केचित्। उदीचा-

---

(१) प्रातिपदिकग्रहणेति। 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपिग्रहण'मितिस्वरूपम्
(२) अत्रेति। युवतितरेत्यत्रेत्यर्थः।

मित्यस्य सामर्थ्यामोक्षफलसिद्धिः । आर्येव प्रतिकृतेत्यर्थे आर्यिकेत्यत्र 'इवेति प्रतिकृतावि'ति कनः प्राक् टापि तत्र सूत्रस्य चारितार्थ्यादित्यलम् ॥

ननु रामशब्दात्सौ तस्य रुत्वे राम रु इति स्थितौ 'उपदेशेऽजनुनासिक इदि'त्येतद्दृष्ट्या रुत्वस्यासिद्धत्वादुकारस्येत्संज्ञालोपयोरभावेन, स्थानिवत्त्वस्य त्रिपाद्यामप्रवृत्त्या रेफान्तस्य 'सुप्तिङन्तमि'ति पदत्वाभावेन च विसर्गो न स्यादिति चेन्न । 'न मुने' इत्यत्र नेतियोगं विभज्यासिद्धेति व्याख्यानाद्रुत्वस्योक्तसूत्रदृष्ट्याऽसिद्धत्वाभावादुकारस्येत्वे लोपे च रेफस्य स्थानिवत्त्वेन विसर्गस्य सुलभत्वादित्याशयेनाह—**रुत्वविसर्गाविति।** 'ससजुषोरुरि'ति रुत्वे 'खरवसानयोरि'ति विसर्गे च राम इति सिद्धमिति भावः ॥

ननु 'अतो गुणे' इत्यस्य सकलदीर्घबाधकत्वेन राम इत्यादौ 'प्रथमयोरि'ति पूर्वसवर्णदीर्घो न स्यादित्याशङ्कयाऽपवादविषयबाध्यविशेषचिन्तापक्षमूलन्यायेन समाधत्ते—पुरस्तादिति । (१) (पुरस्तादपवादा अनन्तरान्विधीन्बाधन्ते नोत्तराजि) ति न्यायाकारः । प्राग्वर्त्तिनोऽपवादा अनन्तरान् सन्निकृष्टान् विधीनेव बाधन्ते नोत्तरान् । अनन्तरापेक्षया व्यवहितानिति तदर्थः । तथा च 'अतो गुणे'इति सूत्रं सवर्णदीर्घमेव बाधते नतु पूर्वसवर्णदीर्घमिति न दोष इति भावः, अयं न्यायो 'नादिची'तीज्ग्रहणेन ज्ञापितः, तथाहि रामानित्यादौ निषेधाभावाय सूत्रे तद्ग्रहणम् पररूपेण दीर्घबाधे हि तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति दिक् ॥

ननु (येन विना यदनुपपन्नं तत्तेनाक्षिप्यते) यथा पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इत्यादौ पीनत्वानुपपत्त्या रात्रिभोजनस्याक्षेपस्तद्वदङ्गं विना सम्बुद्ध्यनुपपत्त्या तया तस्याक्षेपस्तथा च 'येन यस्याक्षेपस्तस्य तत्रैवान्वयः' इति न्यायादङ्गस्य सम्बुद्धिविशेषणत्वमेव न्याय्यम् । (२) 'श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलीयानि'ति न्यायात् एङ्ह्रस्वयोर्हल्विशेषणत्वमेव न्याय्यम् । तथाहि अङ्गात्परा या सम्बुद्धिस्तदवयवो यो हल् स च लुप्यते एङ्ह्रस्वाभ्यां परतश्चेदिति सूत्रार्थः समुचितस्तं विहायाऽन्यथा सूत्रार्थवर्णनमनुचितमित्याह-**सम्बुद्ध्याक्षिप्तस्येति** । अयमाशयः, तथा सति हे कतरदित्यत्राऽङ्गान्तरीभूताया अदिति सम्बुद्धेरवयवस्य हलस्तकाररूपस्य लोप आपद्येत, अतो लक्ष्यानुरो-

(१) पुरस्तादिति । अवश्यं स्वपरस्मिन्बाधनीये प्रथमोपस्थितानन्तरबाधेन चारितार्थ्ये पश्चादुपस्थितस्य ततः परस्य बाधे मानाभावः, आकाङ्क्षाया निवृत्तेर्विप्रतिषेधशास्त्रबाधे मानाभावाच्चेति परिभाषायां बीजम् ।

(२) श्रुतानुमितयोरिति । श्रुतेनैव सम्बन्धो नानुमितेन प्रकरणादिप्राप्तेनेत्यर्थः । प्रकरणादितः श्रुतेर्बलवत्त्वात् इति भावः ।

धात् 'श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलीयान्' इतिन्यायं तिरस्कृत्य, एङ्ह्रस्वयोरनुमितस्याऽप्यङ्गस्य विशेषणत्वमभ्युपेयम्। एवञ्च ह्रस्वान्ताङ्गात्परत्वाभावेन न तत्र सम्बुद्धिलोपः। नचाङ्गात्परा या सम्बुद्धिस्तदवयवो यो हल् स न लुप्यते सा च सम्बुद्धिरेङ्ह्रस्वाभ्यां परीभूता चेदित्यर्थे अदिति सम्बुद्धेर्ह्रस्वात्परत्वाभावेनैव तत्रत्यातिव्याप्तिदोषव्यावृत्तिसम्भवे एङ्ह्रस्वयोरनुमिताङ्गविशेषणत्वे किम्फलमित्यत आह—हे कुलेति। उक्तार्थस्वीकारेऽत्राव्याप्तिदोषापत्तिः, तथाहि, अत्र 'स्वमोर्नपुंसकादि'त्यतः प्राक् परत्वात् 'अतोऽमि'ति सोरमादेशे 'अमि पूर्व' इति पूर्वरूपत्वे उभयत आश्रयणेऽन्तादिवद्भावाऽप्रवृत्त्या तदभ्युपगमेऽपि ह्रस्वसम्बुद्ध्योः पौर्वापर्यव्यवहारासम्भवेन तादृरूप्यस्याऽतिदेष्टुमशक्यत्वेन च सम्बुद्धेः ह्रस्वान्ताङ्गात्परत्वाभावात्तल्लोपो न स्यात्। अतोऽन्याक्षिप्तस्याऽप्यन्यत्रान्वयः, अर्थादेङ्ह्रस्वयोरङ्गविशेषणत्वमङ्गीकार्यं तथा सति मूलोक्तार्थसम्पन्नत्वेन लोपोपपत्तिः सुलभा। नच (१) 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' इति न्यायेन मकारे सम्बुद्धित्वानयनात्तस्य कुलेत्यकारान्ताङ्गात्परत्वेन न लोपाऽनुपपत्तिरिति वाच्यम्। अर्द्धविकारेऽर्द्धाधिकविकारे च तत्प्रवृत्त्यनङ्गीकारात्। उक्तपरिमाणनिष्ठत्वादेकवचनसञ्ज्ञा—सम्बुद्धिसञ्ज्ञयोरुक्तन्यायेन लब्धुमशक्यत्वाच्च। नच मकारस्य स्थानिवत्त्वेन तत्र सम्बुद्धित्वं सुलभमिति वाच्यम्। तस्यादेशत्वाभावात्। न च सिद्धान्ते, सम्बुद्धित्वस्य सकारमात्रनिष्ठत्वेन स्थानिभूताल्धर्मत्वादनल्विधाविति निषेधप्रवृत्त्या स्थानिवत्त्वाभावेनाऽमः सम्बुद्धित्वाभावेन कथम्मकारे सम्बुद्ध्यवयवत्वमिति वाच्यम्। सुप्सञ्ज्ञायाः सुशब्दवृत्तित्वादेकवचनसञ्ज्ञायास्तदुपस्थाप्ये जायमानत्वेन विशिष्टे सत्वात्सम्बुद्धिसञ्ज्ञायामित्सञ्ज्ञोकारविशिष्टस्यैवोद्देश्यत्वेन तस्याऽल्विधित्वाभावात्स्थानिवत्त्वेनाऽमि सम्बुद्धित्वलाभेन मकारे तदवयवत्वस्याक्षतत्वादिति प्राचः। नव्यास्तु—सम्बुद्धिः प्रत्यय, इति (२)'प्रत्ययग्रहण' परिभाषया तदादिपदोपस्थितिः स चेह योग्यतया पञ्चम्यन्तस्तं विशेष्यभूतमादाय तत्र विशेषणीभूताभ्यामेङ्ह्रस्वाभ्यां 'येन विधिरि'त्यनेन तदन्तविधौ एङन्ततदादेर्ह्रस्वान्त-

---

(१) एकदेशविकृतमिति। प्राग्दीव्यत इति सूत्रभाष्योक्तिरेवास्या ज्ञापिका। तत्र हि दीव्यतिशब्दैकदेशदीव्यच्छब्दानुकरणमिदमित्यभिधाय किमर्थं विकृतनिर्देश एतदेव ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा एकदेशविकृतमनन्यवदित्युक्तमिति। लोकन्यायसिद्धोऽयं न्यायः—यथा छिन्नपुच्छे शुनि श्वत्वव्यवहारस्तथा विकृतावयवेष्वविकृतत्वव्यवहारः। एकदेशविकृतं यत्तद् अन्यवन्न भवतीत्यर्थः।

(२) प्रत्ययग्रहणेति। प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणमिति परिभाषास्वरूपम्।

तदादेशं परस्य सम्बुद्धेरवयवस्य हलो लोप इत्यर्थे न कुत्राप्यव्याप्त्यतिव्याप्तिदोष इति वदन्ति । कल्पयन्ति च प्राचीनाभिमतमङ्गाक्षेपं, तथाहि, 'पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते' इत्यादौ दिवाभोजनाभावादनुपपन्नस्य पीनत्वस्योपपत्तये यथा रात्रिभोजनाक्षेप उपयोगी न तथा प्रकृतेऽङ्गाक्षेपः सम्बुद्धेरिति फलाभावान्न(१)तया तस्याक्षेपः समुचितः। किञ्च सम्बुद्ध्युत्पत्तावङ्गस्यापेक्षितत्वेऽपि तज्ज्ञाने तदनपेक्षितत्वेन शास्त्रे तदाक्षेपे मानाभावः । अङ्गाक्षेपाभावादेव 'अङ्गस्ये'ति सूत्रेऽङ्गस्थाने प्रत्यय इत्यधिकारः कार्य इति पक्षे प्राकरोदित्यादावुपसर्गात्पूर्वमडादिः स्यादिति शङ्कायां 'प्रत्ययग्रहणपरिभाषया' समाहितं भाष्यकृता नरदङ्गाक्षेपेणेति दिक् ।

ननु गुण-सम्बुद्धिलोपयोः प्राप्तयोः परनिमित्तापेक्षाद्गुणात्प्रागन्तरङ्गत्वेन सम्बुद्धिलोपे ततः प्रत्ययलक्षणेन सम्बुद्धिपरत्वाद्गुणे रूपसिद्धिः । सेप्रभृतीनामनभिधानान्न दोषः, सत्यभिधाने एग्रहणेनैव सिद्धौ प्रत्याहाराश्रयणं व्यर्थमित्यभिप्रायेण शङ्कते—**एङ्ग्रहणं किमिति** । समाधत्ते—**हे हरे, हे विष्णो इति** । इत्थमाशयः, अत्र हि, परत्वान्नित्यत्वाच्चेत्यत्र चकारेणानवकाशत्वसङ्ग्रहः तथा च अनवकाशत्वात्पूर्वं गुणे कृते सम्बुद्धिलोपो न स्यादत एङ्ग्रहणम् । नचैङ्ग्रहणसत्त्वे(२)'सन्निपात'परिभाषया कथं लोप इति वाच्यम् । गुणात्सम्बुद्धेरिति वक्तव्ये एङ्ह्रस्वग्रहणसामर्थ्यादुक्तपरिभाषाया अप्रवृत्तिकल्पनात् । अत एव हे लक्ष्मि इत्यादौ सम्बुद्धिलोपः । मूलोक्तं परत्वादिति समाधानमभ्युच्चयः ततोऽपि बलवतो नित्यत्वादिति समाधानस्य सत्त्वात् । इदमपि समाधानमयुक्तम् अन्तरङ्गत्वेन कृतायाश्शङ्काया नित्यत्वेन समाधानस्यासङ्गतेस्ततोऽप्यन्तरङ्गस्यैव (३)बलीयस्त्वादित्यलम् ।

ननु (४)पर्याणद्धमित्यत्रोपसर्गादसमासेऽपीति णत्वे सिद्धे सूत्रे आङ्ग्रहणं व्यर्थमित्यत आह—**पदव्यवायेऽपीति** । **नुम्ग्रहणमनुस्वारोपलक्षणार्थमिति** । तेन तृंहणं बृंहणमित्यादौ णत्वसिद्धिः । प्रेन्वनमित्यादौ न णत्वम् । अनुस्वाराव्यवायात्तदप्राप्तेः नुम्ग्रहणस्यानुस्वारोपलक्षकत्वे हि तद्व्यवधाने एव णत्वं यथा स्यान्नतु तदव्यवधान इति भावः । **अयोगवाहानामिति** । अविद्यमानो वर्णसमाम्नाये योगो येषान्तेऽयोगाः । वाहयन्ति प्रयोगं निर्वाहयन्ति ये ते वाहाः अयोगाश्च ते वाहाः अयोगवाहाः

---

(१) तयेति । सम्बुद्ध्येत्यर्थः ।

(२) सन्निपातेति । सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति परिभाषास्वरूपम् ।

(३) बलीयस्त्वादिति । तदुक्तं पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरं बलीय इति ।

(४) पर्याणद्धमिति । परिआङ् पूर्वात् णह धातोः । क्तप्रत्यये रूपम् ।

अनुपदिष्टत्वे उपदिष्टैरगृहीतत्वे च सति श्रूयमाणा इत्यर्थः, ते चानुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीययमास्तेषामटूसूपदेशादुरःकेणेत्यादौ विसर्गव्यवधाने णत्वसिद्धिः ।

**भवामि–भविष्यामीति**। भूधातोर्लटि लृटि च रूपम् । तदादिग्रहणाभावेऽत्रातो दीर्घो यञीति दीर्घो न स्यात् । भवतेः शब्मिपोर्विधानेन तस्मिन् भू इत्यस्यैवाङ्गत्वात्तस्य चादन्तत्वाभावात्सूत्राप्राप्तेः। न च सूत्रारम्भसामर्थ्यात्तत्र दीर्घ इति वाच्यम्। चिकीर्षामीत्यादौ तस्य सावकाशत्वादिति तत्र दीर्घाय तदादिग्रहणमावश्यकम्, एवं करोमीत्यादौ गुणार्थमपि तदादिग्रहणमिति भावः ।

**विधिरिति किम् । (१)स्त्री इयतीति ।** अयम्भावः, इदम्शब्दाद्वतुपि तस्य घत्वे 'आयनेयी'त्यनेन तस्येयादेशे इयदिति 'इदंकिमो रीश्की'ति इदम ईशादेशे तस्य यस्येति लोपे उगित्वान्ङीपि इयतीति सिद्धम्' तस्य स्त्रीशब्दसमभिव्याहारे स्त्री इयतीत्यवस्थायां विधिग्रहणाभावे यस्मात्प्रत्ययः परस्तस्मिन्तदङ्गसंज्ञमित्यर्थे इयत्प्रत्ययस्य स्त्रीशब्दात्परत्वेन तस्मिन् स्त्रीशब्दस्याङ्गसंज्ञायां स्त्रिया इत्यनेनेयङापत्तिः, कृते विधिग्रहणे इयत् प्रत्यये परे स्त्रीशब्दस्य नाङ्गत्वं स्त्रीशब्दादियतोऽविधानात् अतो विधिग्रहणं कर्तव्यम् । नच कृतेऽपि विधिग्रहणे स्त्रीरूपस्याऽङ्गस्येयङ् स्यादजादौ प्रत्यय इत्यर्थे स्त्रीशब्दस्य सुनिरूपिताऽङ्गत्वविशिष्टत्वादुक्तापत्तेस्तादवस्थ्यमेवेति वाच्यम् । प्रत्यासत्याऽजादिप्रत्ययनिरूपिताऽङ्गत्वविशिष्टस्य स्त्रीशब्दस्येयङित्यर्थेनोक्तापत्तेरयोगात् । न च यस्येति लोपस्याभीयत्वेनासिद्धत्वान्न तत्रेयङापत्तिरूपदोष इति वाच्यम् । 'यस्येति चे'ति लोपापेक्षया 'स्त्रिया' इत्यस्याधिकस्य स्त्रीशब्दस्यापेक्षत्वात्समानाश्रयत्वाभावेनासिद्धत्वाप्राप्तेः । समानाश्रयत्वञ्च असिद्धत्वाश्रयशास्त्रसम्बन्धिनिमित्तसमुदायान्यूनानतिरिक्ताश्रयकत्वम् । नच 'वाम् शसो'रित्युत्तरसूत्रसाहचर्यात्स्त्रिया इति सूत्रस्यापि अजादिसुप्येव प्रवृत्त्यां न दोष इति वाच्यम् । सूत्राऽन्तरसाहचर्यस्य भाष्ये काप्यदृष्टत्वेन दोषस्य तादवस्थ्यात् । (२) किञ्च भनक्तीत्यादौ 'अतो दीर्घो यञी'ति दीर्घापत्तिर्दुर्वारा श्नमि परे भशब्दस्याङ्गसंज्ञत्वात् । न च तत्र 'भूसुवोस्तिङी'त्यतस्तिङीऽनुवृत्त्याऽदन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यात्तिङि सार्वधातुक इत्यर्थे श्नमः सार्वधातुकत्वेऽपि तिङ्त्वाभावाद्दीर्घाऽप्राप्त्या न कश्चिद्दोष इति वाच्यम् । (३) तथा सति 'ज्ञाजनोर्जे'ति सूत्र-

---

(१) स्त्रीति । स्त्यायतेर्ड्रटि डित्वाट्टिलोपे टित्वान्ङीपि च रूपम् ।

(२) किञ्चेति । सूत्रान्तरसाहचर्यग्रहणस्य भाष्याद्दृष्टत्वेऽपि यथाकथञ्चित्तदभ्युपगमे दोषाभावाद्विधिग्रहणमकिञ्चित्करमित्यभिप्रेत्य दोषान्तरमाह—किञ्चेति ।

(३) तथा सतीति । उक्तदीर्घविधायके तिङः सम्बन्धे सतीत्यर्थः ।

स्य भाष्यविरोधस्य दुर्वारत्वात्। तत्र हि जविधानेऽपि अतो दीर्घो यञीति दीर्घेण जानातीत्यादेशपरतो दीर्घविधानं व्यर्थं सज्ज्ञापयति (१) 'अङ्गवृतौ पुनर्वृत्तावविधिरिती'-त्युक्तम्। तत्र तिङोऽनुवृत्तौ स्पष्ट एव भाष्यविरोधः। किञ्च भनक्तीत्यादौ दोषव्यावृत्तावपि, अभवनभवनमित्यत्र दोषो दुर्वार एव अकचि परेऽङ्गसंज्ञायाम् 'अल्लोपोऽन' इति लोपप्रवृत्तेः। नचाल्लोपोऽनो नाके इति न्यासकरणेन दोषाभावाद्विधिग्रहणं विफलमेवेति वाच्यम्। वारि औ इत्यत्रेकोऽचीति नुम्वारणार्थत्वेन तस्य साफल्यात्। तथा हि, अशब्दस्य औ विभक्तौ वृद्धिरेचीति वृद्धौ, औ इति रूपम् तस्य वारिशब्दसमभिव्याहारे वारि औ इत्यत्र परादिवद्भावेन तत्र सुप्त्वात् प्रत्ययत्वाच्च तस्मिन्वारीत्यस्याऽङ्गसंज्ञायां नुमः प्राप्तिरिति। नचेकोऽचीत्यत्र सुपः सम्बन्धेनैव सिद्धौ विभक्तिग्रहणस्याऽनतिदिष्टविभक्तिग्रहणार्थत्वेन प्रकृतेऽतथात्वान्नदोष इति वाच्यम्। सर्वत्रानेकानेककल्पनापेक्षया विधिग्रहणकरणस्यैव लघीयस्त्वादिति दिक्॥

**प्रत्यये किम्। प्रत्ययविशिष्टस्य ततोऽप्यधिकस्य वा मा भूदिति।** अयम्भावः, प्रत्ययग्रहणाभावे तद्विशिष्टस्याऽङ्गत्वेन रामाभ्यामित्यादौ दीर्घानापत्तिस्तस्याङ्गत्वेऽप्यदन्तत्वाभावेन यञादिसुब्निमित्तपरकत्वाभावेन च सूत्राऽप्राप्तेः। नचाङ्गावयवस्यातो दीर्घ इत्यर्थे सूत्रप्राप्त्या दीर्घसौलभ्येन न कश्चिदुक्तस्थलीयो दोष इति वाच्यम्। राज्ञः पुरुषो राजपुरुष इत्यादौ 'न लुमते'ति निषेधेन पूर्वपदे प्रत्ययलक्षणेनाऽन्तर्वर्तिविभक्त्याऽपदत्वात् 'न लोप'सूत्रेण पदान्तलकारस्यैव लोपविधानेन नलोपाऽनुपपत्तेः, अतः प्रत्ययग्रहणमावश्यकं सति च तस्मिन् न तत्रोक्तदोषः, अङ्गाक्षिप्तप्रत्यये परतः कार्ये कर्त्तव्य एवोक्तनिषेधप्रवृत्ताविह विशिष्टे पदत्वस्य कर्त्तव्यत्वेनाऽतथात्वान्निषेधाप्रवृत्त्योक्तरीत्या पदत्वस्य सुलभत्वात्। नच (२)'न लुमता तस्मिन्नि'ति

---

(१) अङ्गवृत्ताविति। अङ्गे अङ्गाधिकारे वृत्तं निष्पन्नं यत्कार्यं तस्मिन्सति पुनरन्यस्याऽऽङ्गकार्यस्य वृत्तौ प्रवृत्तावविधानं भवति इति तदर्थः। एषा च परिभाषा जादेशे दीर्घविधानेन ज्ञापिता, तत्प्रकारश्च मूल एव स्पष्टीकृतः। ज्यादादीयस इत्याद्विधानेनापि ज्ञापिता तत्प्रकारश्चेत्थम्। ज्याददीयस इत्येवास्तु सूत्रम् ईयस ईकारलोपेनाकृत्सावर्णे इति दीर्घेण च सिद्ध व्यर्थमाद्विधानं परिभाषाज्ञापकम्। ज्यायःशब्दाण्ण्यन्तात्क्विपि णिलोप–यलोपयोः, पुनस्तस्माण्णिजन्तात्क्विपि पुकि निष्पन्नात् ज्यापशब्दादीयसुनि ज्यापायानिति सिद्धयर्थमाद्विधानस्य चारितार्थ्यमिति नाभिधेयम्। ज्ञापकपरभाष्यप्रामाण्यादेतदनभिधानात्। णिलोपस्य स्थानिवत्त्वादातोऽप्राप्तेश्चेति बोध्यम्। (२) न लुमता तस्मिन्निति। लुमता शब्देन लुप्ते तस्मिन् (प्रत्यये) परतो यत्पूर्वस्य कार्यं तन्नेति तदर्थः।

न्यासकरणेनैव दोषवारणसम्भवे तदर्थं प्रत्ययग्रहणकरणमिष्फलमेवेति वाच्यम् । 'उरदि'त्येतद्विहिताऽत्वस्य प्रत्ययनिमित्तकत्वाभावेन 'अचः परस्मिन्नि'त्यस्याऽप्रवृत्याऽकारे सम्प्रसारणत्वालाभेन 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणमि'ति निषेधाप्रवृत्तौ वव्रश्चेत्यत्र वकारस्य सम्प्रसारणापत्तेः । कृते प्रत्ययग्रहणे तु उरदत्वस्याऽङ्गाक्षिप्तप्रत्ययनिमित्तकत्वेन स्थानिवत्त्वेनाऽकारे सम्प्रसारणत्वान्न सम्प्रसारण इति निषेधप्रवृत्तेर्न दोषः । नच सम्प्रसारणपदस्य तत्स्थानिके लाक्षणिकत्वान्न दोष इति वाच्यम् । देवदत्त ओदनमभक्षीदित्यादौ देवदत्तादिशब्दोत्तरसुपं निमित्तीकृत्य लुङ्पर्यन्तस्याङ्गत्वात्तस्य लुङ्परत्वेन देवात्पूर्वमप्यडापत्तेः, अङ्गसंज्ञायाः प्रत्ययनिमित्तकत्वाभावेन लुङादिनिरूपिताङ्गस्येत्यर्थस्य दुर्लभत्वादिति प्रत्ययग्रहणमावश्यकमेवेति दिक् ॥

**सन्निपातेति ।** 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' इति परिभाषास्वरूपम् । सन्निपातः संश्लेषः लक्षणं निमित्तं यस्य स सन्निपातलक्षणो विधिः सन्निपातं यो विहन्ति स तद्विघातस्तस्यानिमित्तम्भवतीत्यर्थः । सन्निपातं निमित्तीकृत्य जायमानो विधिः स्वातिरिक्तसम्बन्धविघातके शास्त्रे निमित्तं नेति फलितम् । उपजीव्यविरोधो न न्याय्य इत्येतन्मूलिकेयं परिभाषा । यथा पितुरुत्पन्नः पुत्रः पितरं न हन्ति, तद्वदुपजीवकविधिः स्वोपजीव्यविधेर्विघातको न भवति, एवञ्च प्रकृते रामायेत्यत्राऽकारान्तसन्निपातेन जायमानो यादेशो दीर्घे निमित्तीभूयाऽकारान्तसन्निपातविघातको न स्यात्परिभाषाविरोधादित्थं दीर्घाभावमाशङ्क्य तदनित्यत्वेन समाधत्ते—कष्टायेति । न च रामायेत्यत्र यञादित्वसापेक्षदीर्घादेशस्य वहिरङ्गत्वादसिद्धत्वेन सन्निपातविघाताभावादुक्तपरिभाषाऽप्रवृत्तावनित्यत्वाभ्युपगमो विफल इति वाच्यम् । परिभाषया (१)दीर्घस्यासिद्धत्वबोधनेन सन्निपातविघाताभावेऽपि वास्तविकतद्विघातस्य जायमानतया सन्निपातपरिभाषाप्रवृत्तेर्दुर्वारत्वात् । किञ्च वहिरङ्गपरिभाषयाऽन्तरङ्गे कर्तव्ये वहिरङ्गासिद्धत्वस्यैव बोधनं क्रियते न तु वहिरङ्गशास्त्रे प्रवृत्ते तदसिद्धत्वप्रतिपादनमपीति सन्निपातविघातस्य परिभाषया दीर्घस्याऽसिद्धत्वप्रतिपादनद्वारा दूरीकर्तुमशक्यतया विघातस्य स्पष्टत्वेन सन्निपातपरिभाषाप्रवृत्तेरनित्यत्वं विना वारणोपायस्यादृष्टत्वात् । नचाऽनित्यताप्रयोजकनिर्देशस्य 'अकृत्सार्वधातुकयोरि'ति दीर्घेणैवोपपत्तौ तत्र ज्ञापकत्वं तस्य कथमिति वाच्यम् । तस्यापि सन्निपातपरिभाषयाऽप्रवृत्तेः । अनित्यत्वे तु सर्वं सूप-

---

(१) परिभाषयेति । अन्तरङ्गपरिभाषयेत्यर्थः ।

ष्वामिति भावः । (१)किञ्चोक्तदीर्घविधायकशास्त्रस्याऽकृदिति पर्युदासेनासुप्येव प्रवृत्तिरिति दिक् ।

बहुवचने किमिति । इत्थमेतदभिप्रायः, 'बहुवचने झल्येदि'त्यत्र बहुवचनग्रहणाभावे राम इत्यादौ नेत्वापत्तिदोषः । 'प्रत्ययः–परश्चे'त्यादिनिर्देशेन 'इदुदेद् सम्बुद्धेरे'तावतैव सूत्रेण सिद्धे ह्रस्वग्रहणेन च सावेत्वन्न भवतीति कल्पनात् । न च तदभावे रामस्येत्यत्रोक्तदोषो दुर्वार एवेति वाच्यम् । 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इत्यनेन ङसः स्थानेऽस्यं विधाय पररूपे कृते रूपसिद्धावदोषात् । नचोक्तसूत्रेण ङसोऽस्यविधाने इदम्शब्दान्ङसि निष्पन्नस्य अस्येति रूपस्य सिद्धिर्नस्याद्धलादित्वाभावेन हलिलोपाप्रवृत्तेरिति वाच्यम् । 'आपि लोप'इति न्यासेन 'टौसोरनक' इति न्यासेन च विषयविभागाद्धलोपोपपत्तौ रूपसिद्धेः । न च रामाभ्यामित्यत्रैत्वं दुर्वारमिति वाच्यम् । सुपि चेत्यस्यारम्भसामर्थ्यादेवोक्तदोषस्य निवृत्तेः । नचोक्तसूत्रस्य रामायेत्यत्र दीर्घविधानेन साफल्यात्सामर्थ्यादित्युक्तिरतीवासङ्गतेति वाच्यम् । 'ङेरय' इति सूत्रकरणादकारोच्चारणसामर्थ्येन पररूपस्य बाधाद्दीर्घेणैवोक्तप्रयोगस्योपपत्तौ सूत्रवैयर्थ्यस्य स्पष्टतया सामर्थ्यादित्युक्तेः सुसङ्गतेः । एवञ्च बहुवचनग्रहणाभावे कुत्राप्यदोषान्नादरणीयन्तदिति प्रघट्टकार्थः । रामेष्वित्यादावेत्वविधानस्य चरितार्थतया रामाभ्यामित्यादाविव रामेभ्य इत्यादावप्येत्वं बाधित्वा दीर्घापत्तिरतस्तत्करणमावश्यकं कृते च तस्मिन् सामर्थ्यादेत्वमेव न दीर्घ इति न कापि शङ्काकलङ्ककणिकेति सङ्क्षेपः ।

ननु 'बहुवचने झल्येदि'त्यत्र झल्ग्रहणाकरणे 'उतो वृद्धिर्लुकि हली'त्यतो हलीत्यस्यानुवृत्त्या बहुवचने हलादावेव तेनैत्वविधानात्प्रथमाबहुवचने रामा इत्यादौ दोषाभावेन झल्ग्रहणमनावश्यकमेवेति शङ्कोत्थितौ समाधत्ते–झलि किम् । रामाणामिति । अयम्भावः, झल्ग्रहणाभावे हलादौ बहुवचने सुप्येत्वमित्यर्थे रामाणामित्यत्रैत्वापत्तिरतस्तदावश्यकम् । न च सन्निपातपरिभाषाविरोधान्न तत्रोक्तापत्तिरिति वाच्यम् । झल्ग्रहणसामर्थ्यादेत्वविषये सन्निपातपरिभाषाऽप्रवृत्तिकल्पनेन तत्र तदापत्तेस्तादवस्थ्यात् । अतस्तन्निवृत्त्यर्थं झल्ग्रहणं कर्त्तव्यमेव, कृते च तस्मिन्न दोषो नकारस्य झल्त्वाभावात् । एत्वे सन्निपातपरिभाषाऽप्रवृत्तेरेव, 'अदः सर्वेषामि'त्यादि निर्देशसङ्गतिरित्यलम् ।

---

(१) किञ्चेति । ननु चीयाज्जीयादित्यादावपि सन्निपातपरिभाषाविरोधाद्दीर्घाप्राप्त्या सूत्रवैयर्थ्येन सामर्थ्यात्परिभाषाबाधेनाकृदिति दीर्घेणैव निर्देशोपपत्तावनित्यत्वे नासौ ज्ञापक इत्यरुचेराह–किञ्चेति ।

ननु सार्धमात्रालाघवाय 'बहुवचने झल्येत्' इत्येवास्तु सूत्रमिति चेन्न । तथा सति 'ओसि चे'त्यत्रेकोऽनुवृत्त्या ओसि परे आकारस्येगागमः स्यादित्यर्थे ज्ञानयोरित्यादा 'इकोऽचि विभक्ता'विति नुमापत्तेः । नचान्तरङ्गत्वात् 'आद्गुण' इत्यनेन गुणे जाते इगन्तत्वाभावादेव नुमोऽप्राप्तिरिति वाच्यम् । (१) वार्णादाङ्गं बलीयः' इति न्यायेन प्राङ् नुम एव प्रवृत्तेः । न च समाननिमित्तकत्वरूपसमानाश्रयत्वे एवोक्तन्यायप्रवृत्त्यङ्गीकारात्प्रकृते नुम्गुणविधायकयोरसमाननिमित्तकत्वेनोक्तन्यायस्याविषयत्वेनाऽप्रवृत्त्याऽन्तरङ्गत्वाद्गुणे नुमोऽप्राप्त्या न दोष इति वाच्यम् । आङ्ग–वार्णयोः समानकार्यित्वे एव तत्प्रवृत्तेः सिद्धान्तितत्वादिहोभयोस्समानकार्यित्वान्न्यायप्रवृत्त्या दोषस्य तादवस्थ्यात् । प्राक् प्रदर्शितो न्यायप्रवृत्तिविषयो नैव समीचीनः, तथा सति दीर्घवृद्ध्योरसमाननिमित्तकत्वेन न्यायाऽप्रवृत्त्या इयाय, इयेषेत्यादेरसिद्ध्यापत्तेः । सिद्धान्ते तु द्वित्वे कृतेऽन्तरङ्गसवर्णदीर्घस्य न्यायेनैव बाधाद्वृद्धौ रूपं सिद्ध्यतीति भावः । 'बहुवचने झलीट्' इति न्यासे तु बहुवचने झलीति सप्तम्या अचरितार्थत्वाज्झलादौ बहुवचने सुपि अत इडित्यर्थे 'आद्यन्तौ टकिता'वित्यनेन टित्कार्यस्याऽऽद्यवयवत्वविधानादकारात्प्रागिटि रामेभ्यो रामेष्वित्याद्यसिद्ध्यापत्तेः । न च 'यतदेतेभ्य' इत्यादिनिर्देशात्सप्तमीनिर्दिष्टपदानां षष्ठ्यन्तत्वकल्पनमत इति षष्ठ्यन्तस्य च पञ्चम्यन्तत्वं सप्तमीनिर्देशश्च (२) 'यस्मिन्वि-

---

(१) वार्णादाङ्गमिति । वर्णनिमित्तककार्याद निमित्तककार्यं बलवद्भवतीत्यर्थः । तथा च वर्णत्वव्याप्यधर्मावच्छिन्नोद्देश्यककार्यादङ्गत्वावच्छिन्नोद्देश्यकं कार्यं बलवदिति फलितम् ।

अत्र ज्ञापकं तु अभ्यासस्याऽसवर्णेऽत्रस्याऽसवर्णग्रहणमेव, तथाहि परिभाषाऽसत्त्वे ईयतुरित्यादावन्तरङ्गेन सवर्णदीर्घेणेयङो बाधादुक्तरूपसिद्धौ व्यर्थमसवर्णग्रहणं परिभाषां ज्ञापयति । अपवादत्वाप्राप्तेयङ्व्यावृत्त्यर्थमसवर्णग्रहणस्य चरितार्थत्वे ज्ञापकत्वं न सम्भवतीति नाऽऽशङ्क्यम् । तस्य येन नाप्राप्तिन्यायेनेयर्तीत्यादिसकललक्ष्यप्राप्तयणपवादत्वस्यैव निर्णयात् । इति प्राञ्चः ।

नव्यमते तु अभ्यासस्याऽसवर्णे इति सम्पूर्णसूत्रमेवास्यां ज्ञापकम् इयाय, इयेषेत्यादावियङ्विधानार्थं सूत्रस्यावश्यकत्वे ज्ञापकत्वमसम्भवीति नाशङ्क्यम् । तत्र सूत्रसत्वेऽपि पूर्वप्रवृत्तगुणवृद्ध्योर्द्विर्वचनेऽचीति रूपातिदेशेनापहाराद्द्वित्वे कृते पुनः प्राप्तगुणवृद्ध्योर्बाधनं विधायाऽन्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घापत्तेः । इति व्यर्थीभूतं सूत्रं परिभाषां ज्ञापयति ज्ञापितायां तु तस्यां सवर्णदीर्घापेक्षया गुणवृद्ध्योरेव प्राबल्यात्सूत्रं सार्थकमिति भावः ।

(२) यस्मिन्निति । यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे इति परिभाषास्वरूपम् । यस्मि-

धिरि'ति परिभाषाप्रवृत्तिसम्पादकत्वाच्चरितार्थस्तथा च झलादेर्बहुवचनस्य सुप इडागम इत्यर्थे न दोषस्तेनेति वाच्यम् । तथा सति एभ्य इत्यादौ हलिलोपानापत्तेः । गङ्गे इत्यादौ सम्बुद्धिलोपानापत्तेश्च । 'सम्बुद्धौ चे'त्यत्रेटोऽनुवृत्त्या तेन तद्विधानात्तस्य गुणे तस्य च पञ्चमीसमासेन स्थानिवद्भावात् 'एङ्ह्रस्वादि'त्यस्याप्राप्तेर्व्यवधानात् 'हल्ङ्याबि-त्यस्याप्राप्तेश्चेत्यलं पल्लवितेन ॥

सुपि किम् । पचध्वमिति । अयम्भावः, सुपिग्रहणाभावे पचध्वमित्यत्र झला-दिबहुवचने ध्वमि परे एत्वापत्तिः । नच 'बहुवचने झल्येदि'ति न्यासे न तत्र दोष इति वाच्यम् । तथा सति(१) सुञ्जसीरन्नित्यत्र सकारादिबहुवचने तदापत्तेः । न च भादिसा-हचर्येण सकारादिबहुवचनस्यापि सुप्प्रत्ययस्यैव ग्रहणादुक्तप्रयोगे दोषाभावाद्व्यर्थमेव तद्ग्रहणमिति वाच्यम् । पट्वी, मृद्वीत्यादौ गुणाऽभावाय 'घेर्ङिती'त्यत्रानुवृत्त्यर्थत्वेन तस्य साफल्यात् । नच ङीपः स्थाने ङीष् इति न्यासेन नोक्तस्थले कश्चिद्दोष इति वाच्य-म् । सर्वत्रानेकाऽनेककल्पनापेक्षया सुपिग्रहणकरण एव लाघवादिति दिक् ॥

जश्त्वमिति । अयम्भावः (२) 'येन नाप्राप्ति' न्यायेन अवसाने विधीयमानस्य चर्त्वस्य पदान्तजश्त्वापवादत्वात्प्रागेव चर्त्वं ततो जश्त्वमिति । जश्त्वोत्तरं चर्त्वोपन्या-सस्तु न युक्त उक्तयुक्तेः । अत एव जश्त्वमिति प्रतीकमुपादाय बाधित्वेति शेष इत्युक्तं नागेशेन न तु जश्त्वोत्तरं चर्त्वमुक्तमिति सङ्क्षेपः ॥

ननु रामस्येत्यत्र 'अनचि चे'त्यनेन सकारस्य द्वित्वे तस्य 'खरि चे'ति चर्त्वे तका-रश्रवणापत्तिस्स्यादित्याशङ्कां निराकरोति—सस्य द्वित्वपक्षे खरि चेति चर्त्वेऽ-प्यान्तरतम्यात्सस्य स एव न तु तकारोऽल्पप्राणतया प्रयत्नभेदादिति । सकारस्योक्तसूत्रेण चर्त्वेऽपि 'स्थानेऽन्तरतम' इत्यत्रत्यतमब्ग्रहणात्स्थानप्रयत्नाभ्याम-न्तरतमेनैवादेशेन भाव्यमिति बोधनाद्दन्तस्थानजन्यत्वसमानाधिकरणविवृतत्वरूपाऽऽभ्य-

---

न्तरग्रहणे विशेषणीभूते यो विधिरारभ्यते स तदलादौ बोध्यः । अल्मात्रवृत्तिविषयता-प्रयोजके सप्तम्यन्ते विशेषणताप्रयोजके पदे यो विधिः स तदलादौ बोद्धव्य इति यावत् । इयं परिभाषा वाचनिक्येव न तु ज्ञापकसाध्या भाष्ये वचनरूपेणैवैषा पठिता नत्वत्र ज्ञापकमुपन्यस्तमिति भावः । ज्ञापकजिज्ञासा चेदुच्यते अत्र न ल्यपीति सूत्रं ज्ञापक-म् । तथाहि परिभाषाऽसत्त्वे प्रदायेत्यादौ तदन्तविधौ हलन्तकित्प्रत्ययपरत्वाभावादेवे-त्वाप्राप्त्या तद्बाधाघूस्त्यर्थमुक्तसूत्रं व्यर्थं सत्परिभाषाज्ञापकम् ।

(१) सुञ्जसीरन्निति । सम्पूर्वकाद्गमधातोः 'समो गम्यृच्छिभ्यामि'त्यात्मने पदे आ-शीर्लिङि बहुवचने रूपम् । (२) येन नाप्राप्तीति । येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्य-ते स तस्य बाधको भवतीति न्यायस्वरूपम् ।

न्तरप्रयत्नवत्त्वसमानाधिकरण—महाप्राणरूपबाह्यप्रयत्नवतः सकारस्य स्थाने तादृशः सकार एवाऽऽदेशो जातो ननु तकारस्तस्य सकारेण समानस्थानिकत्वेऽपि स्पृष्टरूपाऽऽभ्यन्तरप्रयत्नवत्तया अल्पप्राणरूपबाह्यप्रयत्नवत्तया च तेन भेदादिति भावः। स्थानप्रयत्नाभ्यामाऽऽन्तरतम्यस्याऽऽश्रयणे प्रमाणमाह—अत एव सः सीति तादेश आरभ्यत इति। उभाभ्यामाऽऽन्तरतम्यस्याऽनाश्रयणे खरिचेति चर्त्वेनैव (१)वत्स्यतीत्यादिसिद्धौ 'सःस्यार्द्धधातुके' इत्यस्य वैयर्थ्यं स्यादिति तद्भावः। नचोक्तसूत्रसत्त्वे वत्स्यतीत्यादौ 'चयो द्वितीये'ति वार्त्तिकेन द्वितीयादेशे पक्षे थकारघटितं रूपं सिद्ध्यति तन्नेदानीं स्यात् खरिचेति चर्त्वस्योक्तवार्त्तिकदृष्ट्याऽसिद्धत्वेनाऽऽदेशाप्राप्तेरिति तदर्थमुक्तसूत्रस्यावश्यकत्वेन ज्ञापकत्वं कथमिति वाच्यम्। 'न मुने' इत्यत्र नेति योगविभागेन क्वचिदसिद्धत्वन्नेति कल्पनात्खरिचेति चर्त्वेऽपि थकारघटितरूपसिद्धौ बाधकाभावात्सूत्रवैयर्थ्यस्य स्पष्टतयोक्तार्थे ज्ञापकत्वसम्भवादित्यलम्।

ननु रामशब्दादामि तस्य नुडागमे राम नामिति स्थितौ 'नामीति' सूत्रापेक्षया 'सुपिचे'त्यस्य परत्वेन दीर्घेऽपि नामाऽव्यवहितपूर्वत्वविशिष्टाऽजन्तत्वरूपोद्देश्यत्वसत्त्वात् (२) 'पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः' इतिन्यायेन नामीत्यस्य प्रवृत्तिसम्भवेन कृताकृतप्रसङ्गित्वरूपनित्यत्वस्य सद्भावादनेनैव दीर्घो न तु तेन परत्वापेक्षया नित्यत्वस्य बलवत्त्वात्, एवञ्च मूलोक्तशङ्कासमाधानप्रयासो विफल इति चेन्न। (३)'शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यः' इति न्यायेन नामीत्यस्य नित्यत्वविघातात्। न च 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' इत्यनेन न तस्य नित्यत्वहानिरिति वाच्यम्। तस्य न्यायस्य 'शब्दान्तरस्ये'तिन्यायविषये प्रवृत्तेरनङ्गीकारात्। अन्यथाऽस्य न्यायस्य सर्वथा वैयर्थ्यापत्तेरिति भावः। नच नामशब्दमुच्चार्य दीर्घविधानात्प्रतिपदोक्तत्वेन नामीत्यस्यैव प्राक् प्रवृत्तिरिति वाच्यम्। प्रतिपदोक्तस्यापि निरवकाशत्वे सत्येव बलवत्त्वादस्याऽतथात्वेन प्राक् प्रवृत्तेरसम्भवात्। न च नामीत्यस्याऽन्तरङ्गत्वात्तथा प्रवृत्तिरस्त्विति वाच्यम्। उभयोर्नाम्त्व—सुप्त्वनिमित्तकत्वेनाऽन्तरङ्गत्व—बहिरङ्गत्वेषु कस्याप्यलाभेन परत्वात्सुपिचे

---

(१) वत्स्यतीति। वस् धातोर्लृटि रूपम्।

(२) पर्जन्यवदिति। पर्जन्यो यथा जले स्थले च वर्षति तथा लक्षणमपि प्रवृत्तशास्त्रेऽप्रवृत्तशास्त्रे च प्रयोगे प्रवर्तत इति तदर्थः।

(३) शब्दान्तरस्येति। एषा च परिभाषा 'शदेः शित' इति सूत्रभाष्ये स्पष्टा वचनरूपेण पठितेत्यर्थः। तत्र हि न्यविशतेत्यत्र विकरणे कृते विकरणान्तस्याऽट् अकृते विकरणे धातुमात्रस्याऽट् इत्यडनित्य इत्युक्तम्।

र्षेन दीर्घसिद्धौ 'नामी'ति सूत्रोपन्यासो न युक्त इत्याशङ्क्य समाधत्ते—सुपि चेति दीर्घो यद्यपि प्राप्तस्तथापीत्यादि । अस्यायम्भावः, सन्निपातपरिभाषाविरोधात्सुपि चेति सूत्रस्य नैव प्रवृत्तिः । नामीत्यस्य प्रवृत्तौ तु नोक्तपरिभाषाविरोधः, आरम्भसामर्थ्यात् । सुपि चेत्यस्य तु न सामर्थ्यम्, रामाभ्यामित्यादौ तस्य सावकाशत्वात्, नामीत्यस्य तु कुत्राऽप्यवकाशाभावादारम्भसामर्थ्यात्परिभाषाबाध इति । न च कतीनामित्यत्र 'ह्रस्वनद्यापो नुडि'त्यतः परत्वात् 'षट्चतुर्भ्यश्चे'ति नुटि दीर्घेऽपि षट्त्वस्य सत्वात्सन्निपातविघाताभावेनोक्तपरिभाषाऽप्राप्त्या नामीत्यस्य चारितार्थ्यमिति वाच्यम् । नह्येकमुदाहरणं योगारम्भं प्रयोजयतीति न्यायेन 'कतेर्नामी'त्येव सिद्धे सामान्यसूत्रवैयर्थ्यस्य स्पष्टत्वादिति । केचित्तु, आरम्भसामर्थ्यादित्यस्य 'न तिसृचतसृ' इति निषेधारम्भसामर्थ्यादित्याशयं वर्णयन्ति, तेषामयमभिप्रायः, यदि नामि सूत्रविषयेऽपि सन्निपातपरिभाषा प्रवर्तेत तदा तयैव तिसृणामित्यत्रापि दीर्घव्यावृत्तिसिद्धौ निषेधकरणस्य स्पष्टमेव वैयर्थ्यं स्यात् (१)एतदारम्भसामर्थ्यादुक्तपरिभाषाया(२) स्तद्विषयेऽप्रवृत्तिकल्पने तु तिसृणामित्यत्र नामीत्यनेन प्राप्तदीर्घव्यावृत्त्यर्थं निषेधशास्त्रं स्वांशे चरितार्थं जातमिति दिक् ॥

ननु 'आदेशप्रत्यययोरि'त्यत्रेण्कोरग्रहणे प्रातिपदिकात्परीभूतो य आदेशरूपः प्रत्ययावयवश्च सकारस्तस्य मूर्द्धन्यादेश इत्यर्थे प्रथमैकवचने राम इत्यत्रापि सोस्तदापत्तिः, तत्सत्त्वे तु न तत्रोक्तापत्तिलेशोऽपि सोरिण्कुभ्यां परत्वाभावादेवञ्च राम इत्येव प्रत्युदाहर्त्तव्यं रामस्येति प्रत्युदाहरणमानन्दसन्दोहजनकमिति चेन्न । षत्वविधायकशास्त्रस्य रुत्वविसर्गौ प्रत्यसिद्धत्वेनेचोक्तप्रयोगीयदोषव्यावृत्तौ प्रथमैकवचनस्य प्रत्युदाहरणायोग्यत्वात्षष्ठ्येकवचनस्यैव तयोग्यत्वमित्याशयेनाऽऽशङ्क्य समाधत्ते—**इण्कोः किम् । रामस्येति ।** अत्र, षत्वशास्त्रे तदग्रहणे तदापत्तिः स्यादिति तद्ग्रहणम् । न च 'टाङसी'ति सूत्रेण स्यविधानस्यैव समुचितत्वे सकारोच्चारणसामर्थ्यादेव तत्र दोषाभावादिण्कोर्ग्रहणं मास्तु । एवञ्च रामस्येत्यत्र सकारोच्चारणसामर्थ्येनैव तदभावाद्व्यर्थमेवेण्कोर्ग्रहणमिति वाच्यम् । विश्वपास्वित्यादौ षत्वव्यावृत्त्यर्थं तस्याऽऽवश्यकत्वात् । एवञ्चेदमेव प्रत्युदाहरणम्बोध्यम् । न च षुविवितिवक्तव्ये सुबिति सकारोच्चारणसामर्थ्यान्न तत्र दोष इति वाच्यम् । लिट्त्सु धुट्त्स्वित्यादौ 'ङःसि धुडि'त्यनेन धुटो विधानाय सकारोच्चारणस्याऽऽवश्यकत्वेन षुविति वक्तुमशक्यतया विश्वपास्वित्यादाव-

(१) एतदिति । न तिसृ चतसृेति निषेधारम्भसामर्थ्यादित्यर्थः ।
(२) तद्विषय इति । नामीति दीर्घविषये इत्यर्थः ।

त्कदेषस्य दुरुद्धरत्वात् । एतदर्थमावश्यकमेव तद्ग्रहणमिति भावः ।

**विवृताऽघोषस्येति ।** विवृतस्वरूपाऽऽभ्यन्तरप्रयत्नवतोऽघोषरूपबाह्यप्रयत्नवतश्च सकारस्य स्थाने उक्तप्रयत्नद्वयवानेव षकार इति तदर्थः । विवृतस्य सस्य तादृश एव ष एतावन्मात्रोक्तौ ऋकारेऽतिप्रसङ्गस्तस्यापि विवृतं स्वराणामित्युक्तरीत्या विवृतप्रयत्नवत्त्वादतोऽघोष इत्युक्तम् । अघोषस्येत्युच्यमाने ठकारेऽतिप्रसङ्गः स्यादिति विवृतमित्युक्तम् । **तादृश एव ष इति ।** तादृशः ष एवादेशो भवति नान्य इति तदर्थः । न च दधिसेच इत्यादौ, सुबुत्पत्तेः प्राक् समासे प्राप्तषत्वव्यावृत्त्यर्थं पदादादिः पदादिरिति पञ्चमीसमासस्य भाष्ये उक्तत्वाद्रामेष्वित्यत्रापि स्वादिष्विति रामेत्यस्य पदत्वेन 'सात्पदाद्यो-रि'ति निषेधः स्यात् । नच षत्वमेव तदा व्यर्थमिति वाच्यम् । करिष्यतीत्यादौ तस्य सावकाशत्वादिति वाच्यम् । स्वादिष्विति पदसञ्ज्ञामाश्रित्योक्तनिषेधो न प्रवर्तत इति सातिग्रहणेन ज्ञापनान्निषेधाप्रवृत्तेरित्यलम् ॥

ननु 'इण्कोरि'त्यधिकारसूत्रस्यैव विधिसूत्रत्वाभ्युपगमे इण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्द्धन्यादेश इत्यर्थे सर्वत्र षत्वसिद्धौ कुत्राऽपि दोषाभावाद् व्यर्थमेव सूत्रमिदमित्याशयेनाशङ्कते—**आदेशप्रत्यययोः किमिति ।** उत्तरयति—**सुपीः सुपिसाविति ।** अयमाशयः, रुत्वविसर्गविधायकशास्त्रद्वयदृष्ट्या षत्वस्यासिद्धत्वादेव पूर्वत्र षत्वव्यावृत्तिसिद्धिरिति द्वितीयं प्रत्युदाहृतम् । तत्र सूत्राभावे षत्वापत्तिर्दुर्वारेति तदावश्यकम् । न च 'शासिवसिघसीनामि'त्येतदारम्भसामर्थ्यात् धातोः सकारस्य षत्वं चेदेतेषामेवेति नियमाश्रयणेन न तत्र तदापत्तिरिति व्यर्थमेव तद्ग्रहणमिति वाच्यम् । बहुलक्ष्यानुरोधेन प्रकृते विपरीतनियमबाधनार्थमादेशप्रत्यययोर्ग्रहणस्यावश्यकत्वादिति सङ्क्षेपः ॥

ननु 'सर्वादीनी'ति सूत्रे प्रमाणाभावे शब्दस्वरूपाध्याहारस्य कर्त्तुमशक्यत्वात्- दितरविशेष्यवाचकपदाभावाच्च तदन्तविध्यभावे सर्वाद्यन्तस्य सर्वनामसञ्ज्ञाऽप्राप्तौ तां साधयितुमाह—**तदन्तस्यापीयं सञ्ज्ञेति ।** अत्र प्रमाणमाह—**द्वन्द्वे चेति ।** अयम्भावः, समुदायस्यैवायं निषेधो नावयवानामित्यग्रे वक्ष्यति, एवञ्च समुदाये सञ्ज्ञायास्तदन्तविधिं विना प्राप्त्यभावाद् व्यर्थं निषेधसूत्रं ज्ञापयति सर्वाद्यन्तस्यापि सर्वनामसंज्ञा भवतीति स च तदन्तविधिर्विशेष्यवाचकपदाभावाद्भवितुन्नार्हति, अतः शब्दस्वरूपाध्याहार आवश्यकः सति च तस्मिन् तदन्तविधौ सर्वाद्यन्तस्य सर्वनामत्वे निषेधसूत्रस्य स्वांशे चारितार्थ्यं परमसर्वस्मै इत्यादिलक्ष्यसिद्धिश्चेति सर्वमुपपन्नमिति । न च अश्च उभौ चेति द्वन्द्वे गुणे कृते ओभावित्यत्र परादिवद्भावेन प्राप्तसर्वनाम-

संज्ञानिषेधार्थमुक्तसूत्रस्यावश्यकत्वेन ज्ञापकत्वं कथमिति वाच्यम् । तदन्तविधिज्ञापकतापरभाष्यप्रामाण्येनोक्तप्रयोगानभिधानात् । न च तदन्तविधेरभावेऽपि वर्णाश्रमेतराणामित्यत्रावयवस्य सर्वनामसंज्ञको न भवतीत्यर्थे निषेधार्थं सूत्रमावश्यकमिति वाच्यम् । अवयवमात्रेण कुत्साविवक्षाया अभावेन सर्वनामप्रकृतिकसुबन्तात्तदर्थगतकुत्साविवक्षायामकजित्यर्थकस्य 'अव्यय–सर्वनाम्नामकजि'त्यस्याप्राप्तेरिति दिक् ॥

ननु पदाधिकार्यङ्गाधिकारि च कार्यं सूत्रोपात्तस्य सूत्रोपात्तान्तस्य च भवतीत्यर्थकस्य 'पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य चे'त्यस्य सत्वात्तदन्तविधिं विनैव परमसर्वस्मै इत्यादिसिद्धौ तदन्तसंज्ञायाः किम्फलमित्याह—**तेन परमसर्वत्रेति** **अलिति** । परमसर्वेत्यस्य गणे पाठाभावात्सर्वनामसंज्ञकत्वाभावेन त्रलाद्युत्पत्तिर्न स्यात् तदन्तविधौ तु सर्वाद्यन्तस्यापि तत्त्वेन सुलभ एव त्रलादिरिति भावः । न चात्र प्रातिपदिकादित्यस्याऽनुवृत्त्या सर्वनाम्नस्तद्विशेषणत्वेन तदन्तविधिसिद्धौ ज्ञापकादिना पुनस्तदाश्रयणप्रयासो विफल एवेति वाच्यम् । समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेध इति तन्निषेधेन ज्ञापकमूलकतदन्तविध्याश्रयणस्यावश्यकत्वात् । न च परमसर्वत्रेत्यत्रावयवनिष्ठसर्वनामत्वेन सुबुत्पत्तितः प्रागेव त्रलादिसिद्धावलमेतेन तदर्थप्रयासेनेति वाच्यम् । सर्वनामप्रकृतिकसुबन्तात् त्रलादयो भवन्तीति तद्विधायकसूत्रार्थे परमसर्वेति समुदायस्यैव सुबन्तत्वात् 'द्वन्द्वे चे'ति प्रथमार्थे सप्तमीति समुदाय एव संज्ञानिषेधपर्यवसानं नाऽवयवे, अन्यथा वर्णाश्रमेतराणामित्यादौ सुडापत्तिः सर्वार्थवाचकसर्वाद्यन्तत्वेन समुदायस्य सञ्ज्ञासौलभ्यात् । अवयवस्य सञ्ज्ञानिषेधेऽपि समुदायस्य सर्वार्थवाचकसर्वाद्यन्तत्वेन सुलभैव सञ्ज्ञेति दिक् ॥

ननु 'अनेकाल्शित्सर्वस्ये'त्येतद्घटकशिद्ग्रहणेन ज्ञापितया (१)'नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वमि'ति परिभाषया तृ इत्यत्रानुबन्धकृतानेकाल्त्वाभावबोधनवत्प्रकृते श्यादेशस्यापि तया तथा बोधनेन मूलोक्तमतीवासमञ्जसम्' सर्वादेशेन विना शित्वस्यासम्भवेन शित्वात्सर्वादेश इत्यपि वक्तुमशक्यमिति चेन्न । इत्संज्ञावत्त्वमनुबन्धत्वमिति प्राचीनाभिमतानुबन्धत्वाङ्गीकारेण प्रकृते शकारस्य तत्त्वाभावादुक्तपरिभाषाऽप्रवृत्त्याऽनेकाल्त्वस्याक्षतत्वेन मूलोक्तस्य समञ्जसत्वादित्याशयेनाह—**अनेकाल्त्वात्सर्वादेश**

---

(१) नानुबन्धकृतमिति । अत्र शिद्ग्रहणं ज्ञापकं तथा हि परिभाषाऽभावेऽनुबन्धकृतानेकाल्त्वस्य ग्रहणादनेकाल्त्वादेव सर्वादेशसिद्धौ व्यर्थं शिद्ग्रहणं परिभाषां ज्ञापयति, ज्ञापितायामस्यां तु अनुबन्धकृतानेकाल्त्वस्याग्रहणात्सर्वादेशाय शिद्ग्रहणं स्वांशे चरितार्थमिति भावः ।

इति । अयम्भावः, यथा तिपः स्थाने णलणौ सर्वादेशौ भवतः, आदेशविधानोत्तरमतिदेशेन प्रत्ययत्वमाश्रित्य डकारणकारयोरित्संज्ञा प्रवर्तते न तु ततः प्राक् प्रत्ययत्वाभावेनेत्त्वविधेरप्राप्तेः, तदानीमीत्संज्ञकत्वाभावेन 'नाऽनुबन्धकृतमनेकाल्त्वमि'ति परिभाषाऽप्रवृत्त्याऽनेकाल्त्वस्याक्षतत्वात् । तथेहापि विधानात् प्रागनेकाल्त्वस्य सत्त्वात्, अर्तणस्तृ इत्यादौ तु विधानात्प्रागेवेत्संज्ञाप्रवृत्त्या ऋकारस्याऽनुबन्धत्वेन तद्रहितस्य तकारमात्रस्याऽनेकाल्त्वाभावाश्च सर्वादेश इति प्राञ्चः ।

नव्यास्तु, इत्संज्ञायोग्यत्वमनुबन्धत्वमित्यभ्युपगच्छन्ति तन्मते शकारस्येत्सञ्ज्ञायोग्यत्वेनाऽनुबन्धत्वात्परिभाषयाऽनेकाल्त्वाभावबोधनान्मूलोक्तासङ्गत्या शित्वात्सर्वादेश इत्येवोचितम्, इत्संज्ञायोग्यशकारवत्त्वमेव तन्मते शित्वमित्यलम् ।

ननु उभशब्दस्य नित्यद्विवचनान्तत्वे 'उभादुदात्तो नित्यम्' उभशब्दस्य सर्वनामत्वे कोऽर्थ इति सूत्रकार–भाष्यकारप्रयोगविरोध इति चेन्न । अर्थपरस्यैवोभशब्दस्य नित्यद्विवचनान्तत्वं न तु स्वरूपाऽनुकरणपरस्य तस्येत्यभ्युपगतेरित्याशयेनाह मूले—**उभशब्दो द्वित्वविशिष्टस्य वाचक इति** । उभश्चासौ शब्दश्चेति विग्रहः, अत्र शब्देत्यस्य पूर्वनिपातो नाऽऽशङ्कनीयः, व्याप्य–व्यापकयोर्मध्ये व्याप्यस्यैव पूर्वनिपातो न तु शब्देत्यस्येति भावः । स्वार्थ–द्रव्य–लिङ्ग–संख्या–कारकेति पञ्चविधप्रातिपदिकार्थस्य सिद्धान्तसिद्धत्वेन द्वित्वविशिष्टस्य वाचक इत्यस्य द्वित्वसंख्याप्रकारकसंख्येयविशेष्यकार्थाभिधायीत्यर्थः । ननु पञ्चविधप्रातिपदिकार्थस्य सिद्धान्तितत्वात्प्रकृत्यैव सकलार्थबोधस्योपपत्तौ विभक्तेः, 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' इत्यादेश्च नैरर्थक्यापत्तिरिति चेन्न । विभक्तेर्द्योतकत्वेन सूत्रस्य च नियमार्थत्वेन सार्थक्यादित्याशयेनाह—**अत एवेति** । द्वित्वविशिष्टत्यस्य प्रकृतार्थत्वादेवेत्यर्थः, अनन्वितार्थकविभक्तिकल्पनापेक्षयाऽनुवादकविभक्तेरेव न्याय्यत्वादाह—**नित्यं द्विवचनान्त इति** । द्विवचनान्त एवेति तदर्थः ।

ननु स्मायादिसर्वनामकार्याणामेकवचने बहुवचने च विधानदर्शनादुभशब्दस्य गणे पाठो विफल एव, न च 'सर्वनाम्नस्तृतीया चे'ति सूत्रेण उभाभ्यां हेतुभ्याम्, उभयोर्हेत्वोरिति षष्ठी तृतीया च तत्फलमिति वाच्यम् । निमित्त—कारण—हेतुषु सर्वासां प्रायदर्शनमिति 'हेतावि'ति सूत्रभाष्योक्तवार्तिकेनैव तयोर्गतार्थत्वात् । न चोक्तवार्तिकस्य 'सर्वनाम्नस्तृतीया चे'ति सूत्रे वार्तिककृता पठितत्वेन तस्य सर्वनाम्न एव सर्वविभक्तिप्रापकत्वं नत्वन्यस्येति वाच्यम् । भाष्ये 'हेतावि'ति सूत्रे तद्वार्त्तिकस्य पठितत्वात् । एवञ्चोक्तरीत्या गणपाठफलस्य सिद्धत्वादिहोभशब्दपाठो व्यर्थ एवेत्याशङ्क्य

समाधत्ते—तस्यैव पाठस्तु उभकावित्यकजर्थ इति । गणपाठेन तस्य सर्वनामत्वात् 'अव्यय सर्वनाम्नामकजि'ति भावः ।

ननु कप्रत्ययेनाभीष्टरूपस्य सिद्धौ गणेऽकजर्थं उभशब्दस्य पाठो व्यर्थः, न चाऽकचि कृते स्वरे विशेष इति वाच्यम् । प्रत्ययस्वरचित्स्वराभ्यामन्तोदात्तस्यैव सत्त्वेनाऽविशेषात् । अकचि कप्रत्यये वा कृतेऽन्तोदात्तस्वरस्यैव विधानमिति न कश्चिद्विशेष इति भावः । न च सुबन्तात्तद्धितोत्पत्तिरिति सिद्धान्तादकचि तत्प्रयुक्तमन्तोदात्तत्वमुभकाभ्यामित्यादौ सुबन्तस्य, के तु प्रकृतेस्तदिति स्पष्ट एव विशेष इति वाच्यम् । तद्धितविधौ प्रातिपदिकादित्यधिकारात्तस्यैव प्रकृतित्वेनाऽविशेषात् । प्रातिपदिकमेवाऽकचः प्रकृतिः, न च 'अव्ययसर्वनाम्नामि'ति न्यायबलेन सुबन्तात्परो भवतीत्यन्यदेतत्, 'ओकार-सकार-भकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकजिति' न्यायेन युष्मदस्मद्विषये तु सुबन्तस्यैवाऽकचः प्रकृतित्वं तस्यैव टेः प्रागकजित्यदसेयम् । नचाऽकचि (१) 'तन्मध्यपतित'-न्यायेनोभशब्दग्रहणेन तस्य ग्रहणादुभकाववयवौ यस्येत्यर्थं 'उभादुदात्तो नित्यम्' इत्ययचि उभकय इति रूपं, कप्रत्यये तु तादृशं रूपन्नेति विशेष इति वाच्यम् । कश्चेदानीं काऽकचोर्विशेष इति 'सर्वादीनी'ति सूत्रस्थभाष्यप्रामाण्येन तादृशरूपानभिधानेन विशेषाभावादित्याशयेनाशङ्कते—न च कप्रत्ययेनेष्टसिद्धिरिति । समाधत्ते—द्विवचनपरत्वाऽभावेनेति । टेः पूर्वमकचो जायमानतया 'तन्मध्यपतित'न्यायेनोभग्रहणेनाकज्विशिष्टस्य ग्रहणादुभशब्दस्याकचो न द्विवचनपरत्वविघातः, कप्रत्ययस्य तु प्रातिपदिकान्तरत्र जायमानतया व्यवधायकत्वेन तस्य द्विवचनपरत्वविघातकत्वं स्पष्टमेव, एवञ्च यथा उभशब्दात्स्वार्थे त्रलि तसि च परेऽयच् भवति तथा प्रकृते कप्रत्ययेऽपि स स्यादिति समाधातुरभिप्रायः । दृष्टान्तेऽयचः प्रसङ्गं प्रदर्शयति–'उभादुदात्तो नित्यमि'ति सूत्रं विभज्यते, तत्र उभादुदात्त इत्येको योगः, अत्र योगेऽस्वरितत्वेन 'द्वित्रिभ्यामि'–त्यतो वेत्यस्य नाऽनुवृत्तिः, ततः अवयववृत्तेः संख्यावाचिन उभयशब्दादवयविन्यर्थेऽयच् स्यात्, उभयो मणिः, ततो 'नित्यम्' उभशब्दाद्वृत्तिविषये स्वार्थे नित्यमयच् स्यादिति उभयत उभयत्रेति सिद्धम् । ननु वृत्तिविषये स्वार्थे नित्यमयच् भवतीत्यस्यो-

---

(१) तन्मध्यपतितेति । 'तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते' इति स्वरूपम् । 'नेदमदसोरकोरि'ति सूत्रेऽकोरिति निषेधोऽस्या ज्ञापकः । तथा हि, एतदभावेऽक विशिष्टेदमदश्शब्दत्वाभावादेव ताभ्यामुत्तरस्य भिस ऐस्त्वाप्राप्त्या तद्व्यावृत्त्यर्थमकोरिति निषेधो व्यर्थः सन्नुक्तमर्थं ज्ञापयति, ज्ञापिते त्वस्मिन्नर्थेऽकज्विशिष्टयोरिदमदसोरिदमदश्शब्दाभ्यां ग्रहणात्तदुत्तरस्य भिस ऐस्त्ववारणार्थमुक्तनिषेधश्चरितार्थ इति भावः ।

कत्वेन कृतेऽप्यकचि दुर्वार एवाऽयजिति चेन्न । योगविभागक्लेशसिद्ध्यर्थत्वेन 'उभौ साभ्यासस्ये'ति निर्देशेन च यत्र न द्विर्वचनश्रवणं तत्रैवाऽयच् न तु वृत्तिविषये इति तदाशयात् । न च द्विवचनपरत्वाभावेऽयच् नेष्ट इत्यत्र किम्प्रमाणमिति वाच्यम् । वक्ष्यमाणवार्त्तिकस्यैव प्रमाणत्वात् । इत्याह—**उभयोऽन्यत्रेति** । स्वार्थिकाऽयजन्त उभयः सोऽन्यत्र द्विवचनपरत्वाभावे प्रयुज्यते न तु द्विवचने । यत्रोभशब्दादुत्पन्नद्विवचनस्य लुका नाऽपहारस्ततोऽन्यत्रायजिति वार्त्तिकाऽर्थः । इत्थं कृत्वाऽकजर्थः सर्वादिगणे उभशब्दपाठः स्थितः, भाष्ये तु प्रत्याख्यात उभयशब्दपाठः, 'स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृतितोऽविशिष्टा भवन्ती'ति केऽप्यन्तरेण द्विवचनं द्विवचनपरत्वसत्त्वादयचोऽप्रवृत्तेः । अत एव उभयोरुभौ उभोभावित्यादौ नायच् अल् तसिश्च विभक्त्यन्तस्य स्वार्थे विहित इति तत्तत्कारकशक्तिप्रधानावेवेति तयोर्द्वित्वसंख्याप्रकारकसङ्ख्येयविशेष्यकबोधकत्वरूपं द्विवचनं नेति, उभयशब्देनोभशब्दग्रहणवद्वार्त्तिके कृत्रिमाकृत्रिमयोरुभयोर्द्विवचनयोर्ग्रहणमित्यलम् ॥

'उभयोऽन्यत्रे'ति वार्त्तिकस्योभयो मणिरुभये देवमनुष्या इत्येकवचनबहुवचनयोरेव भाष्योदाहरणादुभयशब्दस्य 'तद्धितश्चे'ति लक्षणेन प्राप्ताऽव्ययसंज्ञावारणाय 'तसिलादयः' इति परिगणनाच्चोभयशब्दस्य द्विवचने रूपस्याऽनभिधानमित्यतो नास्त्युभयशब्दस्य द्विवचनमिति **कैयटः** । उदाहरणमनादरणीयमिति भाष्योक्तवचनेन पचतितरम्, पचतिकल्पमित्यादावव्ययत्ववारणाय परिगणनस्य चारितार्थ्यादस्य द्विवचने रूपाभावे विनिगमकाभावादस्तीति **हरदत्त** इति भावः ।

ननु उभयशब्दाज्जसि उभय जसिति स्थितौ तयप्स्थानिकाऽयजादेशस्य स्थानिवत्त्वेन तस्य तयप्प्रत्ययान्तत्वात् 'प्रथमचरमे'ति विकल्पसञ्ज्ञा दुर्वारेत्यत आह—**तस्माज्जस्ययजादेशस्येति** । अयम्भावः—विकल्पसञ्ज्ञाया विभक्तिसापेक्षत्वेन बहिरङ्गत्वम्, नित्यसञ्ज्ञायास्तु तन्निरपेक्षत्वेनाऽन्तरङ्गत्वान्नित्यसञ्ज्ञाया एव प्रवृत्तिरिति न दोषः । न च नित्यसञ्ज्ञायाः सर्वार्थबोधकत्वरूपार्थस्य निमित्तत्वेन बहिरङ्गत्वमिति वाच्यम् । तादृशार्थस्योभयत्रापि निमित्तत्वात् । अर्थकृतबहिरङ्गत्वस्यानाश्रयणाच्चेति **प्राञ्चः** । **नव्यास्तु** भाष्येऽयचः प्रत्ययान्तरत्वेन स्थानिवत्त्वं दुर्लभम् । किञ्च 'प्रथमचरमे'ति विकल्पविधायकशास्त्रस्य पक्षेऽभावबोधकत्वेन निषेधे तात्पर्यात् (१)'निषेधाश्च

---

(१) निषेधाश्च बलीयांस इति । अन्तरङ्गादुपजीव्यादपि बलवन्त इत्यर्थः । विध्युन्मूलनाय प्रवृत्तिरस्या बीजम् । एतत्परिभाषासत्त्वादेव द्वन्द्वे च विभाषा जसीति चरितार्थम् ।

बलीयांसः' इति परिभाषया विकल्पसञ्ज्ञाया एव प्राप्तिः, किञ्च युगपत्प्राप्त्यसम्भवात् 'अन्तरङ्गं बलीयः' इत्यस्य नेह विषयः, सञ्ज्ञानामन्योऽन्यं बाध्यबाधकभावो नास्तीति प्राप्तादिसञ्ज्ञासमकालमेव सर्वनामसञ्ज्ञाप्रवृत्तिः । अत एव सर्वनाम्नो विहितत्वेन शीभावोपपत्तिः । किञ्चाऽन्तरङ्गपरिभाषयाऽपि समाधानमसमञ्जसम् । अन्तरङ्गे कृते बहिरङ्गासिद्धत्वबोधनस्याऽनया कर्तुमशक्यत्वात् । तस्मादत्रोक्तरीत्या यथोद्देशपक्षायणस्यैवौचित्यादित्याहुरिति दिक् ।

ननु 'न बहुव्रीहावि'ति सूत्रे बहुव्रीहावित्यत्र विषयसप्तमी तेन बहुव्रीहिविषये इत्यर्थस्तत्फलितमाह—**बहुव्रीहौ चिकीर्षित इति** । विषयसप्तम्याश्रयणे किम्फलमित्याह—**त्वकं पिता यस्येति** । अयमाशयः, बहुव्रीहौ सर्वनामसञ्ज्ञा नेत्यर्थस्वीकारे युष्मद् सु पितृ स्वित्यलौकिकविग्रहवाक्ये समासात्प्रागन्तरङ्गत्वादकचि समासे कृते सर्वनामसञ्ज्ञानिषेधे कृतेऽपि जातस्याऽकचो निवृत्तिर्न स्याद्यथाऽतिभवकानित्यत्र, तथा सति सुपो लुकि मपर्यन्तस्य 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे'ति त्वादेशे 'नद्यृतश्चे'ति समासात्कपि त्वकत्पितृक इत्यापद्येत, न चाऽकृतव्यूहपरिभाषया समासोत्तरं सर्वनामसञ्ज्ञानिषेधेन निमित्तविघातस्य जायमानत्वात्प्रागेवाकच् न स्यात्किञ्च जातस्यापि तस्याऽनया निवृत्तिस्स्यादिति वाच्यम् । तस्य अनित्यत्वादसत्त्वाच्चोक्तापत्तेर्दुर्वारत्वात् । विषयसप्तम्या उक्तार्थस्वीकारे तु युष्मद् सु इत्यवस्थायामेव बहुव्रीहेश्चिकीर्षितत्वात्सर्वनामसञ्ज्ञानिषेधेनाऽकचोऽप्रवृत्त्या कप्प्रत्यये युष्मत्क सु पितृ स्विति स्थितौ समासादिकार्ये कृते त्वत्कपितृक इत्यादिसिद्धिः फलम् । **भाष्यकारस्तु**, 'अकच् स्वरौ तु कर्तव्यौ प्रत्यङ्गं मुक्तसंशयमि'त्युक्तेस्त्वकत्पितृको मकत्पितृक इत्येव रूपे इष्टापत्तिं कृत्वा प्रत्याचख्यावेतत्सूत्रम् । ननु सूत्रकार–भाष्यकारमतेन निषेध–विधिरूपत्वाद्विकल्पस्यैवौचित्येन प्रत्याख्यानमयुक्तमित्याशङ्क्य समाधत्ते—**यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यमिति** । सूत्रकारापेक्षया वार्तिककारस्यैतदपेक्षया भाष्यकारस्य प्रामाण्यम्, एवञ्च प्रकृते भाष्यकारोक्तप्रकार एव ज्यायानिति बोध्यम् । अत्र प्रमाणञ्च, 'धिन्विकृण्व्योर चे'ति सूत्रेऽकारविधानमेव, तथा हि तत्र लोपस्यानुवृत्तौ वलोपविधानेनैव 'न धातुलोप आर्द्धधातुके' इत्यनेन निषेधात् गुणाभावेन धिनोतीत्यादिसिद्धावकारविधानं व्यर्थं सञ्ज्ञापयति—यथोत्तरं मुनीनामिति । ज्ञापिते च तस्मिन् , उक्तनिषेधसूत्रस्य भाष्यकृता प्रत्याख्यातत्वेन गुणाभावार्थं तत्राऽकारविधानस्यावश्यकत्वेन स्वांशे चारितार्थ्यं जातमिति दिक् ।

ननु सर्वनामसञ्ज्ञाविधानमविशेषात्सर्वत्र स्यादत आह—**'सञ्ज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः'** सञ्ज्ञाभूता उपसर्जनीभूताश्च ये सन्ति ते सर्वनामसञ्ज्ञका

न भवन्तीत्यर्थः । यथा, कस्यचित्सर्व इति नाम तस्य चतुर्थ्येकवचने प्रकृतवार्तिकेन सर्वनामसञ्ज्ञानिषेधात्स्मैकार्यस्याभावेन सर्वाय देहीत्येव नतु सर्वस्मै, एवमुपसर्जनत्वे, यथा, सर्वमतिक्रान्तोऽतिसर्वस्तस्य चतुर्थ्येकवचने उक्तरीत्या स्मायादिकार्याभावादतिसर्वायेत्येवेत्यलम् ।

उक्तवार्तिकप्रत्याख्यानप्रकारमाह—**महासञ्ज्ञाकरणेन तदनुगुणानामेव गणे सन्निवेशादिति** । अयम्भावः, 'लघ्वक्षरं हि संज्ञाकरणमि'ति भाष्येण टि-घु-भसञ्ज्ञावत् स इति सर्व इति वाऽल्पाक्षरसंज्ञाकरणादेवेष्टसिद्धौ सर्वनामेति महासञ्ज्ञाकरणसामर्थ्यादन्वर्थमियं सञ्ज्ञेति विज्ञायते सर्वेषां नाम सर्वनामेति' तथा च, स्वप्रवृत्तिनिमित्तसमानाधिकरणकृत्स्नधर्माश्रयवाचकत्वरूपसर्वार्थवाचकत्वविशिष्टानामेव गणे पाठात्तेषामेव सूत्रेऽनुकरणत्वावश्यकत्वेन सञ्ज्ञाविधानमितरेषां गणेऽपाठादनुकरणत्वासम्भवेन न तेषां सञ्ज्ञाविधानम् एवञ्च सञ्ज्ञोपसर्जनीभूतानां गणे पाठाभावादसर्वनामत्वेन स्मायादेः सञ्ज्ञाकार्यस्याऽकजादेरन्तर्गणकार्यस्य चाऽप्रसक्तया तद्व्यावृत्त्यर्थमुक्तवार्तिकं निष्प्रयोजनमेवेति दिक् ।

ननु 'अकच्स्वरौ तु कर्तव्यौ प्रत्यङ्गं मुक्तसंशयमि'ति भाष्योक्त्या प्रकरणविषयस्मरणादेतत्प्रकरणस्थसप्तमीनां प्रथमार्थकत्वं, तथा च, 'द्वन्द्वे चे'त्यत्र प्रथमार्थे सप्तमी द्वन्द्वः सर्वनामसञ्ज्ञको न भवतीति तदर्थः, तत्र द्वन्द्वशब्दस्य समुदाये शक्त्या समुदायस्यैव सञ्ज्ञानिषेधो नाऽवयवस्य । नचास्यैव तन्निषेधोऽस्तु समुदायस्य माऽस्त्विति वाच्यम् । तथा सति वक्ष्यमाणदोषापत्तेः । तथा हि अवयवमात्रस्य सञ्ज्ञानिषेधे तु सर्वार्थवाचकसर्वाद्यन्तत्वेन समुदायस्य सञ्ज्ञायां बाधकाभावात्तेन वर्णाश्रमेतराणामित्यत्र सुडापत्तिः, अवयवस्य निषेधेऽपि सर्वार्थवाचकसर्वाद्यन्तत्वस्यानपायेन तत्प्राप्तेः सुलभत्वात् । न च व्यपदेशिवद्भावादवयवस्य द्वन्द्वे विद्यमानत्वात्समुदायस्य च निषेधो भवत्विति वाच्यम् । सत्येवमवयवस्य निषेधे फलाभावात् । एवञ्च पूर्वोक्तप्रकार एव युक्त इत्याशयेनाह—**समुदायस्यैवायं निषेध इति** ।

ननु समुदायस्यैव सञ्ज्ञानिषेधस्योक्तत्वादवयवस्य तन्निषेधाभावात्तस्य तत्त्वेन सर्वनामान्ताङ्गात्परस्यामः सुडित्यर्थे प्रकृते सुटो दुर्वारत्वमित्यभिप्रायेणाशङ्कते—**नचैवं तदन्तविधिना सुट्प्रसङ्ग इति** । सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडिति तद्विधायकशास्त्रस्य व्याख्यानकरणेन प्रकृते आमः समुदायविहितत्वादवयवमात्रात्सर्वनाम्नोऽविहितत्वेन नोक्तापत्तिलेशोऽपीति भावः । नचाऽवयवस्य सर्वनामत्वादकजापत्तिर्दुर्वारेति वाच्यम् । अवयवमात्रेण कुत्सार्थाप्रतीतौ तदप्राप्तेरिति दिक् ।

ननु जराशब्दस्य जरसादेशविधानेन निर्जरशब्दस्य न स्यादित्यत आह—(१) पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य चेति। पदमङ्गञ्च विशेष्यं विशेषणेन च तदन्तविधिरित्येतत्सिद्धमिदम्। नन्वेवं निर्जरसमुदायस्यैवादेशापत्तिरित्यत आह (२)निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्तीति॥

ननु सूत्रे जराशब्दोपादानान्निर्जरघटकजरशब्दस्य जराशब्दत्वाभावादादेशो न स्यादित्यत आह—एकदेशविकृतमनन्यवदिति॥

वृत्तिकृतेति। वृत्तिकृता–यत्केषाञ्चिन्मतमुक्तं निर्जरसिन् निर्जरसादिति तेषामयमाशयः–'विप्रतिषेधे परमि'ति सूत्रे परशब्द इष्टवाची, तत्कार्यञ्च पूर्वविप्रतिषेधेन विभक्त्यादेशः, भाष्यकृताऽस्यैव सिद्धान्तितत्वात्, तथाहि, 'जराया जरसन्यतरस्या-मि'ति सूत्रे भाष्येऽजरांसीत्यत्र नुम्–जरसोः प्राप्तयोर्विप्रतिषेधेन जरसित्युक्तं तद्विभक्त्यादेशस्येष्टकार्यत्वे सत्येव सङ्गच्छते, अन्यथा भवद्रीत्या शीभावात्प्रागेव जरसः प्रवृत्तौ तदानीं सर्वनामस्थानाभावान्नुमोऽप्राप्त्या तेन सह विप्रतिषेधविचारस्य भगवता कृतस्य स्पष्टैवासङ्गतिः स्यात्, मन्नये तु जरसः प्राक् शीभावे जाते तस्य सर्वनामस्थानत्वेन नुमः प्रसक्तावनेन जरसो विप्रतिषेधविचारो भाष्यकृत्कृतः सङ्गत एव, एवञ्च प्रकृते विभक्त्यादेश–जरसादेशयोः प्राप्तौ पूर्वं पूर्वविप्रतिषेधेन विभक्त्यादेशे कृते तत एसि कर्त्तव्ये ऐस्करणस्य, अदादेशे कर्त्तव्ये आत्करणस्य च (३)'सन्निपात'परिभाषाऽनित्यत्वे विनिगमकत्वात्तदप्रवृत्तौ जरसि निर्जरसिन् निर्जरसादितिरूपं निर्बाधमेवेति, तन्मतानुयायिनोऽप्येवमेवाहुः, परमेतद्भाष्यविरुद्धम्, तथा हि–भाष्यकृता 'बहुवचने झल्येत्' 'ओसि च' 'आङि च' 'आपः सम्बुद्धौ चे'ति क्रमेण सूत्रपाठमङ्गीकृत्याऽऽङि परे एत्वमित्यर्थेन रामेण, अकारोच्चारणसामर्थ्यात्तपरत्वस्य बाधे दीर्घेण रामादिति चोपाद्याऽऽति दीर्घोच्चारणमिने इकारोच्चारणञ्च प्रत्याख्यातम्। उक्तरूपस्येष्टत्वे तु अति-

---

(१) पदाङ्गाधिकार इति। पदाधिकारीयमङ्गाधिकारीयञ्च कार्यं तस्य सूत्रोपात्तसजातीयस्य तदन्तस्य सूत्रोपात्तसजातीयान्तस्य च भवतीत्यर्थः।

(२) निर्दिश्यमानस्येति। अत्र षष्ठीस्थाने योगेति सूत्रं प्रमाणम्। तथा हि, 'षष्ठीस्थाने योगे'ति सूत्रमावर्तते तत्र द्वितीयस्यायमर्थः, षष्ठीत्यस्य प्रत्ययग्रहणपरिभाषया षष्ठ्यन्तमित्यर्थः, निर्दिश्यमानमिति पदस्याध्याहारः, तथा च षष्ठ्यन्तं निर्दिश्यमानं स्थाननिरूपितसम्बन्धेन युज्यते सूत्रे निर्दिश्यमानस्योच्चार्यमाणस्य षष्ठ्यन्तस्य कार्यासम्भवेन तत्सजातीयं गृह्यते, अतः सिद्धं निर्दिश्यमानस्येति।

(३) सन्निपातेति। सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति परिभाषास्वरूपम्।

जरैरिति भवितव्यं सन्निपातपरिभाषयेति भाष्यात् प्रत्याख्यानपरभाष्याच्च विरोधः स्यात्। तदुक्तं फलैक्ये प्रत्याख्यानं सम्भवति न तु फलभेद इति, प्राग्विसकस्यादेशे इकारोच्चारणसत्त्वे निर्जरसिन इदानीं निर्जरेण, एवमपि दीर्घोच्चारणसद्भावे निर्जरसात् अधुना निर्जरसदिति फलभेदात्प्रत्याख्यानासम्भवेन विरोधस्य स्पष्टत्वादुपेक्ष्यं तन्मतमिति भावः। नच नकारोच्चारणप्रत्याख्याने अनेनेत्यत्र हलि लोपापत्तिर्दुर्वारेति वाच्यम्। 'टौसोरनक' 'आपि लोप' इति सूत्रकरणेनोक्तापत्तेरभावात्। किञ्च; 'अनाप्यक' इति सूत्रे, अ इति नपुंसकनिर्देशात् नकारे आपि च परे अनादेश इत्यर्थं विशिष्य नकारेऽनादेशविधानसामर्थ्यादुक्तलोपस्य बाधादिति दिक्॥

ननु (१)प्रत्यैषिषन्नित्यादौ पररूपस्य स्थानिवद्भावादकारव्यवधानद्वारा जुसभावायाऽऽवश्यकेन 'अचः परस्मिन्नि'त्यत्र पूर्वविधावित्यस्याऽऽवृत्त्या लब्धेन पञ्चमीसमासेन दोष्ण इत्यत्राऽकारलोपस्य स्थानिवद्भावेन व्यवधानान्नकारस्य षकाराऽव्यवहितोत्तरत्वाभावेन णत्वं न स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**इह पूर्वस्मादपोति**। उक्तरीत्या स्थानिवत्त्वादकारव्यवधाने तु 'अट्कुप्वाङ्नुमि'त्यनेन तत्र णत्वमिति बोध्यम्। किञ्च (२) प्रविगणय्येति भाष्योदाहरणसिद्धये पञ्चमीसमासस्याऽनित्यत्वाऽभ्युपगमे तु, 'रषाभ्या'मि'त्यनेनैव णत्वं सुलभमिति न कश्चिद्दोषः, तदनित्यत्वे च पूर्वोक्तभाष्योदाहरणमेव मानम्, अन्यथाऽल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेनाऽकारव्यवधानाल्लघुपूर्वकत्वाऽभावेन 'ल्यपि लघुपूर्वादि'ति णेरयादेशो न स्यात्, अत एव हे गौरित्यत्र वृद्धेः स्थानिवत्त्वेन सम्बुद्धिलोपो नेत्यभिप्रायेणाह—**इति पदेत्विति**। अनित्यत्वसूचक एव तु शब्दः प्रयुक्त इति भावः।

**पूर्वत्रासिद्धेनेति**। अतिदेशशास्त्रदृष्ट्या त्रैपादिकशास्त्रस्यासिद्धत्वान्न्यायसिद्धोऽयम्। तत्फलन्तु वतिघटितानामतिदेशान्तराणां त्रिपाद्यामपि प्रवृत्तिरूपम्। तेषान्तत्र प्रवृत्तिस्वीकारादेव, अमी, क्षीरपेणेत्यादौ मीत्वणत्वे भवतः, अन्यथाऽतिदेशदृष्ट्या मीत्वणत्वयोस्त्रैपादिकत्वेनाऽसिद्धत्वात्तौ न स्याताम्। अत्रैकारस्यादःशब्दसम्बन्धित्वं पे इत्यस्यैकाजुत्तरपदत्वञ्चान्तवद्भावाधीनमिति भावः॥

**तस्य दोष इति**। वाचनिकमेवेदन्तु ज्ञापकसिद्धम्। न च 'न मुने' इति सूत्रे ने इति योगविभागेन ज्ञापितमस्तु तद्वाचनिककथनमयुक्तमिति वाच्यम्। भाष्ये योगवि-

(१) प्रत्यैषिषन्निति। प्रतिपूर्वकादिषेण्यन्ताल्लुङि प्रथमपुरुषबहुवचने रूपम्।
(२) प्रविगणय्येति। प्र-विपूर्वकाद्गणयतेः क्त्वो ल्यपि रूपम्।

भागस्यादर्शनेन अप्रसिद्धत्वस्यासम्भवात् । अत एव वार्त्तिककृता सिद्धकाण्डमारब्धं 'न लोपः सुपी'ति सूत्रञ्च सूत्रकृता कृतम् । अस्योदाहरणानि च, चक्रयत्र-निगाल्य-ते-मावयतीत्यादीनि बोध्यानीति दिक् ॥

ननु भाष्ये ककुच्च दोश्चेति द्वन्द्वे प्रातिपदिकत्वेन औ विभक्तौ 'पद्दन्नि'ति सूत्रेण, आवित्यस्य शसादित्वाभावाद्दोषन्नादेशो न स्यादत आह—प्रभृतिग्रहणं प्रकारार्थ-मिति । प्रकारो भेदसादृश्यं, तच्च, साधारणधर्मसम्बन्धप्रयोज्यं, साधारणधर्मत्वञ्चोप-मानोपमेयोभयवृत्ति, उपमानत्वञ्च साधारणधर्मवत्त्वेनेषदितरपरिच्छेदकत्वम्, उपमेय-त्वमपि तथैव, तथा च, साधारणधर्मस्य सुप्त्वस्य स्वादौ शसादौ च वृत्तित्वात्तेनैव साद-श्यग्रहणन्न तु शब्दत्वेनेति बोध्यम् । सुप्त्वेन सादृश्यग्रहणे ककुद्दोषणीति भाष्यप्रयोग एव मानम्, तथा हि, शसप्रभृतिष्वित्युच्यतेऽशस्प्रभृतिष्वपि दृश्यते ककुद्दोषणी याचते महादेव इत्युक्तम्भाष्ये, तेन सुप्त्वेनैव सादृश्यग्रहणे भाष्यकृत्तात्पर्यम् । अत एव 'हृद-यस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' 'वा शोकष्यञ् रोगेष्वि'ति सूत्रद्वयं सङ्गच्छते, अन्यथा, शब्द-त्वेन सादृश्यग्रहणेनैव हृल्लेखः, हृच्छोक इत्याद्युपपत्तावुक्तसूत्रद्वयस्य वैयर्थ्यं स्यात् । न च सुप्त्वेन सादृश्यग्रहणे स्वादावपि सर्वत्र पदाद्यादेशापत्तिरिति वाच्यम् । सुप्रभृति-ष्वित्यस्य वक्तव्यत्वे शसूप्रभृतिष्विति कथनात्क्वचिदेवाऽन्यत्र तद्विधानात् । एवञ्चावि-त्यस्य स्वरूपेण शसूभिन्नत्वं सुप्त्वेन तत्सादृश्यञ्च, ततस्तस्मिन्परे दोषन्नादेशे ककुद्दोष-णीति सिद्धम् । फलञ्च, 'पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियां' 'स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यादौ 'न लुमते'त्यस्याऽनित्यत्वात्प्रत्ययलक्षणेनाऽन्तर्वर्त्तिविभक्त्या सुप्परत्वेन पादशब्दस्य पदा-देशो हृदयस्य हृद्भावश्च सूपपन्न इति दिक् ॥"

ननु विश्वपाशब्दस्य प्रथमा-द्वितीययोर्द्विवचने प्राप्तपूर्वसवर्णदीर्घस्य 'नादिची'त्य-नेन निषेधाज्जसि सत्यपि तस्मिन्नदोषाच्चेष्टरूपसिद्धौ 'दीर्घाज्जसि चे'ति सूत्रं व्यर्थमित्या-शङ्क्य समाधत्ते—यद्यप्यौङि नादिचीत्येव सिद्धिमिति । अयम्भावः, उक्तसूत्रा-भावे गौर्यौ गौर्य इत्यादौ नादिचीत्यस्य प्राप्त्या निषेधाभावात्पूर्वसवर्णत्वेऽनिष्टरूपापत्ति-रिति तन्निषेधार्थमावश्यकं दीर्घाज्जसि चेति सूत्रमिति । न च 'यूस्त्र्याख्यौ नदी, त्वा-दिभ्यः' इत्यादिनिर्देशादिक्प्रत्याहाराऽच्प्रत्याहारयोरेव निरूढलक्षणाङ्गीकाराद्दीर्घस्या-च्त्वाभावेन गौर्यावित्यादौ पूर्वसवर्णदीर्घाऽप्रसक्त्या निषेधसूत्रं व्यर्थमेवेति वाच्यम् । एतन्निषेधसामर्थ्यादेवेगज्भिन्नप्रत्याहारेष्वप्युक्तलक्षणास्वीकारात् । अत एव, शसि गौरी-रित्यादौ पूर्वसवर्णदीर्घसिद्धिः, अन्यथोक्तरीत्या न स्यात् । केचित्तु 'प्रथमयोः पूर्वसवर्ण-दीर्घ' इत्यस्याऽनन्तरं दीर्घाच्छस्येव पूर्वसवर्णदीर्घ इत्यर्थकदीर्घाच्छसीत्येव सूत्रकरणा-

चकाराकरणेन नेत्यस्याननुवर्त्तनेन च लाघवमित्याहुः । केचिच्च शसि पूर्वसवर्णदीर्घश्चेद्दीर्घादेवेति विपरीतनियमवारणाय 'नृन्पे' 'कानाम्रेडिते' इत्याद्यनुसन्धाने ज्ञानगौरवाद्यथोक्तन्यास एव युक्तियुक्त इति वदन्तीति दिक् ।

ननु 'आतः' इत्येव सूत्रमस्तु लोपानुवृत्तावाकारान्तं यदङ्गं भं तस्य लोप इत्यर्थे विश्वप इत्यादिसिद्धौ धातोरिति व्यर्थमित्याशयेन शङ्कते—**धातोः किमिति ।** समाधत्ते—**हाहानिति ।** अव्युत्पन्नमिदम्, 'हाहा हूहूश्चैवमाद्या' इत्यमरोक्तेः । अत्राऽऽकारलोपेनेष्टप्रयोगानापत्तिरिति तदर्थमावश्यकं धातुग्रहणं तस्य सत्त्वे धातुत्वाभावान्न तत्राऽऽकारलोपः । नचाऽस्य हेति कष्टं जहातीति व्युत्पत्त्या क्रियाशब्दत्वाल्लोपस्येष्टत्वे प्रत्युदाहरणदानमयुक्तमितिं वाच्यम् । तथा सति सानित्यस्यैव प्रत्युदाहरणत्वात् । अकारो वासुदेवस्तेन सह वर्तन्त इति सास्तान् सानिति तदुपपत्तेरिति प्राञ्चः ।

**नव्यास्तु**—'क्त्वः, श्नः' इत्यादिसौत्रप्रयोगोपपत्तये वार्तिककृतोपन्यस्तस्य 'आतो नापः' इति वार्त्तिकस्य 'आतो धातोरि'त्यत्राऽऽत इति योगविभागेनोक्तसौत्रप्रयोगोपपत्तिं विधाय भगवता प्रत्याख्यानकरणादुक्तप्रत्युदाहरणप्रयोगस्याभिधाने तु लोपस्येष्टापत्तिरेव । न चैवं व्यावर्त्याभावेन सूत्रे धातुग्रहणमेव तदा व्यर्थमिति वाच्यम् । आबन्तनिवृत्त्यर्थं तस्याऽऽवश्यकत्वेन सार्थक्यात् । नचाऽऽकारान्तेभ्य आचारक्विपि तदन्तात्कर्तृक्विपि तत्र लोपार्थमस्तु धातोर्ग्रहणमिति वाच्यम् । तादृशप्रयोगस्याऽनभिधानादित्यलम् ।

ननु नित्यस्त्रीलिङ्गयोर्दीर्घदूदन्तयोः 'यू स्त्र्याख्यौ नदी'त्यनेन नदीत्वविधानं, दीर्घदूदन्तयोः स्त्रीलिङ्गयोर्ह्रस्वेदुदन्तयोः 'ङिति ह्रस्वश्चे'त्यनेन वैकल्पिकन्तद्विधानं प्रकृतेऽपि यू–ह्रस्वपदयोरनुवर्त्तनात्सामान्यतस्तत्र घिसंज्ञाविधानादिष्टरूपोपपत्तौ शेषग्रहणं व्यर्थमित्यभिप्रायेण शङ्कते—**शेषः किमिति ।** उत्तरयति—**मत्यै इति ।** अयमभिप्रायः—अत्र नदीसंज्ञापक्षे घित्वात् 'आण्नद्याः' इत्यादि गुणाऽऽवादेशयोर्नेष्टरूपसिद्धिरिति समाधातुरभिप्रायः, वस्तुतस्तु पुँल्लिङ्गे नपुंसके च सावकाशाया घिसंज्ञायाः परत्वादपवादत्वाच्च नदीसंज्ञया बाधेन तदप्राप्तौ शेषग्रहणं व्यर्थं, न च गवां पत्यै स्त्रियै इत्यादौ नदीसंज्ञायास्सावकाशत्वादपवादत्वासम्भवेन घित्वस्य तया बाधानापत्तौ प्राप्तदोषव्यावृत्त्यर्थं शेषग्रहणमावश्यकमिति वाच्यम् । 'नह्येकमुदाहरणं योगारम्भं प्रयोजयती'ति भाष्यात् 'पतिस्त्रियामि'त्यनेनैवोक्तप्रयोगसिद्धौ सामान्यसूत्रस्य वैयर्थ्येनाऽपवादत्वाद्बाधे तद्वैयर्थ्यस्पष्टत्वात् इत्याशयेनाह—**एकसंज्ञाधिकारात्सिद्धं शेषग्रहणं स्पष्टार्थमिति** अधिकारश्च 'कडाराः कर्मधारयः' इत्येतदवधिक एतत्पर्यन्तमेवाधिकारस्य बुद्धिविषय-

स्यात् । नचैवं गुरु-परस्मैपदसंज्ञयोरेकत्र समावेशानापत्तिरनायत्तिश्च गुरु-नदीसंज्ञयो-र्लघु-घिसंज्ञयोश्चैकत्र समावेशस्येति वाच्यम् । पूर्वत्र 'णलुत्तमो वे'ति ज्ञापकादेव तदुप-पत्तेः । परत्र वर्णस्य लघु-गुरुसंज्ञे, तदन्तस्य च घि-नदीसंज्ञे इति भिन्नाऽधिकत्वेन समावेशादित्यलम् ॥

ह्रस्वौ किम् । वातप्रम्ये । ह्रस्वग्रहणाकरणे यू इत्यनुवृत्तौ दीर्घयोरेव घित्व-विधानाद्ध्रस्वयोरप्राप्त्या मूलोक्तप्रत्युदाहरणासङ्गतिः । न च 'शेषो घ्यसखी'त्यत्राऽसखी-ति पर्युदासकरणात् 'पतिः समास एवे'त्यस्यारम्भसामर्थ्याच्च ह्रस्वयोरेव घित्वं न दीर्घ-योरिति न दोष इति वाच्यम् । इच्छाऽर्थ्यजन्तात्सखीयतेः क्विपि निष्पन्ने सखीः, पती-रित्यत्र घित्वाभावाय तयोश्चारितार्थ्यात् । न च 'अच घेः' इत्याद्यारम्भसामर्थ्याद्ध्रस्व-योरेव तत्स्यादिति वाच्यम् । अनेककृष्टकल्पनाऽपेक्षया ह्रस्वग्रहणकरणस्यैव लघीयस्त्वा-दिति भावः ॥

ननु 'ङिति ह्रस्वश्चे'त्यतोऽनुवृत्तेन ह्रस्वग्रहणेनैव समीहितरूपोपपत्तौ प्रकृतसूत्रे यूग्रहणमनावश्यकमेवेत्यत आह-यू किम् । मात्र इति । अयम्भावः, यूग्रहणाभावे उक्तप्रयोगे घित्वेन गुणाप्त्या नेष्टरूपसिद्धिरिति तत्र घित्वाभावार्थमावश्यकं तत् । न च 'ऋतोङी'त्यारम्भसामर्थ्यादृदन्तेभ्यो गुणश्चेन्ङावेवेति नियमाश्रयणात्प्रकृते दोषाभावेन परिच्छेतृवाचिमातृशब्दस्य तृतीयैकवचने घित्वे नात्वाऽऽप्त्या मात्रेत्येव प्रत्युदाहरणं युक्तमिति वाच्यम् । उक्तगुणविधायकशास्त्रस्य यूग्रहणाऽनुवृत्तावेव तात्पर्यग्राहकत्वादित्य-लमतिविस्तरेण ॥

दीर्घात्किम् । निष्कौशाम्बिः । अतिखट्व इति । अस्यायम्भावः, कौशा-म्ब्या निष्क्रान्तः, खट्वामतिक्रान्त इति विग्रहे पूर्वत्र "निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या" इत्यनेन, परत्र च "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इत्यनेन समासे 'गोस्त्रियोरि'ति ह्रस्वे उक्तप्रयोगद्वयसिद्धिः । अत्र दीर्घादित्यस्याग्रहणे स्थानिवत्त्वेन ङ्याबन्तत्वात्ततः परस्य सोर्लोपापत्तिः । न च समस्तस्य ङ्याबन्तत्वाभावेन न तत्र दोषः । न च स्त्रीप्रत्यये न तदादिनियम इति वाच्यम् । अनुपसर्जने तदभावेऽप्युपसर्जने तत्सत्त्वे बाधकाभावात् । अन्यथाऽतिकारीषगन्ध्यापुत्र इत्यत्र ष्यङन्तपूर्वपदलक्षणसम्प्रसारणापत्तेर्दुर्वारत्वादिति वाच्यम् । उत्तरपदस्य ङ्याबन्तत्वेन सोस्ततः परत्वेन दीर्घग्रहणाऽभावे सुलोपस्य दु-र्निवारत्वात् । न च ङ्याब्ग्रहणस्य विहितविशेषणत्वाभ्युपगमे न तत्रोक्तापत्तिलेशोऽपीति वाच्यम् । तस्य विहितविशेषणत्वानङ्गीकारेण दोषस्य तादवस्थ्यात् । न च ङ्याब्ग्रहणस्य परविशेषणत्वे आत्मनो गङ्गामिच्छति गङ्गीयति ततः क्विपि, अलोपे यलोपे च गङ्गीरि-

त्यत्रेकारे स्थानिवद्भावादावन्तत्वेन दीर्घत्वस्य स्वाश्रयत्वेन च सुलोपापत्तिः । न चाल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेन सोरापः परत्वाभावान्न दोष इति वाच्यम् "क्वौ लुप्तं न स्थानिवदि"ति स्थानिवत्त्वनिषेधादिति वाच्यम् । ङी ई आ आबिति प्रश्लेषेण दीर्घग्रहणस्य प्रत्याख्यातत्वादिहाऽऽरूपस्याऽऽपोऽभावेनोक्तापत्तेरयोगादिति दिक् ।

ननु 'हल्ङ्याब्भ्य' इति सूत्रे पूर्वहल्ग्रहणाभावेऽपि दीर्घीभूतान्ङ्याबन्तात्परस्य सोर्लोप इत्यर्थेनैव सकलेष्टसिद्धिः, न च तदभावे लिट्धुगित्यादौ सुलोपानापत्तिरिति वाच्यम् तत्र 'संयोगान्तस्य लोप' इत्यनेनैव तदुपपत्तेः एवञ्च व्यर्थमेव तद्ग्रहणमित्याशयेनाऽऽशङ्कते–प्रथमहल् किमिति । समाधत्ते—राजेति । अयम्भावः, अत्र संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वेन नलोपानापत्तावुक्तरूपाऽसिद्धिरिति तद्ग्रहणमावश्यकं तस्मिन् सति प्रकृतसूत्रेण सुलोपेऽस्य नलोपदृष्ट्याऽसिद्धत्वाऽभावेन नलोपे रूपसिद्धिरिति । न च 'न ङिसम्बुद्ध्योरि'ति सूत्रस्थसम्बुद्धिग्रहणेन नलोपे कर्त्तव्ये संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वाभावज्ञापनान्न दोषः, अन्यथा सम्बुद्धौ हे राजन्नित्यत्राप्युक्तलोपस्यासिद्धत्वेन नलोपाऽप्राप्त्या तदर्थं कृतस्य सम्बुद्धिग्रहणस्य स्पष्टमेव वैयर्थ्यमिति वाच्यम् । क्लीबे हे ब्रह्मन्नित्यत्र 'स्वमोर्नपुंसकादि'ति सोर्लुकि तद्दृष्ट्या नलोपस्य सिद्धत्वेन प्राप्तनलोपव्यावृत्त्यर्थं सम्बुद्धिग्रहणस्याऽऽवश्यकत्वेन सार्थक्यात् । न च "सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः" इति वार्तिकेनैवोक्तप्रयोगसिद्धौ सम्बुद्धिग्रहणस्य युक्तमेव ज्ञापकत्वमिति वाच्यम् । तथा सति गोमानित्यत्रापि नलोपापत्तेः । न च ज्ञापकसाजात्याद्युक्तज्ञापनस्य सम्बुद्धिविषयकत्वाभ्युपगमेन नियमानाऽऽक्रान्तत्वात्संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वाऽभावाऽभावेन नोक्तदोषस्य सम्भव इति वाच्यम् । लक्ष्याऽनुरोधेन सामान्याऽपेक्षस्य ज्ञापनस्य सम्भवे विशेषापेक्षस्य तस्य त्याज्यत्वात् । एवञ्च सामान्याऽपेक्षनियमेन न राजेत्यत्र नलोपाऽनुपपत्तिः । न चैवं गोमानित्यत्राऽपि नलोपो दुर्वार एवेति वाच्यम् । ज्ञापकसाजात्येन यत्र नकारविभक्त्योरानन्तर्यं तद्विषयकोऽयन्नियम इत्यभ्युपगमेन प्रकृते तकारव्यवधानान्नकारविभक्त्योरानन्तर्याऽभावेनाऽदोषात् । एवञ्च पुनर्व्यर्थमेव हल्ग्रहणमिति चेदुच्यते, तदभावेऽभिनोऽत्रेत्यत्र संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वेन 'ससजुषो रु'रिति रुत्वानापत्तिः, सति तु तस्मिन्ननेन लोपेऽस्य रुत्वदृष्ट्या सिद्धत्वान्न तदनुपपत्तिः । न च रोरुत्वे कर्त्तव्ये न संयोगान्तलोपोऽसिद्ध इत्यर्थकेन "संयोगान्तलोपो रोरुत्वे" इति वार्तिकेनैवाऽभिनोऽत्रेत्यत्र संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वाभावेन दोषाऽभावाद्व्यर्थन्तदिति वाच्यम् अबिभर्भवान्, अजागर्भवानित्यत्र नलोपाऽनुपपत्तिवारणाय तदावश्यकत्वात् । तस्मादावश्यकं हल्ग्रहणम् । तदुक्तम्—"संयोगान्तस्य लोपे हि नलोपाऽऽदिर्न सिद्ध्यति रात्तु तेनैव लोपः स्याद्धलस्तस्माद्विधीयते" ॥ इति ।

न च 'रात्सस्ये'ति सूत्रे तकारस्याऽपि प्रश्लेषेण तत्र लोपोपपत्तावकिञ्चित्करमेव तद्ग्रहणमिति वाच्यम् । प्रश्लेषे प्रमाणाऽभावेन तदुपपत्त्यर्थं तस्य साफल्यात् । प्रश्लेषाऽभ्युपगमे अवात्सीदित्यत्र तलोपापत्तेश्चेति दिक् ॥

ननु शोभनः सखेति विग्रहे 'राजाहः सखिभ्य' इति टचि सुसख इत्येवं रूपस्य लक्षणसम्मतत्वे सुसखेति रूपोल्लेखस्य कथं सङ्गतिरिति चेन्मैवम् । 'न पूजनादि'ति निषेधेन टचोऽप्रवृत्तेरित्यत आह—**शोभनः सखा सुसखेति ।** एवमतिशयितः सखाऽतिसखेत्यत्रापि टचोऽप्रवृत्तिरिति बोध्यम् ॥

ननु 'अनङ् सा'वित्यादौ सखिशब्दस्य ग्रहणात्तस्यैवाऽनङादिकार्यं स्यान्न तु सुसखिशब्दस्य तत्र तस्याऽग्रहणादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**आङ्गत्वात्तदन्तस्याऽप्यनङिति ।** अनङादिकार्यस्याऽङ्गाधिकारीयत्वेनाऽङ्गस्येत्यधिकारेण तं प्रति सखिशब्दस्य विशेषणत्वात् 'येन विधिस्तदन्तस्ये'ति तदन्तविधौ सखिशब्दान्तस्यानङित्यर्थे सुसखिशब्देऽप्यनङादिकार्यस्य सौलभ्यमेवेति भावः । नचैवं सखिशब्दस्यैवाऽनङादिकार्यं न स्यात्केवलस्य तस्य सखिशब्दान्तत्वाऽभावादिति वाच्यम् । केवले तस्मिन् व्यपदेशिवद्भावेन तत्तत्कार्यप्रवृत्तेरित्यलम् ॥

ननु 'शेषोऽध्यसखी'तिसूत्रेऽसमर्थसमासादिदोषभिया प्रसज्यप्रतिषेधीयस्य नञोऽग्रहणेन पर्युदासस्य ग्रहणात्तस्य च सदृशग्राहित्वेन सखिसादृश्यञ्च समुदायस्य नास्तीत्यभिप्रायेणाऽऽचष्टे—**समुदायस्य सखिरूपत्वाभावादित्यादि ।** एतस्या इत्थमाशयं वर्णयति नागेशः, तथा हि–असखीत्यस्य सखिभिन्नावयवयोरिदुतोर्घित्वमिति वर्णसंज्ञापक्षेऽर्थः, सखिभिन्नावयवौ याविकारोकारौ तदन्तयोर्घित्वमिति तदन्तसंज्ञापक्षे चार्थः, । तथा च समुदायस्य सुसखीत्यत्र सखिभिन्नत्वात्सुलभैव घिसंज्ञा । भाष्यकृन्मते तु प्रकृते घिसंज्ञा नैव लभ्यते सखिशब्दस्य तदवयवे लक्षणया सख्यवयवभिन्नयोरिदुतोस्तदन्तयोर्वा घित्वमित्यर्थे सुसखिघटकेकारस्य सख्यवयवत्वेन तद्भिन्नत्वाभावात्सूत्राऽप्रवृत्तेरिति दिक् ॥

ननु परमश्चासौ सखा चेति विग्रहे पूजार्थस्याऽगम्यमानत्वेन 'न पूजनादि'ति निषेधाऽप्रवृत्त्या 'राजाहः सखिभ्य' इति टच् दुर्वार इत्याशङ्क्य समाधत्ते—**परमः सखा यस्येति विग्रह इति ।** तत्पुरुषे टचः प्रवृत्तिरयन्तु बहुव्रीहिरिति नोक्तापत्तिलेश इति भावः ॥

ननु परमः सखा यस्येति बहुव्रीहौ प्राचीनमतसिद्धस्येतरपदार्थनिष्ठविशेष्यता-

निरूपितप्रकारताप्रयोजकत्वरूपगौणत्वस्य सत्त्वात् (१)'गौणमुख्य'न्यायप्रवृत्त्या कथम-नङादिकार्यप्रवृत्तिरिति सन्देहस्य प्रादुर्भावे तं वारयति—गौणत्वेऽपीति। यथा गौणेऽपि परमाऽस्थ्यादिशब्दे भवत्यनङादिस्तद्वदिहापीति भावः। न च शङ्कादर्शि-योक्तन्यायस्य बाधकरूपस्य सत्त्वादनङादिकार्यंन स्यादिति वाच्यम्। प्रकृते वक्ष्यमाण-गौणत्वाभावादुक्तन्यायाप्रवृत्तेः। अप्रसिद्धत्वगौणलाक्षणिकत्वोभयविधस्यैव गौणत्वस्या-भ्युपगमात्। किञ्चोक्तन्यायस्य पदकार्यविषयकत्वेन स्त्रीत्वानिमित्तकत्वे सति पुंवि-भक्त्यनिमित्तकत्वरूपपदकार्यत्वाभावात्तदप्रवृत्तेश्च। प्राचीनोक्तं लक्षणं तूपसर्जनस्य न तु गौणत्वस्येति न तादृशगौणत्वस्येह ग्रहणमित्यलम्॥

ननु 'सख्यशिश्वीति भाषायामि'ति ङीषन्तेऽपि सखीशब्दे (२)'लिङ्गविशिष्ट' परि-भाषया सखिशब्दकार्यस्याऽनङादेरापत्तेरित्यत आह—अनित्यत्वादिति। अनित्यत्वे प्रमाणञ्च, 'शक्तिलाङ्गलाङ्कुशतोमरयष्टिघटघटीग्रहणेष्वि'ति वार्त्तिके घटशब्दात्पृथ-घटीग्रहणमेवेति।

ननु बाधकाभावादविशेषेणोपसर्जनेऽपि त्रयादेशः स्यादित्यत आह—गौणत्वे नेतीति। नोपसर्जन इति तदर्थः,। 'आमि सर्वनाम्न' इत्यस्य यथाऽनुपस-र्जन एव प्रवृत्तिस्तत्साहचर्यादस्यापि तत्रैवेति भावः।

ननु साहचर्यस्यासार्वत्रिकत्वं सूत्रान्तरस्य साहचर्याश्रयणे दृढतरप्रमाणञ्च नास्ती-त्यरुचेराह—वस्तुतस्तु त्रियत्रयाणामिति। न च गौणमुख्यन्यायस्य तु बा-धकत्वात्कथमत्र त्रयादेश इति वाच्यम्। अप्रसिद्धत्वगौणलाक्षणिकत्वरूपान्यतर-गौणत्वाभावात्तदप्रवृत्तेः। अत एव वार्त्तिककृतोपसर्जनानां सर्वनामत्वनिषेध क-र्त्तव्यः। अन्यथोक्तन्यायेनैवोपसर्जनानां सर्वनामत्वनिषेधसिद्धौ तन्निषेधवचनस्य वार्त्ति-ककृता कृतस्य स्पष्टमेव वैयर्थ्यं स्यात्। किञ्च तस्य पदकार्यविषयकत्वेनात्र तद-भावादप्रवृत्तेरित्यलम्॥

ननु युष्मदस्मदोर्विशेषविहितैरात्वयत्वलोपैर्बाधेन किमः कादेशविधानेन चा-ऽप्राप्त्या दोषाऽभावाद्द्विपर्यन्तग्रहणं व्यर्थमित्यभिप्रायेण शङ्कते—द्विपर्यन्तानां

---

(१) गौण–मुख्येति। गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्यय इति तत्स्वरूपम्। गौण-मुख्ययोरर्थयोर्मध्ये मुख्य एवार्थे कार्यसम्प्रत्ययः, मुख्यार्थबोधक एव शब्दे कार्य-प्रवृत्तिरित्यर्थः। अर्थवद्ग्रहणपरिभाषाया विशिष्टरूपोपादान एव प्रवृत्त्या तदङ्गस्येदम-अपि तत्रैव प्रवृत्तिरुचितेत्येव बीजम्। (२) लिङ्गविशिष्टेति। प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्ग-विशिष्टस्यापि ग्रहणमिति परिभाषास्वरूपम्।

मिति । समाधत्ते—भवानिति । अयम्भावः, भवतु इति स्थितौ तकारस्याऽत्वे 'अतो गुणे' इति पररूपे 'उगिदचामि'ति नुमि 'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धावि'ति दीर्घे 'हल्ङ्याबि'ति सुलोपे 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति नलोपे भवेति रूपापत्तिः । किञ्च द्विगुणन्तो शमी शमिनावित्यादौ नुमोऽभावाय झल्ग्रहणस्याऽपकर्षणादुगिज्झलन्तस्यैव नुम्विधानेन प्रकृते स्थानिवत्त्वेनोगित्त्वेऽपि झलन्तत्वाऽभावान्नुमोऽप्राप्त्या रूपासिद्धिः, अतस्तदावश्यकं सति च तस्मिन्न तत्प्राप्तिरिति न कश्चिद्दोषः । ननु त्यदादितः प्रागेव भवच्छब्दस्य पाठकरणान्न प्राग्प्रदर्शितलक्ष्यासिद्धिरित्यत आह—भवन्तावित्ति । त्यदादितः पूर्वं भवच्छब्दस्य पाठे 'त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते' इत्यनेन भवच्छब्दस्य शेषापत्तिरतो यथोक्तपाठ एव समादरणीयः, तथा सति पूर्वप्रदर्शितदोषापत्तिर्दुर्वारैवेति द्विपर्यन्तग्रहणं कर्त्तव्यमेवेति दिक् ॥

ननु बहुश्रेयसीशब्दान्ङौ तस्याऽऽमि बहुश्रेयसी आमिति स्थितौ 'ह्रस्वनद्यापो नुडि'ति नुडापत्तिर्दुर्वारेति शङ्कां समाधत्ते—**इह परत्वादिति** । आट्—नुटोः प्राप्तयोः परत्वादाटा नुटो बाधेन न नुट् । नचाऽऽटा नुटो बाधेऽपि बाधके प्रवृत्ते बाध्यस्य नुटः प्राप्त्या स स्यादिति वाच्यम् । (१)'सकृद्गति'न्यायेन बाधे पुनर्बाध्याप्रवृत्तेः । नचाऽगवादो नुगदीर्घत्वस्येति 'दीर्घोऽकित' इति सूत्रस्थभाष्यादागमाऽऽदेशयोरपि बाध्यबाधकभावाऽभ्युपगमेन निरवकाशेनामाऽऽटो बाधे पुनराटोऽप्राप्त्या नुटा सहाऽऽटः विप्रतिषेधविचारासङ्गतिः सर्वथैवेति वाच्यम् । निरवकाशरूपापवादशास्त्रप्रवृत्त्युत्तरमुत्सर्गशास्त्रप्रवृत्तौ बाधकाऽभावेनोक्तदोषाऽनवकाशादिति भावः ॥

ननु 'लक्षेर्मुट् च'त्यौणादिक ई प्रत्यये लक्ष्मीशब्दस्य निष्पन्नत्वात्, हल्ङ्याबि'त्यस्याऽप्राप्तिरित्याशयेनाह—**अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः, अतिलक्ष्मीरिति** । 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीषि तु सुलोप इष्ट एव, अत एव, लक्ष्मी लक्ष्मीर्हरिप्रियेत्युपपन्नमित्यलम् ।

**कुमारीति** । नन्वत्र क्यचोऽकारस्य स्थानिवद्भावादचूपरकत्वेन यणापत्तिर्दुर्वारा,

---

(१) सकृद्गतीति । सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेवेति तत्स्वरूपम् । विप्रतिषेधे सति सकृत् यद्बाधितं तत् गतौ प्राप्तौ सत्यामपि बाधितमेव न प्रवर्तत इत्यर्थः । उभयरूपेण पूर्वशास्त्रे संकोच इति यावत् । तत्र क्वचिच्चरितार्थयोरेकस्मिन्युगपदुभयोः कार्ययोरसम्भवेन बाधकाभावात्पर्यायेण तृजादिवच्छास्त्रद्वयप्रसङ्गे नियमार्थं विप्रतिषेधसूत्रमिति सकृद्गतिन्यायसिद्धिः ।

न च पदान्तविधौ तन्निषेध इति वाच्यम् । 'नः क्ये' इत्यनेन नान्तस्यैव पदत्वविधानादिहातथात्वेन निषेधाऽप्रवृत्तेः । न च 'क्वौ लुप्तं न स्थानिवदि'त्यनेन स्थानिवत्त्वनिषेधान्न यणापत्तिरिति वाच्यम् । 'सख्युर्गोमान् पदत्वञ्च क्वौ लुप्तमिति दर्शना'दित्यभियुक्तव्यवहारबलेनैतेष्वेव क्वौ लुप्तन्न स्थानिवदित्यस्य प्रवृत्तेरिति चेन्न । लुनिरित्यादिभाष्योदाहरणोपपत्त्यर्थमन्यत्राऽप्युक्तनिषेधप्रवृत्त्यङ्गीकारादिति भावः ॥

ननु 'अचि श्नु धात्वि'ति सूत्रादनुवृत्तस्य धातुपदस्याऽऽवृत्त्योभयोर्विशेषणत्वमङ्गस्य संयोगस्य च तत्र संयोगविशेषणत्वे फलमाह—**धातुना संयोगस्य विशेषणादिति** । तस्याङ्गविशेषणत्वफलन्तु हरिं, हरी हरीनित्यादिसिद्धिः, अन्यथाऽङ्गस्य धात्ववयवसंयोगपूर्वभिन्नेवर्णान्तत्वेन प्रध्यं प्रध्य इत्यादाविव पूर्वरूपं पूर्वसवर्णदीर्घञ्च बाधित्वा यणापत्तिः स्यात् । यदि चाऽसंयोगपूर्वस्येत्यस्य धात्ववयवसंयोगभिन्नपूर्व इत्यर्थस्तद्भिन्नस्य च धात्ववयवस्यैव ग्रहणं तदा नोक्तस्थले दोषः, अत एव च उदियाविल्यादौ न दोष इति भावः ॥

ननु गतिकारकेतरपूर्वपदकस्यैव यणो निषेधात्तत्पूर्वपदस्य तूक्तकार्यस्येष्टत्वेन दुर्धियो वृश्चिकभिय इत्यादौ गतिकारकपूर्वत्वेन कुतो न यणित्याशङ्कते—**कथन्तर्हीति** । समाधत्ते—**दुःस्थिता धीर्येषामिति** । दुरित्यस्य दुःशब्दोपात्तदुष्टत्वस्येत्यर्थः । धीशब्दं प्रतीत्यस्य धीशब्दार्थं प्रतीत्यर्थः । यत्क्रियायुक्ता इत्यस्य यस्य धातोर्वाच्यया क्रियया युक्ता इत्यर्थः । एवञ्च यद्धातुवाच्यक्रियया युक्ताः प्रादयस्तद्धातुवाच्यक्रियाम्प्रत्येव तेषां गतित्वमिति फलितम् । तथा च प्रकृते दुरित्यस्य स्थितिक्रियाम्प्रत्येव गतित्वेन धीशब्दार्थम्प्रति तत्त्वाभावान्न पूर्वत्र यणापत्तिः । एवं बुद्धिकृतमपादानत्वमादाय "ध्रुवमपायेऽपादानमि'त्यनेनैवेष्टसिद्धिमासाद्य 'भीत्राऽर्थानामि'त्यस्य भाष्यकृता प्रत्याख्यातत्वेनाऽसत्त्वात्तादृशाऽपादानत्वाऽविवक्षणेन कारकपूर्वत्वाभावात्परत्राऽपि नोक्ताऽऽपत्तिः, तत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठ्या समासः, अथवा वृश्चिकसम्बन्धिनी भीः वृश्चिकभीरित्युत्तरपदलोपसमासो बोध्य इति भावः ॥

ननु सखायमिच्छति सखीयति ततः क्विपि 'अतो लोपः' इत्यल्लोपे 'लोपो व्योर्वली'ति यलोपे च सखीरित्यस्य सिद्धिः, न च यलोपस्य स्थानिवत्त्वेन स न स्यादिति वाच्यम् । यलोपे तन्निषेधात् । न च 'वेरपृक्त' इत्यनेन क्विपि लोपे वल्परत्वाभावेन यलोप एव कथमिति वाच्यम् । उक्तसूत्रविहितलोपात्प्राग्वलि लोपस्यैवेष्टत्वात् । न चाऽल्लोपस्य स्थानिवत्त्वादच्परत्वेन 'एरनेकाच' इति यणादेशो दुर्वारः, न चाऽन्तर्वर्तिन्या विभक्त्या सखिशब्दस्य पदत्वेन 'न पदान्ते'ति सूत्रेण पदान्तविधौ यणि कर्त्तव्ये

स्थानिवत्त्वनिषेधाद्दोषापत्तिलेशोऽपीति वाच्यम् । 'नः क्ये' इति नियमेन क्वचित् नान्तस्यैव पदत्वादिहोक्तनिषेधाऽप्रवृत्त्या स्थानिवत्त्वस्य दुर्वारतयोक्तापत्तेस्तादवस्थ्यात् परपदस्थाऽऽदेशस्यैव तेन स्थानिवत्त्वनिषेधाच्च । न चाऽन्तरङ्गपरिभाषयाऽन्तरङ्गे यणि कर्त्तव्ये क्विबपेक्षत्वेन बहिरङ्गक्यसम्बन्धियलोपस्याऽसिद्धत्वेन स्थानिवत्त्वनिषेधमन्तराऽप्युक्तदोषो न स्यादिति वाच्यम् । उक्तपरिभाषाया अनित्यत्वेन दोषस्य दुरुद्धरत्वादित्यत आह—**क्वौ लुप्तं न स्थानिवदिति** । लुप्तमिति 'नपुंसके भावे क्तः' लोप इत्यर्थः । गोमत्यतेः क्विपि गोमानिति भाष्योक्तेरेतदपि क्वचित्स्वीकर्तव्यम् । सार्वत्रिकन्तु क्वौ विधिं प्रति न स्थानिवदित्येवेति दिक् ।

ननु 'खत्यादि'ति सूत्रे प्रयोगस्थस्य विकृतस्याऽनुकरणेनाऽविशेषाद्ध्रस्व-दीर्घयोरुभयोर्ग्रहणमित्याशयेनाह—**दीर्घस्यापि ग्रहणात्ख्यत्यादित्युत्वमिति** ।

लुनिरित्यादेः 'ल्वादिभ्यश्च' 'पचो वः' 'शुषः कः' 'प्रस्त्योऽन्यतरस्यामि'त्येतैः सूत्रैर्विहितेषु नत्व-वत्व-कत्व-मत्वेषु ततः क्यचि अल्लोपे यलोपे च सिद्धिः ॥

ननु व्युत्पत्तिपक्षे तृन्नन्तत्वात्तृजन्तत्वाद्वा दीर्घे सिद्धे नप्त्रादिग्रहणं व्यर्थमित्यत आह—**सूत्रे नप्त्रादिग्रहणं नियमार्थमिति** । तथा चायं नियमः, उणादिनिष्पन्नानां तृन्तृच्प्रत्ययान्तानां संज्ञाशब्दानां दीर्घश्चेन्नप्त्रादीनामेवेति, तेनाऽन्येषामुणादिनिष्पन्नानां संज्ञाशब्दानां पितृमातृप्रभृतीनां नेति, नेष्ट्रादीनामप्युणादिनिष्पन्नत्वादिरूपहेतोः सत्त्वेन दीर्घसिद्धिः । अव्युत्पत्तिपक्षे तु नप्त्रादिग्रहणस्य विध्यर्थत्वमेव, अत्र पक्षे पितृमातृप्रभृतीनामत्र सूत्रे पाठाऽभावादेव दीर्घशङ्कानिरासः । ननु उद्गातृशब्दस्यौणादिकतृप्रत्ययान्तत्वेऽपि नियमेन व्यावृत्त्या दीर्घो न स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**भाष्यप्रयोगादिति** । उद्गातार इति समर्थसूत्रस्थभाष्यप्रयोगादित्यर्थः, एवञ्चोद्गातृशब्दस्योणादिषु निष्पत्तिरप्रामाणिकेति भावः । केचित्तु उद्गातृशब्दस्यौणादिकत्वमङ्गीकृत्य भाष्यप्रयोगबलेनैव दीर्घमभिलष्यन्तीति तन्न, भाष्यकृताऽन्यप्रयोगस्योदाहरणत्वेन दानेऽप्यस्य भाष्यप्रयोगत्वाभावादिति दिक् ॥

ननु क्रोष्टु आमिति स्थितौ नुट्-तृज्वद्भावयोः प्राप्तयोः 'विप्रतिषेधे परं कार्यमि'ति सूत्रबलेन तृजेव स्यात् । न च तृजपेक्षया नुटो नित्यत्वादेष एव स्यादिति वाच्यम् । कृते तृज्वद्भावे 'सन्निपात'परिभाषया नुटोऽप्राप्तया तस्य नित्यत्वाऽभावात् । एवञ्च परत्वात्पाक्षिकतृजापत्तिर्दुर्वारैवेत्याशयेनाऽऽशङ्कते—**परत्वात्तृज्वद्भावे प्राप्त इति** । समाधत्ते—**"नुमचिरेति"** । नुम-चिर-तृज्वद्भावान्बाधित्वा पूर्वविप्रतिषेधेन नुडेव भवतीति तदर्थः । नुटा नुमादिबाधस्य फलानि वारीणाम्, तिसृणाम्, क्रोष्टूनामि-

त्यादौ नुम्भावतृज्वद्भावाऽभावरूपाणि बोध्यानि। न च 'अचिर ऋतः' इत्यस्यापवादत्वेन बाध्यसामान्यचिन्ताऽऽश्रयणे स्वविषये प्राप्तस्य सर्वस्याऽपि बाधकत्वम् अत एव गुणदीर्घोत्वानामपवाद इति सङ्गच्छते। एवञ्च विशेषाऽपदेशेन नुटोऽपि बाधादुत्सर्गाऽपवादयोरसमानबलवत्त्वेन विप्रतिषेधविचारोऽसङ्गत इति वाच्यम्। एतदंशे 'न तिसृ' इति ज्ञापकबलेन नुट् न तु विप्रतिषेधेनेति तृज्वत्सूत्रे भाष्योक्तेः। एवन्तर्हि नुम्-तृज्वद्भ्यामित्येव सुवचमिति भावः।

ननु दीर्घऋकारान्तदीर्घलृकारान्तयोः प्रायः प्रयोगाऽभावादनुकरणशब्दं निरूपयति- **कॄ तॄ इत्यनयोरनुकरणे त्विति।** 'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे' इतिसूत्रे एतेभ्य इत्यत्र त्यदाद्यत्वकरणादनुकरणस्य प्रकृतिवत्त्वमित्येतत्सिद्धमाह-**प्रकृतिवदनुकरणमिति।** अनुकरणस्य शब्दमात्रोच्चारणे तात्पर्यविषयत्वादनुकार्यशब्दस्वरूपमात्रबोधकत्वम्। प्रकृत्याऽनुकार्येण तुल्यं वर्तते इति तदर्थः। तत्रैवैकशेषाऽदर्शनात्क्षिय इत्यादौ धात्वनुकरणे विभक्तिकरणाच्च वैकल्पिकत्वमित्यत आह—**वैकल्पिका ऽतिदेशादिति।** (१)अनुकरणस्याऽनुकार्यशब्दरूपार्थेनार्थवत्त्वात्प्रातिपदिकत्वेन ततः सुबुत्पत्तिः सुलभा। नचैवं 'भू सत्तायामि'त्यादावपि विभक्त्यापत्तिरिति वाच्यम्। एतन्निर्देशादेव क्वचिदनुकरणाद्विभक्त्यनुत्पत्तेरपि स्वीकारात्। 'झलां जश् झशी'त्यादौ जश्त्वाभाववद्गवित्ययमाहेत्यत्र वान्तस्यैवानुकरणादनुकार्यस्वरूपस्याविकृतत्वान्न वलोप इत्यलम्।

ननु इना सह वर्तते इति विग्रहे 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहौ 'वोपसर्जनस्ये'त्यनेन सहस्य सभावे 'आद्गुणः' इति गुणे से इति सिद्ध्यति, अत्रैकादेशस्य पूर्वान्तवत्त्वादव्ययत्वेन सुपो लुक् दुर्वार इति चेन्न। अव्ययमिति महासंज्ञया अन्वर्थत्वादुपसर्जनेऽव्ययत्वाऽभावेनाऽदोषात्। न चैवमपि सह इ इति स्थितावन्तरङ्गत्वाद्गुणे एकादेशस्य परादिवद्भावे सहशब्दाभावात्पूर्वान्तवद्भावे तु सहशब्दस्योत्तरपदत्वाऽभावादुभयत आश्रयणेऽन्तादिवद्भावस्याऽनिष्टत्वाच्च सहशब्दस्य सादेश एव न स्यात्किञ्च सादेशात्प्रागन्तरङ्गत्वाद्गुणे ततः सादेशेऽदन्तत्वस्यैव सम्भवादेकारान्तत्वाऽभावेन नोक्तापत्तिलेशोऽपीति वाच्यम्। 'नेन्द्रस्य परस्ये'त्युत्तरपदवृद्धिप्रतिषेधेन प्राक् पूर्वोत्तर-

---

(१) अनुकरणस्येति। अनुकार्यानुकरणयोर्भेदेऽनुकरणेन बोधार्थं शक्तः स्वीकर्त्तव्यत्वाच्छक्तिमत्स्वरूपार्थवत्त्वेनैव सर्वमुपपन्नम्। अत एव 'भुवो वुगि'त्यादेः सङ्गतिः। तयोरभेदे तु, अनुकार्यनिरूपितशक्त्यैवाऽनुकरणेनाऽपि बोधो भवतीत्यनुकरणस्य शक्तिमत्स्वरूपार्थवत्त्वाऽभावेनाऽप्रातिपदिकत्वान्न विभक्त्युत्पत्तिः अत एव, भू सत्तायामित्यादि सङ्गतमिति तदाशयः॥

पदनिमित्तकं कार्यं तत एकादेश इति सामान्यापेक्षज्ञापनादेकादेशात्प्राक् सादेशे तदुत्तरमेकादेशे पूर्वप्रदर्शिताऽऽपत्तेस्तादवस्थ्यात् । एवञ्च प्रागुक्तसमाधानेनैव दोषव्यावृत्तिरित्यवधेयम् ॥

ननु से शब्दाज्जसि से असिति स्थितावेकारस्य पूर्वान्तवद्भावेन पदान्तत्वादयादेशं बाधित्वा 'एङः पदान्तादति' इति पूर्वरूपाऽऽपत्तिरिति चेन्न । अस्य 'थासः से' 'ईशः से' अत्रत्य सेशब्दाऽनुकरणत्वादेकारस्य पदान्तत्वाऽभावेनोक्तापत्तेरभावादिति भावः ॥

ननु ओकारान्तात्तद्धितस्य शसोऽसम्भवात्सुप एव तस्य सम्भव इत्याशयेनाह— **शसा (१) साहचर्यादिति ।** कैयटस्तु तद्धितस्यापि शसः सत्त्वात्तेनाऽपि साहचर्यग्रहणस्य कर्त्तुं शक्यत्वेन शसा साहचर्यादमः सुप एव ग्रहणे किं विनिगमकमिति सन्दिह्याऽचीत्यधिकारादजादिशपः सुप एव सम्भवो न तु तद्धितस्येति तदाशयमभिहितवान्, तेन, अचिनवम्, असुनवमित्यादावमिपरे नात्वापत्तिर्दोषः । चिनोतेः, सुनोतेश्च लङि, मध्ये श्नौ लकारस्थानिकस्य मिपः 'तस्थस्थमिपामि'त्यमादेशे उवङि चोक्तप्रयोगद्वयोपपत्तिरिति भावः ॥

ननु गो अमिति स्थितावमः सर्वनामस्थानत्वेन 'गोतो णिदि'ति णिद्वद्भावे, आत्वात्प्राक्परत्वाद्वृद्धिः स्यादिति चेन्न । अनवकाशेनाऽऽत्वेन वृद्धेर्बाधादित्यत आह— **ओतो णिदिति वाच्यमिति ।** गोतो णिदित्यत्र गकारस्याऽविवक्षितत्वेन लब्धमिदम्, तेन चित्रगुरित्यत्र नोक्तदोषः, अङ्गाधिकारे तदन्तविधेः सत्त्वेन गोशब्दान्तात्परस्य सर्वनामस्थानस्य णिद्वद्भाव इत्यर्थे प्रकृते स्थानिवत्त्वाद्गोशब्दान्तत्वेन दोषः स्पष्ट एव, उक्तवचनाऽङ्गीकारे तु चित्रगुरित्यादावोकारान्तत्वाऽभावादल्विधौ स्थानिवत्त्वनिषेधाच्च न दोष इति प्राञ्चः ।

**नव्यास्तु—**'गोतो णिदि'ति सूत्रे भाष्ये गकारस्य प्रत्याख्यानादुक्तवचनस्याऽसम्भवः । नचैवं चित्रगुरित्यादौ दोषस्य तादवस्थ्यमिति वाच्यम् । गोः पूर्वणित्वाऽत्वस्वरेषु स्थानिवत्त्वप्रतिषेधेन गोशब्दाऽभावेनैवाऽदोषात् । न च हे चित्रगो इत्यादौ दोष एवेति वाच्यम् । (२)'लक्षणप्रतिपदोक्त' परिभाषयैवाऽत्रत्यदोषस्य व्यावृत्तेः । नन्वोक्त-

---

(१) साहचर्यादिति । सहचरितासहचरितयोर्मध्ये सहचरितस्यैव ग्रहणमिति परिभाषयेत्यर्थः ।

(२) लक्षणप्रतिपदोक्तेति । लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणमिति तत्स्वरूपम् । लाक्षणिकप्रतिपदोक्तशब्दयोर्मध्ये तत्तच्छब्दानुवादविहितरूपप्रतिपदोक्त-

सूत्रघटकगकारस्य विवक्षितत्वेन गोशब्दात्परस्य सर्वनामस्थानस्यैव णिद्वद्भावविधानेन प्रकृतेऽतथात्वेन सुद्यौरिति न स्यादिति वाच्यम् । 'द्योः सर्वनामस्थाने णित्वं वक्तव्यमि'ति 'औतोऽम्शसोरि'ति सूत्रभाष्योक्तवार्त्तिकेनैव सिद्धेर्द्याद्वित्याहुरिति दिक् ॥

ननु उक्तरीत्या लब्धे 'ओतो णिदिति वचने' विहितविशेषणाऽभ्युपगमे ओकारान्ताद्विहितस्य सर्वनामस्थानस्य णिद्वद्भाव इति व्याख्यानात्ताऽऽज्ञद्यदोष इत्यत आह—**तेनेह न हे भानो इति**। नन्वत्र 'सम्बुद्धौ शाकल्यस्ये'ति सूत्रारम्भसामर्थ्यान्न णिद्वद्भावापत्तिरित्यत आह—**हे भानव इति**। इत्यजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् ॥

---

## अथ अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

ननु सम्बुद्धौ प्रतिपदोक्तत्वेन शीघ्रोपस्थितकत्वाद्धल्ङ्यादिलोपात्प्रागेवैत्वे तत्र दीर्घाऽऽकारप्रश्लेषेण स्थानिवत्त्वाऽप्राप्त्या तेन लोपाऽप्राप्तावनेनैव लोपसम्भव इत्यत आह—**एङ्ह्रस्वादिति**। न च (१)'सन्निपात'परिभाषाबलात्सम्बुद्धिनिमित्तीकृत्य जायमानस्यैत्वस्य सम्बुद्धिलोपनिमित्तकत्वाऽभावेन लोपो न स्यादिति वाच्यम् । तस्या (२)अनित्यत्वेनाऽत्राऽप्रवृत्त्या सम्बुद्धिलोपे बाधाऽभावादिति भावः ।

ननु रमायै इत्यादौ यत्केनचिदुक्तं 'आटश्चे'ति वृद्धिरिति तन्न याट्-स्याटोष्टकारस्य समुदायाऽनुबन्धत्वाट्टकारेत्संज्ञकाऽऽशब्दाऽभावादुक्तसूत्रप्रवृत्त्यसम्भवादित्यत आह-**'वृद्धिरेचि' रमायै इति**।

ननु आबन्तस्य गणे पाठाऽभावादसर्वनामत्वेन सर्वासामित्यादौ सुण् न स्यादित्याऽऽशङ्क्य समाधत्ते—**एकादेशस्य पूर्वाऽन्तवत्त्वेन ग्रहणादिति**। एकादेशपूर्वस्थानिघटितसमुदायवृत्तिसर्वनामत्वस्यैकादेशविशिष्टेऽतिदेशेनाऽऽबन्तस्य सर्वेत्यस्य सर्वनामत्वात्सुलभ एव सुडितिभावः । एवं सर्वस्यामित्यत्राऽपि बोध्यम् । नचोक्तरीत्याऽऽबन्तस्य सर्वनामत्वेऽप्येकादेशनिष्पन्नस्याऽऽप्त्वाभावादाबन्तत्वमेव न स्यात् । अत एव, खट्वेत्यादौ परादिवद्भावेनाऽऽप्त्वमाश्रित्याऽऽबन्तत्वाद्धल्ङ्यादिति सोर्लोपः

---

स्यैव ग्रहणं शीघ्रोपस्थितिकत्वान्नतु लाक्षणिकस्य, तस्य लक्षणानुसन्धानपूर्वकत्वेन विलम्बोपस्थितिकत्वात् शीघ्रोपस्थितिकत्वं विलम्बोपस्थितिकत्वञ्चैतत्परिभाषाबीजम्। 'सुपश्च महाव्याहृतेरि'ति सूत्रे महाव्याहृतिग्रहणादनित्या चेयम् ।

(१) सन्निपातेति । सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येति स्वरूपम् । उपजीव्यविरोधो न न्याय्य इति न्यायमूलैषा । (२) अनित्यत्वेनेति । अनित्यत्वे प्रमाणञ्च, 'कष्टाय क्रमणे, न यासयो'रित्यादिनिर्देश एवेति बोध्यम् ।

प्रकृते उभयत आश्रयणेऽन्तादिवत्त्वाऽभावात्परादिवद्भावेनाऽऽबन्तत्वमानेतुमशक्य-मिति वाच्यम् । उभयत आश्रयणे नान्तादिवदित्यस्य सिद्धान्तिभाष्यसम्मतत्वाभावात्परादिवद्भावेनाप्याश्रयणादाबन्तत्वस्य सुलभतया सर्वं सूपपन्नमित्यलम् ॥

ननु तत्तच्छब्दाऽनुवादेन विहितत्वरूपप्रतिपदोक्तत्वस्य समासे सत्त्वाच्छीघ्रोपस्थितिकत्वेन तस्यैव ग्रहणं, द्वितीयस्य तु विलम्बोपस्थितिकत्वाद्ग्रहणं न स्यादित्याह—'दिङ्नामान्यन्तराले इति (१) प्रदिपदोक्तदिक्समासस्य ग्रहणान्नेहेति ॥

योत्तरेति । यत्तच्छब्दाभ्यामुद्देश्य–विधेयत्वप्रतीत्या योत्तरात्वप्रकारकज्ञान-विशेष्या सा प्रसिद्धपूर्वा यस्या इति तदर्थः । तथा च, गुणवाचकत्वादुत्तराशब्दस्य पूर्वनिपातो बोध्यः ॥

ननु उक्तप्रतिपदोक्तसमासस्य बहुव्रीहित्वादेव बहुव्रीहिलाभे सूत्रे तद्ग्रहणं व्यर्थ-मित्याशङ्कायामाह—बहुव्रीहिग्रहणं स्पष्टार्थमिति ॥

ननु 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इति सूत्रभाष्येऽम्बार्थं द्व्यक्षरं यदीति पाठेन द्व्यच्काऽम्बार्थकस्यैव ह्रस्व इति नियममाश्रित्य "डलकवतां ह्रस्वो ने"त्यस्य प्रत्याख्यातत्वात्फलभेदाऽभावाय सामान्यतोऽपि वार्त्तिकमसंयुक्तविषयकम्, अन्यथा, वार्त्तिकसत्त्वेऽक्केऽल्ले प्रत्याख्याने अक्क, अल्ल, इति फलभेदः स्पष्ट एवेत्याशयेनाह—असंयुक्ता ये डलकास्तद्वतां ह्रस्वो नेति । द्व्यक्षरं यदीत्यस्याऽऽज्ञत्वाद्द्व्यक्षराम्बार्थकान्तस्याऽपि ह्रस्व इत्यर्थे जगदम्बेत्यादौ न ह्रस्वाऽनापत्तिरिति दिक् ॥

यत्केचिदाहुर्लोकरीत्या जरसादेशात्प्राक् विभक्त्यादेशस्येष्टत्वेनाऽऽदौ श्यादेशं विधायैनातोरिकारदीर्घोच्चारणसामर्थ्याज्जरसि कर्तव्ये सन्निपातपरिभाषाया अप्रवृत्त्या जरसादेशे जरसीतिरूपमिति तद्विरुद्धम्, उक्तपरिभाषाऽनित्यत्वज्ञापकप्रत्याख्यानपर-भाष्यादिति तेषामुक्तिर्निर्मूलिकैवेति भावः ॥

ननु जरसादेशविभक्त्यादेशयोर्युगपत्प्राप्तौ परत्वाज्जरसि तस्य स्थानिवद्भावेना-ऽऽबन्तत्वमाश्रित्य 'औङ आपः' इत्यादिमूलोक्तपञ्चसूत्रीविहितैस्तैस्तैः कार्यैर्भवितव्य-न्तथा नस—निश्—पृत्स्वपीतीत्थं सन्दिह्याह—यद्यपि जरसादेशस्येति । अत्रा-ऽल्विधौ स्थानिवद्भावाऽप्रवृत्त्याऽऽबन्तत्वाऽभावान्नोक्तकार्याणि भवन्तीति । नचाप्त्वम-ल्मात्रवृत्ति नह्याबन्तत्वन्तथेति प्रकृतेऽतिदेशादन्त्यस्याऽऽश्रयणे उक्तनिषेधाऽप्रवृत्त्या स्थानिवत्त्वस्य दुर्वारत्वादुक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यम् । सकलापघटितसूत्रेषु आ

---

(१) प्रतिपदोक्तदिक्समासस्य ग्रहणादिति । लक्षण–प्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणमिति परिभाषयेति भावः ।

आविति प्रश्लेषादाकारूपस्यैवाऽऽटो ग्रहणादिहाऽतिदेशेनाऽऽगच्छताऽऽगमेनाऽक्षतेरिति भावः। हल्ङ्यादिसूत्रेऽप्येवमाऽऽरूपस्याऽप ईरूपस्य ङीत्यस्य प्रश्लेषेण ग्रहणादतिखट्वो निष्कौशाम्बिरित्यादेः सिद्धिम्मत्वा दीर्घग्रहणं प्रत्याख्यातम्। नच प्रश्लेषेणाऽऽरूपस्याऽऽटो ग्रहणेऽप्यतिखट्वायेत्यत्र श्रूयमाणाऽऽकारेऽतिदेशेनाऽऽपत्समानीय याडा भाव्यमिति वाच्यम्। 'याडापः' इति सूत्रस्याऽऽपः सामानाधिकरण्याऽनुरोधेनाऽधिकृतमङ्गस्येति पदं पञ्चम्यन्ततया विपरिणम्य उपसर्जनस्त्रीप्रत्यये तदादिनियमे प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदादिपदमुपस्थाप्य, आबन्ततदाद्यभिन्नादङ्गात्परस्य ङितो याट् स्यादित्यर्थे यदाबन्ततदादि खट्वेति न तदङ्गं यदङ्गमतिखट्वेति न तदाबन्ततदादिरिति सूत्राऽप्राप्त्या याटोऽप्राप्तेरिति भावः। प्रत्ययग्रहणपरिभाषयाऽऽबन्तस्य ग्रहणे तेनाऽङ्गविशेषणाद्द्वितीयतदन्तविधानाच्चाबन्तान्तं यदङ्गमित्यर्थेऽतिखट्वायेत्यत्र तदवस्थैव याडापत्तिरिति वाच्यम्। अङ्गस्य विशेषणत्वेनाऽङ्गाभिन्नं यदाबन्ततदादि ततः परस्येत्यर्थस्यैव सम्भवेनोक्तापत्तेरयोगात्। न च स्त्रीप्रत्ययमात्रे शास्त्रीयोपसर्जनत्वाभावात्कथमत्र तदादिविधिरिति वाच्यम्। शास्त्रीयोपसर्जनत्वाऽभावेऽपि लौकिकोपसर्जनत्वस्य सत्वात् अस्यैव च ग्रहणात्पूर्वोक्तस्य तस्य स्त्रीप्रत्ययमात्रेऽसम्भवात्। न च स्त्रीप्रत्ययान्ते शास्त्रीयोपसर्जनत्वमस्तीति वाच्यम्। तत्र तत्सत्त्वेऽपि तेन प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदादिनियमाऽप्रसक्तेः। **लौकिकोपसर्जनत्वञ्च**—स्वान्तपर्याप्तशक्तिनिरूपकाऽर्थनिष्ठविशेष्यतानिरूपितप्रकारतानिरूपितस्त्रीत्वनिष्ठाऽवच्छेदकताप्रयोजकत्वम्, इत्थमेतत्समन्वयप्रकारः, तथा हि, स्वपदेन स्त्रीप्रत्ययस्य ग्रहणं तदन्तमतिखट्वेति तत्पर्याप्ता शक्तिः स्त्रीत्वविशिष्टखट्वाकर्मकाऽतिक्रमणकर्तृत्वावच्छिन्ननिरूपिता तन्निरूपकोऽर्थः स्त्रीत्वविशिष्टखट्वाकर्मकाऽतिक्रमणकर्तृत्वरूपस्तन्निष्ठविशेष्यतानिरूपितप्रकारता अतिखट्वनिष्ठा तन्निरूपितस्त्रीत्वनिष्ठाऽवच्छेदकताप्रयोजकत्वं स्त्रीप्रत्ययस्यास्तीति लक्षणसमन्वयः। (१) **नव्यास्तु**—आकारस्य लाक्षणिकत्वेन खट्वायै इत्यादौ न याडिति स्पष्टम्भाष्ये। न च सूत्रस्य निशायै इत्यादौ चारितार्थ्येन खट्वायै इत्यत्र याट् न स्यादिति वाच्यम्। लक्षणप्रवृत्तिं विना यस्य रूपस्य न सम्भवस्तस्यैव लाक्षणिकस्य लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषाविषयत्वादिति वदन्तीत्यलम्॥

**गुणदीर्घोत्वानामपवाद इति**। अयम्भावः, अस्ति हि शास्त्रे पक्षद्वयम् बाध्यविशेषचिन्ता बाध्यसामान्यचिन्ता चेति, तत्र मद्विषये ये ये प्राप्तास्तेषामन्यतमो बाध्य इत्याद्यपक्षस्वरूपम्, मद्विषये यद्यत्प्राप्तं तत्सर्वं बाध्यमिति द्वितीयपक्षस्वरूपम्। प्रकृते

(१) नव्यास्त्विति। शेखरकाराः।

द्वितीयपक्षाऽऽश्रयणे तस्य (१)"मध्येऽपवादाः" इति न्यायेन दीर्घोत्वयोरेवाऽपवादत्वं स्यान्न तु गुणस्येति नास्येहाऽऽश्रयणम् , अस्य च पक्षद्वयस्य जाति-व्यक्तिपक्षवल्लक्ष्याऽनुरोधाद्व्यवस्था । न च रादेशस्य प्रियतिसेत्यादौ सावकाशत्वादपवादकत्वं कथमिति वाच्यम् । यथा गतार्थत्वात् । एवञ्च रादेशेन तिस्रस्तिष्ठन्तीत्यत्र 'जसि चे'ति गुणस्य, तिस्रः पश्यन्तीत्यत्र 'प्रथमयोरि'ति पूर्वसवर्णदीर्घस्य, प्रियतिस्रः स्वमित्यत्र 'ऋत उदि'-त्युत्वस्य बाध इत्यलम् ॥

ननु स्त्रियामित्यस्य सामीप्यादङ्गत्रिचतुरोश्च विशेषणत्वसम्भवस्तत्राऽङ्गविशेषणत्वे स्त्रियां वर्तमानं यत् त्रिशब्दान्तं चतुःशब्दान्तञ्चाङ्गं तदवयवयोर्निर्दिश्यमानयोः त्रि—चतुश्शब्दयोस्तिसृ-चतस्रादेश इत्यर्थे प्रियास्त्रयस्त्रीणि वा यस्येति विग्रहे प्रियत्रिरित्यत्र त्रिशब्दान्ताङ्गस्य स्त्रियां वर्तमानत्वेन तिस्रादेशापत्तिः त्रिचतुरोर्विशेषणत्वे तूक्तविग्रहे तयोः स्त्रियां वर्त्तमानत्वाभावान्नोक्तापत्तिः । प्रमाणञ्चात्र 'श्रुताऽनुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलवानि'ति न्याय एवेत्याशयेनाह—**स्त्रियामित्यस्य त्रिचतुरोविशेषणत्वान्नेहेति** ॥

ननु प्रियास्तिस्रो यस्य तत्कुलमिति विग्रहे त्रिशब्दस्य स्त्रियां विद्यमानत्वेन तिस्रादेशे प्रियत्रीति रूपन्न स्यादित्यत आह—**स्वमोर्लुका लुप्तत्वेनेति** । अयम्भावः, प्रियत्रिशब्दात्परस्य सोः 'स्वमोर्नपुंसकादि'ति लुकि तस्य 'न लुमताऽङ्गस्ये'ति निषेधात् प्रत्ययलक्षणाऽभावेन विभक्तिपरत्वाऽभावान्न तिस्रादेश इति उक्तनिषेधसूत्रस्याऽनित्यत्वे तु प्रत्ययलक्षणेन विभक्तिपरत्वात्तिस्रादेशे प्रियतिसृिति रूपं सम्भवत्येव, एतदनित्यत्वे प्रमाणन्तु 'इकोऽचि विभक्तावि'त्यत्राऽज्ग्रहणमेव, तथा हि, अजादिभिन्नविभक्तिपरतो नुमोऽभावाय सूत्रे तद्ग्रहणं परञ्च भ्यां-भ्यसादिषु सत्यपि नुमि 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'ति नलोपे विकृतरूपाऽभावाद्व्यर्थमज्ग्रहणं ज्ञापयति 'न लुमताऽङ्गस्ये'ति सूत्रमनित्यमिति । न च 'न ङि सम्बुद्ध्योरि'ति निषेधेन सम्बुद्धौ नलोपाऽसम्भवात्तत्र नुमापत्तिर्व्यावृत्त्यर्थमचीत्यस्याऽऽवश्यकत्वमिति वाच्यम् । सम्बुद्धेर्लुका लुप्तत्वेन विभक्तिपरकत्वाऽभावादेव तत्र नुमोऽप्रवृत्तेः । न च तत्राऽपि प्रत्ययलक्षणेन विभक्तिपरत्वसम्भवात्प्राप्तनुम्व्यावृत्त्यर्थं तदावश्यकमिति वाच्यम् । 'न लुमताऽङ्गस्ये'त्यस्याऽनित्यत्वं विना प्रत्ययलक्षणाऽप्रवृत्तेः । नचोत्तरार्थत्वेन ज्ञापकत्वन्तस्य न

---

(१) मध्येऽपवादा इति । **मध्येऽपवादाः पूर्वान्विधीन्बाधन्ते नोत्तरान् इति तत्स्वरूपम् । मध्यवर्तिनोऽपवादाः पूर्वोपस्थितान् विधीनेव बाधन्ते न तु पश्चादुपस्थितान् विधीनित्यर्थः । पूर्वोपस्थितबाधेन नैराकांक्ष्यमस्या बीजम् ॥**

स्यादिति वाच्यम् । तथा सति लाघवात्तस्यैव कर्तव्ये इह कारके वैयर्थ्यस्य स्पष्टत्वेन ज्ञापकत्वस्य युक्तत्वात् । एवञ्चास्योक्तनिषेधशास्त्रस्याऽनित्यत्वज्ञापनात्सम्बुद्धौ नुम्व्यावृत्त्यर्थमावश्यकत्वेन स्वांशे चारितार्थ्यमिति भावः । न चाऽनित्यत्वस्य सम्बुद्धिगुणमात्रविषयकत्वे कथं प्रकृते निर्वाह इति वाच्यम् । तद्द्वयाऽनुरोधात्क्वचिदन्यत्रापि तदभ्युपगमेनेष्टसिद्धेः । अत एव-कैयटेनाऽपि मूलोक्तरूपद्वयमङ्गीकृतमिति दिक् ।

रादेशात्पूर्वविप्रतिषेधेन नुमिति । प्रियतिस्रणी प्रियतिसृणीति भाष्योदाहरणमेवाऽत्र प्रमाणम् । अथ वा 'न तिसृ चतसृ'ति ज्ञापकात्सामान्यतो नाऽऽमवर्जविषये रादेशप्रवृत्तिः, अत एव प्रियतिसृणामित्यत्र नुट्, अन्यथा, रादेशे ह्रस्वान्तत्वाऽभावात्स न स्यादिति भावः ।

ननु द्विशब्दादौ विभक्तिसमभिव्याहारे द्वि औ इति स्थितौ 'त्यदादीनामः' इत्यत्वे टापि 'औङ आपः' इति श्यादेशे गुणे द्वे इति सिद्ध्यति, अत्र 'सन्निपात' परिभाषया विभक्तिसन्निपातेन जायमानस्याऽत्वस्य टाब्द्वारा विभक्तिविघाते निमित्तत्वाऽभावेन टापोऽप्रवृत्त्या नेष्टरूपस्य सिद्धिरिति चेन्न । 'न यासयोरि'ति निर्देशेनोक्तपरिभाषाया अप्रवृत्तेः । नचाऽन्तरङ्गपरिभाषयाऽन्तरङ्गटाप्दृष्ट्या बहिरङ्गाऽसिद्धत्वाट्टाप् न स्यादिति वाच्यम् । अस्या अप्युक्तनिर्देशेनैवाऽनित्यत्वात् । न च (अङ्गवृत्त) परिभाषया टाब् नेति वाच्यम् । 'द्वयोरेकस्य निर्द्धारणे' इत्यत्रैत्वनिर्देशेन तदनित्यत्वेनाप्रवृत्तेः । एवञ्च बाधकाऽभावादुक्तरीत्या रूपसिद्धिरित्याशयेनाह—द्वेरत्वेसत्याबिति ।

विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाऽग्रहणमिति । विभक्तिनिमित्तके कार्ये कर्त्तव्ये लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्टस्य ग्रहणन्नेति तदर्थः । अत्र(१) घटघटी ग्रहणेन लिङ्गविशिष्टपरिभाषाऽनित्यत्वमेव मूलमिति भावः ॥

ननु ह्रस्ववाक्येऽप्यस्त्रीत्यस्य सम्बन्धात् त्रिशब्दावयवभिन्नह्रस्वेचर्णान्तस्य नदीसंज्ञेत्यर्थे कथमतिस्त्रियै इत्यत्र नदीसंज्ञाप्राप्तिरित्याशयेनाह—अस्त्रीति स्त्रिवेति । अत्र हेतुमाह—तत्सम्बद्धस्यैवाऽनुवृत्तेरिति । इयङुवङ्स्थानिसम्बद्धस्यैवाऽनुवृत्तेरित्यर्थः । अस्त्रीत्यत्र न प्रसज्यप्रतिषेधो वाक्यभेदापत्तेः । ननु इयङुवङ्स्थानावित्यनेनाऽपि ह्रस्वस्य निषेधः कुतो नेत्याशङ्क्य समाधत्ते—दीर्घस्यैवाऽयं निषेधो न तु ह्रस्वस्येति । तत्र ह्रस्वपदाऽभावादिति भावः ॥

(१) घटघटीति । 'शक्तिलाङ्गलाऽङ्कुश-तोमर-यष्टि-घट-घटीग्रहणेषूपसंख्यानमि'ति वार्त्तिके घटशब्दादेव लिङ्गविशिष्टपरिभाषया घटीशब्दस्यापि ग्रहणसिद्धौ पृथक्कृतं घटीग्रहणमेवोक्तपरिभाषाऽनित्यत्वसाधकमिति निष्कर्षः ।

प्रधीशब्दस्येति । वृत्तिकारादीनाम्मते प्रधीशब्दस्य नदीसंज्ञाविधौ पदान्तरं विनाऽपि स्त्रियां वर्त्तमानत्वं नित्यस्त्रीत्वम् । अत एव, आध्यै प्रध्यै ब्राह्मण्यै इति (१) भाष्यं सङ्गच्छते । अन्यथा **कैयटो**क्तनित्यस्त्रीत्वाभावात्तदसङ्गतं स्यात् । अतः स्त्रीविषयावेव यौ वू नित्यमिति भाष्ये एवकारो भिन्नक्रमः, नित्यमेवेत्यस्य पदान्तरं विनाऽपीत्यर्थः । उक्तभाष्यप्रयोगे न बहुव्रीहिः कवापत्तेः, किन्तु आध्यायति प्रकृष्टं ध्यायतीति व्युत्पत्तिः, अस्याञ्च व्युत्पत्तौ लिङ्गान्तराऽनभिधायकत्वाऽसम्भवेन नित्यस्त्रीत्वाऽभावादुक्तभाष्यप्रयोगाऽनुपपत्तिः, एवञ्चोक्तव्युत्पत्तिकस्य सुधीशब्दस्य लक्ष्मीशब्दवदेव रूपम्, **वृत्तिकाराद्यु**क्तनित्यस्त्रीत्वादिति भावः । वस्तुतस्तूक्तभाष्यप्रयोगे बहुव्रीहिरेव, कप्तु न वृत्तेः प्राग् यस्य नदीत्वं तदुत्तरपदकादेव कपो विधानात् ऋत्साहचर्यात् । ततश्च नित्यपदस्य स्वारसिकाऽर्थत्यागेऽतिविप्रकृष्टाऽर्थपरत्वे प्रमाणाऽभावेन लिङ्गान्तराऽनभिधायकत्वं नित्यस्त्रीत्वमित्येव युक्तमिति **कैयट**मतम् । अस्मिंश्च मते नित्यस्त्रीत्वाऽभावेन पुंवदेव रूपमित्यलम् ॥

ननु भ्रूशब्दस्योवङ्स्थानित्वेन समुदायस्याऽपि तत्स्थानित्वात् 'नेयङुवङि'ति निषेधेन नदीत्वाऽप्राप्त्या सम्बोधने ह्रस्वत्वञ्च स्यादित्यभिप्रायेणाऽऽशङ्कते–**कथं तर्हि, हे सुभ्रु इति** । समाधत्ते—**प्रमाद एवेति** । अनवधानरूप एव प्रमादः । स च काव्ये पुष्टिकरत्वेन गुण एवेति **बहवः** (२) । 'नञ्घटितमनित्यमि'ति परिभाषया निषेधशास्त्राऽनित्यत्वबोधनान्नात्र कश्चिद्दोष इति **केचित्** ॥

ननु 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इत्यतो णकारानुवृत्त्यैव सिद्धौ 'एकाजुत्तरपदे णः' इत्यत्र णग्रहणं व्यर्थम् । न च 'वा भावकरणयोरि'त्यस्माद्वाग्रहणाऽनुवृत्त्यर्थमस्तु तदिति वाच्यम् । आरम्भसामर्थ्यादेव नित्यत्वसिद्धेः । अन्यथा 'प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु चे'त्येव सिद्धौ तस्य स्पष्टमेव वैयर्थ्यं स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**आरम्भसामर्थ्यादेव नित्यत्वसिद्धौ णग्रहणं स्पष्टार्थमिति** ॥

'न तिसृचतसृ'इति नामि दीर्घत्वप्रतिषेधज्ञापकेन ङीवभावोपपत्तौ स्वस्रादिगणे तिसृ-चतस्रोः पाठो विफल एवेति 'कृन्मेजन्त' इत्यत्र **कैयटः** । इत्यजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

---

(१) भाष्यमिति । आध्यै प्रध्यै ब्राह्मण्यै, इत्यत्र नदीसंज्ञानिषेधमाशङ्क्य यत्र नदीकार्याश्रयेऽङ्गे बाधकाऽबाधितेयङादिस्थितिस्तत्रैव निषेध इति समाधानपरभाष्यमित्यर्थः ।

(२) नञ्घटितमिति । एषा च परिभाषा भाष्ये न दृश्यते ।

## अथ अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

ननु 'अतोऽमि'त्यत्र लाघवाय मित्येव छेद इति चेन्न । तथा सति ज्ञानमित्यत्र 'सुपि चे'ति दीर्घापत्तेः । न च 'सन्निपात'परिभाषयैव तत्र दीर्घव्यावृत्तिर्द्वितीयैकवचने च 'आदेः परस्ये'ति आदेरादेशेऽन्त्यमकारस्य संयोगान्तलोपे रूपमिष्टं सिद्ध्यत्येवेति वाच्यम् । सत्येवं हे ज्ञानेत्यादौ सम्बुद्धिलोपाऽनापत्तेः । प्रत्ययलोपेन मकारनिमित्तकप्रकृतिप्रत्ययसन्निपातविघातस्य जायमानत्वात् । परत्र संयोगान्तस्य झल एव लोप इति व्याख्यानेन लोपाऽनापत्तेः । अतो नाऽत्र मितिच्छेदः किन्त्वमित्येव, अमितिच्छेदस्य सूत्रकाराऽभिप्रायविषयत्वादेव, ज्ञानेत्यादौ मलोपाऽर्थं हे कतरदित्यत्र सम्बुद्ध्यलोपाऽर्थं चाङ्गाक्षेपव्यधिकरणान्वयहल्पदानुवृत्तय आस्थिता भाष्ये न तु मितिच्छेद उक्त इति भाष्यविरुद्धकल्पना नाभ्युपगन्तव्येति दिक् ॥

ननु हे ज्ञान सु इति स्थितौ परत्वात्सम्बुद्धिलोपं बाधित्वा सोरमादेशे 'अमि पूर्व' इति पूर्वरूपत्वे च जाते सम्बुद्धेर्ह्रस्वाऽन्ताङ्गात्परत्वाऽभावेन लोपो न स्यादिति चेन्न । पूर्वाऽन्तवद्भावेनैकादेशविशिष्टेऽङ्गत्वसत्त्वात् । न चैवमपि पूर्वरूपत्वेनाऽमोऽकारस्याऽपहारात्सम्बुद्धेरङ्गात्परत्वाऽसम्भवेन लोपो न स्यादिति वाच्यम् । अमोऽकारस्याऽपहारेऽप्युक्तरीत्या तद्विशिष्टेऽङ्गत्वसत्त्वाद्ध्रस्वान्ताङ्गात्परो यः सम्बुद्ध्यवयवो हलित्यर्थकरणेन सम्बुद्धेरङ्गात्परत्वाऽभावेऽपि तदवयवस्य हलो मकारस्य तथात्वेन लोपस्य सुलभत्वादित्याशयेनाऽऽह—**एङ्ह्रस्वादिति हल्मात्रलोप इति** ॥

ननु अद्डादेशस्थानेऽदादेशेन दादेशेनाऽपि वा हे कतरदित्यस्योपपत्तौ डित्करणं व्यर्थमित्याशङ्क्य समाधत्ते—**टेर्लुप्तत्वादिति** । अयम्भावः, अदादेशे 'प्रथमयोरि'ति पूर्वसवर्णदीर्घाऽऽपत्तिः, दादेशे तु ह्रस्वात्परत्वेन 'एङ्ह्रस्वादि'ति सम्बुद्धिलोपापत्तिश्च स्यादिति डित्करणमावश्यकम्, कृते तु तस्मिन्प्रकृत्यकारस्य लोपे न दीर्घ-लोपयोरापत्तिरिति दिक् ॥

ननु अजरशब्दात्सुप्रत्यये तस्याऽमादेशेऽजर अमिति स्थितावजादिपरत्वाज्जरसादेशः स्यादिति सन्देहे समाधानेमाह—**सन्निपातपरिभाषया न जरसिति** । आकारान्तसन्निपातेन जायमानस्याऽमादेशस्य जरसाऽऽदेशद्वारोक्तसन्निपातविघातकत्वस्योचितमुपजीव्यविरोधात् जरसादेशेन स्पष्ट एव सन्निपातविघात इति भावः ।

ननु अजरशब्दाज्जसि तस्य श्यादेशेऽजरइ इति स्थितौ नुम्-जरसादेशयोः प्राप्तौ कतरस्य प्रवृत्तिरिति सन्देहस्य जायमानत्वादाह—**परत्वाज्जरसि कृते झलन्तत्वान्नुमिति** । 'विप्रतिषेध'सूत्रे परशब्दस्येष्टवाचित्वमिष्टकार्यत्वञ्च पूर्वविप्रतिषेधेन

विभक्त्यादेशत्वं चैतत्सर्वं निर्जरशब्दे प्रागुपपादितमेवेत्यलमत्र तदुपपादनेनेति दिक् ॥

**वस्तुतस्तु प्रभृतिग्रहणं प्रकारार्थमिति।** अयम्भावः, 'पद्दन्न' इति सूत्रे प्रभृतिग्रहणं प्रकारार्थम्, प्रकारश्च भेदसादृश्यम्, सादृश्यञ्च, तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयो धर्मवत्त्वम्। तथा च, शसादिभिन्ने शसादिसदृशे प्रत्यये पदाद्यादेश इत्यर्थः सम्पन्नः। शसादिसादृश्यं सुप्त्वेनैव ग्राह्यं न तु पदत्वेन तथा सति 'हृदयस्य हृल्लेखे'त्यादेर्वैयर्थ्यापत्तेः। शसादिपरत्वञ्च 'न लुमते'त्यस्याऽनित्यत्वाद्बोध्यम्। एवं व्याख्यानेन मांसपचन्या उखाया इति भाष्यप्रयोगे ङसूपरत्वेन मासशब्दस्य मांसित्यादेशोपपत्तिः सुलभैवेति। न च

लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुङ्काममनसोरपि।
समो वा हिततयोर्मांसस्य पचिल्युड्घञोः॥

इत्यनेनैव सिद्धावलं प्रकारार्थप्रभृतिग्रहणेनेति वाच्यम्। ल्युडन्त उत्तरपदे तेन विधानादयस्मयादिगणे पाठेन 'अयस्मयादीनि छन्दसि' इति भसञ्ज्ञया पदसञ्ज्ञाबाधेन पचनस्योत्तरपदत्वाऽभावात्तदप्रवृत्तेरिति दिक्।

ननु 'पद्दन्न' इति सूत्रे 'शीर्षंश्छन्दसी'त्यतश्छन्दोग्रहणाऽनुवृत्त्या छन्दस्येव पदाद्यादेशप्राप्तौ लोके पदाद्यादेशः कथमिति चेन्न। माङ्भिश्शरद्भिर्दुरोदरन्तवेत्यस्य सिद्ध्यर्थं 'अपो भिरि'त्यत्र 'मासश्छन्दसी'ति वार्त्तिकेन छन्दोग्रहणाऽनुवृत्त्यावश्यकत्वादत्रत्यछन्दोग्रहणानुवर्त्तनेनैव पद्दन्न इत्यत्रापि छन्दसि विधानलाभे तत्र शीर्षंश्छन्दसीत्यऽतोनुवृत्तं छन्दोग्रहणं व्यर्थं सञ्ज्ञापयति लोकेऽपि क्वचित्पदाद्यादेशा भवन्तीति ज्ञापनेन सिद्धेरित्याशयेन पङ्क्तिमिमामवतारयति—**पद्दन्न इत्यत्र हि छन्दसीत्यनुवर्तितं तथापीत्यादि।**

ननु श्रियं पाति यत्कुलमिति विग्रहे श्रीपशब्दाच्चतुर्थ्येकवचने ङयि ङकारस्येत्वे लोपे च 'ङेर्य' इति यादेशे 'सुपि चे'ति दीर्घे श्रीपायेति सिद्धयति। अत्र यकारे पूर्वस्य भत्वात् 'आतो धातोः' इत्यकारलोपः कुतो नेति चेन्न। सन्निपातपरिभाषाविरोधात्। तथा हि, अत्वजातीयमुपजीव्य जायमानस्य यादेशस्य भसञ्ज्ञाद्वारा तज्जातीयाऽऽकारविघातनिमित्तत्वं न स्यादुपजीव्यविरोधात्। उपजीव्यविरोधो न न्याय्य इत्युक्तत्वात्। न च रामायेत्यत्र सुपि चेति दीर्घार्थमुक्तपरिभाषाऽनित्यत्वाऽभ्युपगमादिहाऽपि तदप्रवृत्तिरेव स्यादिति वाच्यम्। कथयेति निर्देशेन दीर्घे

तदप्रवृत्तावपि लोपे तदप्रवृत्तेर्वक्तुमशक्यत्वादित्यभिप्रायेणाह—अत्र सन्निपातपरिभाषया आतो धातोरित्याकारलोपो नेति।

ननु वारिशब्दात्सम्बुद्ध्येकवचने सौ तस्य 'एङ् हल्वादि'ति लोपे तस्य प्रत्ययलक्षणेन प्रकृतेः परत्वात् 'ह्रस्वस्य गुणः' इति प्राप्तगुणस्य न लुमताङ्गस्येति निषेधे हे वारीत्येव न तु हे वारे इति, तथा च हे त्रपो हे त्रपु इति भाष्योदाहरणासङ्गत्यापत्तिर्दुर्वारेति पूर्वपक्षप्रादुर्भावे समाधत्ते—न लुमतेत्यस्या अनित्यत्वादिति। अयम्भावः, अस्याऽनित्यत्वे 'इकोऽचि विभक्ता'वित्यत्राऽचिग्रहणमेव ज्ञापकम्, तथा हि, हलादौ नुमभावायैव सूत्रे तद्ग्रहणं स च नुमभावस्तद्ग्रहणं विनाऽप्युपपन्नः, हलादौ सत्यपि नुमि लोपेन तद्व्यावृत्तेः। न च सम्बुद्धौ 'न ङिसम्बुद्ध्योरि'ति निषेधेन नलोपाभावान्नकारश्रवणापत्तिवारणार्थमचीत्यस्यावश्यकत्वेन ज्ञापकत्वञ्च सम्भवतीति वाच्यम्। न लुमतेति निषेधस्य जागरूकत्वात्प्रत्ययलक्षणाऽभावेन विभक्तिपरत्वाऽभावादेव तत्र नुमोऽप्राप्त्या तद्व्यावृत्त्यर्थं कृतस्याऽचीत्यस्य वैयर्थ्येन ज्ञापकत्वस्य सुस्थत्वात्। न चोत्तरार्थत्वेन तस्य ज्ञापकत्वासम्भव एवेति वाच्यम्। लाघवात्तत्रैव कर्त्तुमुचितत्वेनेह करणे वैयर्थ्यस्य स्पष्टत्वात्। एवञ्चोक्तनिषेधसूत्रस्याऽनित्यत्वेऽचिग्रहणस्य ज्ञापकत्वं युक्तमेव। तथा च, अनित्यत्वपक्षे तदप्रवृत्त्या प्रत्ययलक्षणेन सम्बुद्धिपरत्वाद्गुणे हे वारे इत्यपि साधु सत्येवं प्रयासमन्तरेणैवोक्तभाष्यप्रयोगोपपत्तिरित्यलं पल्लवितेन।

ननु भाषितपुंस्केत्यस्य भाषितः पुमान्येन शब्देनेत्यर्थकरणेऽनादिशब्दे तत्सत्त्वेऽपि पीलुशब्देनाऽपि पुंसो भाषितत्वात्तत्र पुंवद्भावातिप्रसङ्गो दुर्वारस्तस्माद्भाषितः पुमान्यस्मिन्प्रवृत्तिनिमित्तरूपेऽर्थे इति बहुव्रीहिः। प्रत्यासत्त्या भाषणक्रियया स्वकरणत्वेनाक्षिप्तशब्दश्च क्लीबेन समानाऽनुपूर्वीकः समानाऽर्थश्च गृह्यते, ततोऽर्शादित्वादचि भाषितपुंस्क इति, तत्फलितमाह—प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये इति। तत्त्वञ्च वाच्यत्वे सति वाच्यवृत्तित्वे सति वाच्योपस्थितीयप्रकारताश्रयत्वम्। एकस्मिन्प्रवृत्तिनिमित्ते भाषितपुंस्कस्य शब्दस्य पुंवद्भाव इति तदर्थः। यस्य शब्दस्य पुंनपुंसकयोरेकप्रवृत्तिनिमित्तं तस्य पुंवत्त्वमिति पर्यवसितोऽर्थः। तथा च, अनादिशब्दस्य पुंसि क्लीबे चाऽऽरोपिताऽऽदित्वं प्रवृत्तिनिमित्तमेकमेवेति भवत्येव पुंवत्त्वम्। पीलुशब्दस्य तु वृक्षे वृक्षत्वव्याप्यजातिः प्रवृत्तिनिमित्तं फले फलत्वव्याप्यजातिः प्रवृत्तिनिमित्तमित्युभयत्रैकजातेस्तत्त्वाऽभावेन न पुंवत्त्वमित्यभिप्रेत्याह—पीलुने अत्र न पुंवत् प्रवृत्तिनिमित्तभेदादिति।

ननु प्रवि श्यामिति स्थितावच्परत्वेन प्राप्तनुमं बाधित्वा 'नुमचिरे'ति नुटि ततो हल्परत्वात् 'एकदेशविकृत' न्यायेन रायो हलीत्यात्वे प्रराणामिति माधवः। अस्यायम्भावः, नुण्निमित्तीभूतह्रस्वीयसन्निपातो दीर्घेणाऽवश्यं विनाश्य इति सन्निपातपरिभाषाया अविषयत्वेनाऽप्रवृत्त्याऽऽत्वे बाधकाऽभावाद्युक्तमेवोक्तरूपं सामान्यतो नुड्विधौ उक्तपरिभाषाया अप्रवृत्तेरिति तद्भावः। नन्वेवं रामाणामित्यत्र नामीत्यनेन नुण्निमित्तह्रस्वसन्निपातविघातस्यावश्यं जायमानत्वादुक्तपरिभाषाऽविषयत्वेन सुपि चेति दीर्घे कथमुक्तपरिभाषाप्रवृत्तिरिति वाच्यम्। नामीति दीर्घेण नित्यत्वात् सुपि चेति दीर्घस्य बाधेनाऽप्रवृत्त्याऽऽवश्यकत्वेनोक्तपरिभाषयैव तदप्रवृत्तिकल्पनादिति। परमेतदाशयः 'श्नान्नलोप' इत्यत्र षाष्ठभाष्यकैयटविरोधादुपेक्ष्यः, तत्र हि श्नमः शकारोच्चारणाऽभावे नान्नलोप इति न्यासे यज्ञानामित्यत्र दीर्घनलोपयोः प्राप्तौ परत्वान्नलोप इत्युक्तं भाष्ये। सामान्यापेक्षज्ञापने तु नलोपापेक्षया सुपि चेति दीर्घस्य परत्वादस्यैव प्रवृत्तौ तदसङ्गतं स्यादिति नामीति दीर्घे कर्त्तव्य एवोक्तपरिभाषाऽनित्यत्वं नान्यत्रेत्यरुचेः, 'कष्टाये'ति निर्देशेनाऽनित्यायाः सन्निपातपरिभाषायाः सुपि चेति दीर्घेऽप्रवृत्तिकल्पनेऽपि सामान्यतो दीर्घेऽप्रवृत्तिकल्पनायां न किमपि विनिगमकमित्यरुचेश्चाह—वस्तुतस्तु, प्ररीणामिति। इत्यजन्ता नपुंसकलिङ्गाः।

---

## अथ हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम्।

ननु 'दादेर्धातोर्घः' इत्यत्र भाष्ये धुगित्यत्र ढत्वमाशङ्क्याऽपवादत्वेन समाधाय, अथवा एवं वक्ष्यामि 'होढोऽदादेरि'ति ततो 'धातोर्घ' इति दादेरिति वर्तते नेति निवृत्तमित्युक्तम्। एवञ्चाऽदादिधातुहकारस्य ढत्वविधानेनैव दादिधातुहकारस्य घत्वसिद्धौ भाष्यकृताऽनुवृत्तस्य दादिपदस्योत्तरयोगे फलान्तराऽभावेन सामर्थ्याद्दादिपदमौपदेशिकदादित्ववदुपलक्षकमित्यभिप्रायेण फलिताऽर्थमाह—उपदेशे इति। न च दादिभिन्नधातुहकारस्य ढत्वमित्यर्थकस्य होढोऽदादेरितिन्यासस्याऽभ्युपगमे धुडित्यादौ दादित्वेन तद्भिन्नत्वाऽभावाद्ढत्वानापत्तिरिति वाच्यम्। 'वा द्रुहमुहे'ति सूत्रे वाग्रहणस्य समुच्चयार्थकत्वेन ढस्याऽनुवृत्तौ तद्विधानेनाऽदोषात्। न चैवमपि दादित्वेन दामलिडित्यत्र ढत्वन्न स्याद्दादिभिन्नधातुहस्यैव तद्विधानादिति वाच्यम्। उत्तरयोगे दादिपदस्यौपदेशिकदादित्ववत एव ग्रहणेन पूर्वयोगेऽप्यर्थाऽधिकाराऽनुरोधात्तादृशस्यैवाऽदादिघटकदादिपदस्य ग्रहणेन तदुपपत्तेः। उक्तव्याख्यानलभ्योपदेशपदग्रहणेन

किम्फलमित्याह—**उपदेशे किमिति ।** (१)अव्याप्त्यतिव्याप्तिदोषवारणार्थमावश्यकमुपदेशपदम् । तथा हि, अधोगित्यत्राऽडागमे दादित्वाऽभावाद्घत्वं नेत्यव्याप्तिः, दामलिडित्यत्र दादित्वेन घत्वं स्यादित्यतिव्याप्तिरिति भावः ॥

ननु सम्भवति सामानाधिकरण्ये वैयधिकरण्यमन्याय्यमिति सिद्धान्तः, तथा च लाघवात्सामानाधिकरण्यान्वयस्याऽभ्युपगमे एकाज्रूपो यो धातुर्झषन्तस्तदवयवस्य वशो भषित्यर्थे गर्द्धबित्यादौ भष्भावो न स्यात्तस्याऽनेकाच्त्वादिति वैयधिकरण्याऽन्वय एव युक्त इत्याशयेनाह—**एकाचो धातोरिति ॥**

**झलीति निवृत्तम् । स्ध्वोर्ग्रहणसामर्थ्यादिति ।** न च धुग्भ्यां धुक्षित्यादौ भाष्भावार्थं झलीत्यस्यावश्यकत्वेन मूलोक्तमसमीचीनमिति वाच्यम् । पदान्ते इत्येव तत्र तदुपपत्तेः । न च बुबुधिध्वे,इत्यत्र भाष्भावनिवृत्त्यर्थं ध्वमो झलीति विशेषणस्याऽऽवश्यकत्वेन निवृत्तमित्युक्तिरसङ्गतेति वाच्यम् । इटो ध्वमवयवत्वाऽभावेऽपि भष्भावनिमित्तध्वशब्दानवयत्वादेकाच्-ध्वशब्दयोरिटा व्यवधानेन स्वत एव भष्भावाऽप्राप्त्या दोषाऽभावेन झलीति विशेषणस्यानावश्यकत्वेन मूलोक्तस्य सुसङ्गतेरिति भावः ।

ननु द्रुहेर्घत्वे धात्ववयवमेकाज्रूपं द्रु इति उघिति च तत्राऽऽद्यो न झषन्तोऽन्त्ये न वश् द्रुघिति तु नाऽवयव इति भष्भावो न स्यादित्यत आह—(२)**व्यपदेशिवद्भावेनेति ।** एकस्मिन्नसहाये व्यपदेशिना मुख्यव्यवहारवता तुल्यो मुख्यो व्यपदेशो व्यवहारो भवतीति तदर्थः ।

ननु धुगित्यादेः प्रातिपदिकत्वाद्धातुत्वाऽभावेन तत्कार्यं भष्भावो न स्यादिति चेन्न । 'अत्वसन्तस्य चाऽधातोरि'ति सूत्रेऽधातोरिति निषेधसामर्थ्येनाऽप्रधानक्रियावाचकस्यापि धातुत्वबाधनेन तदुपपत्तेः । न च (३)'धातोरुच्यमानं कार्यं तत्प्रत्यये' इति परिभाषया धातुशब्दमुच्चार्य विहितप्रत्यये एव तत्कार्यविधानादिहाऽतथात्वेन धातुकार्यन्न स्यादिति वाच्यम् । भष्भावस्य धातुकार्यस्य पदान्तनिमित्तत्वेन प्रत्ययनिमित्तत्वाऽभावादुक्तपरिभाषाऽप्रवृत्तेः । प्रत्यये परे धातोरुच्यमानं कार्यं धातुशब्दमुच्चार्य

---

(१) अव्याप्तीति । लक्ष्ये लक्षणाऽगमनमव्याप्तिः । अलक्ष्ये लक्षणगमनमतिव्याप्तिः ।

(२) व्यपदेशिवदिति । 'व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेने' ति परिभाषास्वरूपम् । पूर्वात्सपूर्वादिनिरित्येकयोग एव कर्त्तव्ये पृथग्योगकरणमस्या ज्ञापकम् ।

(३) धातोरिति । धातोरुच्यमानं यत्कार्यं तत् धातुविहिते प्रत्यये भवतीत्यर्थः । अत्र भ्रौणहत्ये तत्वविधानमस्या ज्ञापकम् ।

विहितप्रत्यये एव भवतीति परिभाषाऽर्थ इति भावः । अत एव 'नश्छव्यप्रशानि'ति सूत्रेऽप्रशानग्रहणं चरितार्थम्, अन्यथा 'मो नो धातोरि'त्यत्राप्युक्तपरिभाषाप्रवृत्तौ नत्वाप्राप्त्या तस्यासम्भवेन तद्व्यावृत्त्यर्थं तद्ग्रहणं व्यर्थमेव स्यात् । न चोक्तपरिभाषाप्रवृत्तौ सुध्यावित्यादावियङ् न स्यादावित्यस्य धातुसंज्ञशब्दनेन विहितप्रत्ययत्वाभावादिति वाच्यम् । वस्तुत इयङोऽङ्गस्यैवोच्यमानत्वेन धातोरभावेनोक्तपरिभाषाऽप्रवृत्तेरिति भावः ॥

ननु 'वहश्चे'ति सूत्रे 'छन्दसि सहः' इत्यतश्छन्दोग्रहणाऽनुवृत्त्या वहेरपि छन्दस्येव ण्विविधानेन लोके विश्ववाहशब्दस्य कथं प्रयोग इत्यत आह—**छन्दस्येव ण्विरिति पक्षे तु णिजन्ताद्विजिति** । णिजन्ताद्विश्वशब्दपूर्वकाद्वाहेर्विचि णिलोपे लोकेऽपि विश्ववाहशब्दप्रयोग उपपन्न इति भावः । न चाऽङ्ग–भसंज्ञाऽऽक्षिप्तप्रत्ययेन वाहो विशेषणादजादिप्रत्ययपरकाऽव्यवहितपूर्वस्य वाहः सम्प्रसारणमित्यर्थे णिलोपस्य स्थानिवत्त्वेन व्यवधानात्सम्प्रसारणं न स्यादिति वाच्यम् । विचः क्विपोपलक्षकत्वेन क्वौ लुप्तं न स्थानिवदिति स्थानिवत्त्वनिषेधेनाऽदोषात् । न चोक्तस्थानिवत्त्वनिषेधवचनस्य सङ्कुचितविषयत्वेन क्वौ विधिं प्रति न स्थानिवदित्यस्य क्विप्शब्दसंशब्दनेन विहितविधावेव प्रवृत्त्यभ्युपगमेन वच्यादिभ्यो विहिते किति सम्प्रसारणमिति 'वचिस्वपी'-त्यस्य व्याख्यानेन णिजन्तात्क्विपोऽविहितत्वेन निषेधाऽप्राप्त्या स्थानिवत्त्वस्य दुर्वारत्वाद्व्यवधानेन सम्प्रसारणं न स्यादिति वाच्यम् । 'विभाषा पूर्वाह्णे'ति सूत्रे भाष्ये प्रष्ठौह आगतं प्रष्ठवाड्रूप्यमिति लौकिकविग्रहवाक्ये प्रष्ठौह इति प्रयोगदर्शनेन लोकेऽपि क्वचिण्ण्विरिति कल्पनेनोक्तापत्तेरयोगादिति दिक् ॥

ननु सामान्यविहितस्य व्यापकविषयताकस्याऽऽमोऽपेक्षया नुमो विशेषविहितत्वेन व्याप्यविषयकत्वात्तन्न्यायमूलकेन(१) 'येननाप्राप्ति'न्यायेन नुमाऽऽमो बाधे पुनरामोऽप्राप्त्याऽनड्वानिति, एवं सम्बोधने नुमाऽमो बाधेन हे अनड्वन्निति च नोपपद्येतेत्याशङ्क्य समाधत्ते—**आदित्यधिकारादिति** । 'आच्छीनद्योर्नुमि'त्यतस्तदनुवर्त्तनादनडुह्शब्दाऽन्त्यावर्णात्परो नुमित्यर्थेऽम उपजीव्यत्वान्न ततः प्राक् नुमः प्राप्तिरिति न कश्चिद्दोषः, उपजीव्योपजीवकयोर्बाध्यबाधकभावो न भवति, यथा पितुरुत्पन्नः पुत्रः पितरं न हन्यात् एवं पिता पुत्रं न हन्यादिति भावः ॥

ननु अनड्वानित्यत्र नकारस्य दत्वं कुतो नेत्याशङ्क्य समाधत्ते—**नुम्विधिसा-**

---

(१) येन नेति । "येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवती"ति न्यायस्वरूपम् ।

**मर्थ्याद्वसुस्रंस्विति दत्वं नेति ।** विधानसामर्थ्यादविकृतेनैव नुमा सर्वत्र भवितव्यम्न तु विकृतेन, अन्यथा विधानस्य नैरर्थक्यापत्तेः । नकारस्य दत्वेऽवश्यमेव नुमो विकृतत्वापत्तिरिति न दत्वमिति भावः । न च विधानसामर्थ्यान्नुमो णत्वाभावेऽनड्वांस्तत्रेत्यत्राऽपि रुत्वानापत्तिरिति वाच्यम् । तत्रोपदेशवैयर्थ्याऽभावात् । यं विधिं प्रत्युपदेशोऽनर्थकः स विधिर्बाध्यते यस्य तु विधेर्निमित्तं नासौ बाध्यते इति । दत्वं प्रति नुम्विधेरनर्थकत्वेन नुमा दत्वबाधो जातः, रुत्वं प्रति नुमो निमित्तत्वेन न तेन रुत्वबाध इति भावः ॥

**हे अनड्वन्निति ।** नन्वत्र सम्बुद्धिलोपेऽवश्यं प्राप्तेऽम आरम्भादमोऽपवादत्वादनेन सम्बुद्धिलोपबाधेनैतद्विषये सम्बुद्धिलोपो न स्यात् । न च विषयभेदे बाध्यबाधकभावाऽभावेन नोक्तदोष इति वाच्यम् । विषयभेदेऽप्यचिरादेशस्य नुडपवादत्वमिति सप्तमे भाष्ये शङ्कितत्वादिति चेन्न । प्रत्ययलोपविधायकशास्त्रैः प्रत्ययाऽनुत्पत्तेरेवाऽन्वाख्यानेनाऽपवादत्वस्यैवासम्भवादिति भावः ॥

नन्ु सुद्यौरित्यत्र स्थानिवत्वेन सोर्हलः परत्वाद्धल्ङ्याविति लोपो दुर्वार इति सन्देहं निवर्त्तयति—**अल्विधित्वेन स्थानिवद्भावाद्धल्ङ्याबिति सुलोपो नेति ।** अल्विधावित्यत्र पञ्चमीसमासस्याऽऽश्रयणादलः परस्य विधौ न स्थानिवदित्यर्थे स्थानिवत्त्वनिषेधान्न दोष इति भावः ।

ननु णत्वापेक्षया द्वित्वस्य परत्वेन पूर्वं द्वित्वे ततो णत्वे णत्वं द्वित्वमिति मूलोक्तमयुक्तमिति चेन्न । 'पूर्वत्राऽसिद्धमि'त्यनेन पूर्वत्र कर्तव्ये परस्याऽसिद्धत्वबोधनाण्णत्वदृष्ट्या द्वित्वस्याऽसिद्धत्वेन प्राक् णत्वस्यैव प्रवृत्तेः, न च (१)'पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे' इति परिभाषया द्वित्वभिन्ने कार्ये कर्तव्ये उक्तशास्त्रप्रवृत्तेर्निर्णीतत्वेन प्रकृते द्वित्वस्यैव कर्त्तव्यत्वात्तदप्रवृत्तौ परत्वाद्द्वित्वे प्राक् प्रदर्शितदोषस्य तादवस्थ्यमेवेति वाच्यम् । संय्यँन्तेत्यत्र त्रियकारकरूपसिद्ध्यर्थमावश्यकेन 'द्वित्वे परसवर्णत्वं सिद्धं वक्तव्यम्' इति वार्तिकेनोक्तपरिभाषायां वर्णद्वित्वेऽप्रवृत्तिकल्पनात्, अन्यथा द्वित्वं प्रत्युक्तपरिभाषया पूर्वत्रेत्यस्याऽप्राप्तौ परसवर्णस्य सिद्धत्वेन द्वित्वे कृते भाष्योक्तप्रयोगोपपत्तावुक्तवार्तिकं स्पष्टमेव व्यर्थं स्यादेवञ्च द्वित्वे कर्त्तव्येऽपि पूर्वत्राऽसिद्धमित्यस्य प्रवृत्तौ द्वित्वस्याऽसिद्धत्वेन णत्वस्यैव प्रवृत्तावुक्तदोषाऽभावात् । न च वाक् वाक् इति भाष्योदाहरणोपपत्तये

(१) पूर्वत्रासिद्धीयमिति । द्वित्वभिन्ने पूर्वत्र कर्तव्ये परमसिद्धमित्यर्थः । पूर्वत्रासिद्धमित्यधिकारभवं शास्त्रमस्या लिङ्गम् । यत्र च सिद्धत्वासिद्धत्वयोः फले विशेषस्तत्रैवास्याः प्रवृत्तिरिति बोध्यम् ।

वर्णद्वित्वेऽनुच्चारेऽस्याः प्रवृत्तिरावश्यकी, अन्यथा पूर्वत्रेत्यनेन चर्त्वात्प्रागगस्यैव द्वित्वेऽन्त्यस्य चर्त्वे पूर्वत्र गश्रवणापत्तिः। न च खरि चेत्यनेन पूर्वगस्य चर्त्वेन तत्सिद्धिरिति वाच्यम्। अवसानचर्त्वस्यासिद्धत्वेन खर्परत्वाऽभावाच्चर्त्वाऽप्राप्त्या गश्रवणाऽऽपत्तेर्दुर्वारत्वात्। न च कस्य द्वित्वेऽप्यवसाने चर्त्वस्याऽसिद्धत्वाद्गकारे शशि परे पूर्वस्य जश्त्वे झकारीत्येव चर्त्वाऽभावाद्गश्रवणं दुर्वारमिति वाच्यम्। 'न मु ने' इतिवत्पूर्वत्राऽसिद्धीयमित्यस्य द्वित्वे कृतेऽपि प्रत्यासत्त्या द्वित्वाऽऽश्रयस्य कार्ये कर्त्तव्येऽसिद्धत्वमेत्यर्थेऽवसानचर्त्वस्याऽसिद्धत्वाऽभावेन झश्परत्वाऽभावात्पूर्वककारस्य जश्त्वाऽनापत्त्या गश्रवणाऽऽपत्तिरूपदोषस्य विलयापत्तेः। एवञ्च प्रकृतग्रन्थस्य कथं सङ्गतिरिति चेन्न। द्वित्वे कर्त्तव्येऽन्यदसिद्धञ्च द्वित्वन्त्वसिद्धमेवेत्युक्तपरिभाषाऽर्थकरणेन द्वित्वात्प्राक्चर्त्वे ततो द्वित्वे तत्सङ्गतेरिति भावः।

ननु 'षट्-चतुर्भ्यश्चे'ति सूत्रे(१) 'गौणमुख्य'न्यायेन मुख्यार्थवाचकचतुर्शब्दस्यैव ग्रहणात्प्रियचतुर्शब्दस्य गौणत्वेनाऽग्रहणान्नुण् न स्यादित्याशयेनाऽऽह—**गौणत्वे तु नुट् नेष्यत इति।** केचित्तु सूत्रे वहुवचननिर्देशसामर्थ्याद्बहुत्वार्थकस्यैव चतुर्शब्दस्य ग्रहणादेकत्वाद्यर्थवाचकस्य तस्याऽग्रहणेन नुण् नेति वदन्ति तन्न, वहुवचननिर्द्देशस्य लाघवार्थत्वेन तस्मादुक्तकल्पनायाः कर्त्तुमशक्यत्वादित्यलम्।

ननु कमलशब्दात्तत्करोति तदाऽऽचष्टे इति णिचि,इष्ठवद्भावेन टिलोपे ततः कर्तरि क्विपि 'णेरनिटी'ति णिलोपे ततः प्रातिपदिकत्वेन सोरुत्पत्तौ तस्य 'हल्ङ्याबि'ति लोपे कमलिति सिद्धयति, अत्र अचः परस्मिन्नित्यत्र पञ्चमीसमासाश्रयणादल्लोप-णिलोपयोः स्थानिवत्त्वेन सोर्हल्परत्वाऽभावाल्लोपो न स्यादिति चेन्न। पूर्वत्राऽसिद्धे तन्निषेधेनाऽदोषादिति भावः। वस्तुतस्तु "न हि पदान्ताः परेऽणः सन्ति, ननु चायमस्ति कर्तृहर्त्रिति लण्सूत्रस्य भाष्यात् 'भो-भगो' इति सूत्रस्थभाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वेन वृक्षव् कमलित्यादेरनभिधानमेवोचितमिति दिक्।

ननु कमलशब्दात्सप्तमीवहुवचने सुपि पूर्वोक्तरीत्या अल्लोप-णिलोपयोः स्थानिवत्त्वेन व्यवधानात्षत्वाऽनाऽऽपत्तिरिति चेन्न। पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवदिति तन्निषेधेन तदुपपत्तेरित्याशयेनाऽऽह—**षत्वं कमलिक्ष्विति।**

ननु 'त्यदादीनामः' इत्यस्मात्त्यदादेरित्यनुवर्त्य त्यदादीनामिमः अः स्यादित्यर्थेनैवेष्टसिद्धौ 'किमः कः' इत्यत्र ककारोच्चारणं विफलम्। न च त्यदादिप्रयुक्तकार्यस्य

(१) गौणमुख्येति। गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्यय इति तत्स्वरूपम्।

द्विपर्यन्तानामेवेष्टत्वेन किमस्तद्बहिर्भूतत्वादिष्टप्रयोगो नोपपद्यतेति वाच्यम् । द्वेः प्राक् किमः पाठेनैवोपपत्तेः । न च इम इत्यस्य षष्ठीनिर्दिष्टत्वादलोऽन्त्यपरिभाषोपस्थितावन्त्यस्यादेशापत्तिरिति वाच्यम् । नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरित्यनेन तन्निषेधात् । न च द्वेः प्राक् किमः पाठाऽभ्युपगमे स च कश्चेत्येकशेषे किमः शेषापत्तिरिति वाच्यम् । साकच्कादेशविधानपरभाष्यप्रामाण्येनैकशेषे त्यदादीनां द्विपर्यन्तानामिति नियमस्य बाधात् तादृशप्रयोगानभिधानाच्च । न च 'कुतिहोरि'त्याद्यर्थं किमः ककारोच्चारणमन्यथेमः कादेशे कद्वयश्रवणापत्तिरिति वाच्यम् । तत्राप्युतिहोरिति न्यासेनैव निर्वाहात् । न च 'क्वाती'त्यर्थं ककारोच्चारणमन्यथोक्तदोषाऽऽपत्तिरिति वाच्यम् । तत्र वातीतिन्यासेनैवादोषात् । एवञ्च व्यर्थमेव ककारोच्चारणमित्याशङ्कां समाधत्ते—

**अकच्सहितस्याऽप्ययमादेश इति** । व्यर्थं ककारोच्चारणं ज्ञापयति साकच्कस्य किमः कादेश इति, अन्यथाऽकज्विशिष्टस्य तस्येम आदेशे कक इत्यापद्येत यथा न्यसो तु साकच्कस्याऽपि तस्य (१)'तन्मध्यपतित' न्यायेन किम्शब्दत्वात्सुलभ एवादेश इति भावः । न च भिन्धकीत्यत्राऽकचि धित्वं न प्राप्नोति निर्दिश्यमानपरिभाषयेत्याशङ्कयाऽन्तरङ्गत्वाद्धित्वे ततोऽकजिति भाष्यात्साकच्कस्य निर्दिश्यमानत्वाऽभावाद्यथान्यासेऽपि कथमादेश इति वाच्यम् । 'किमः क' इत्यस्याऽऽवृत्त्या एकेनाऽकज्रहितस्य द्वितीयेन साकच्कस्यादेश इति कैयटोक्तसमाधानेनाऽऽदेशस्य सौलभ्यादिति भावः । वस्तुतस्तु अकचि धित्वं न प्राप्नोतीति भाष्यस्य अकच्रूक्षकं धित्वं न प्राप्नोति, निर्दिश्यमानपरिभाषया सम्पूर्णस्य स्यादित्याशयः, अत एव 'अनाऽप्यक' इत्यत्राऽकोरिति चरितार्थम् , अन्यथा तन्मध्यपतितन्यायगृहीतस्यानिर्दिश्यमानत्वेनैवादेशाऽप्राप्तौ तस्य स्पष्टमेव वैयर्थ्यमित्यलम् ।

ननु इद ए इति स्थितौ स्मायाऽऽदेशात्परत्वादनादेशे(२) 'सकृद्गति' न्यायेन पुनः स्मायादेशो न स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**नित्यत्वान्ङः स्मै इति** । (३)कृताऽकृतप्रसङ्गिनो विधेर्नित्यत्वेन स्मायादेशस्याऽनादेशे कृतेऽकृते च प्राप्त्या नित्यत्वादनादेशं बाधित्वा स्मायादेश एव जातः । न चाऽनादेशस्याऽप्युक्तरूपनित्यत्वस्य सत्त्वादयमेव कुतो नेति वाच्यम् । लक्ष्याऽनुरोधेन बाधकाऽबाधितकृताकृतप्रसङ्गित्व-

---

(१) तन्मध्यपतितेति । तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते इति तत्स्वरूपम् ।
(२) सकृद्गतीति । सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेवेति स्वरूपम् ।
(३) कृताकृतेति । तदुक्तं–क्वचित्कृताकृतप्रसङ्गमात्रेणापि नित्यतेति ।

स्यानित्यत्वस्याऽभ्युपगमात् । 'अनाऽप्यक' इत्यस्य 'हलि लोप' इत्यनेन बाधेनाऽतथात्वादिति भावः ॥

ननु अनुदात्तत्वविधानेनैव त्यदाद्यत्वे हलि लोपेनाऽऽभ्यामित्यादि समीहितरूपोपपत्तावलमश्विधानेनेत्याशङ्क्य समाधत्ते—**अश्वचनं साकच्कार्थमिति** । शित्वादकजिशिश्वस्याऽऽदेश इति भावः । न च 'त्यदादीनाम' इत्येतद्विहिताऽकारस्याऽकारविधानसामर्थ्यादेव सर्वादेशत्वसिद्धौ शित्करणं व्यर्थमेवेति वाच्यम् । अकारविधानसामर्थ्यात्सर्वादेशवत्सुपि चेति दीर्घाऽभावस्यापि ज्ञापनसम्भवात् । एवञ्च स्पष्टार्थमेवाऽश्ग्रहणमिति भावः । केचित्तु अनुदात्तत्वार्थमेवाऽकारविधानमिति सन्देहव्यावृत्त्यर्थमश्ग्रहणमिति वदन्ति । वस्तुतस्तु अ अ इति प्रश्लेषादकारद्वयविधानसामर्थ्यात्सर्वाऽऽदेशत्वसिद्धावश्ग्रहणं व्यर्थमेवेति बोध्यम् ॥

**नलोपः, राजेति** । ननु राजानित्यस्य प्रत्ययलक्षणेन सुबन्तत्वात्पदत्वेऽपि तेनैव प्रत्ययलक्षणेन प्रत्ययान्तत्वादप्रत्यय इति निषेधेन प्रातिपदिकत्वाऽभावान्नलोपो न स्यात्प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदं तदन्तनकारस्यैव लोपविधानादिति चेन्न । अप्रत्यय इत्यत्र पर्युदासात्प्रत्ययान्तभिन्नस्य प्रत्ययान्तसदृशस्य प्रातिपदिकत्वमित्यर्थे यथोद्देशपक्षे आक्कृतां प्रातिपदिकसंज्ञामादाय नलोपोपपत्तेः । न च कार्यकालपक्षे तादवस्थ्यमेवोक्तदोषस्येति वाच्यम् । व्यवस्थितपक्षद्वयमध्ये एकतरपक्षेण लक्ष्यसिद्धावितरपक्षेण दोषदानस्य भाष्ये क्वाऽप्यनुपन्यासात् । न चाऽप्रत्यय इत्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधाऽऽश्रयणे प्रत्यायान्तस्य प्रातिपदिकत्वाऽविधानादत्र पक्षे लोपेनैव जातनिवृत्तेरपि वक्तुं शक्यत्वेनोक्तदोषो दुर्वार एवेति वाच्यम् । 'न ङि सम्बुद्ध्योरि'ति निषेधसामर्थ्यात्प्रत्ययलक्षणेन प्रत्ययान्तत्वमादाय न निषेधप्रवृत्तिरिति ज्ञापनेनाऽदोषादिति भावः ॥

ननु राजञ्छब्दाच्छसि 'लशक्वे'ति शस्येत्त्वे 'यचि भमि'ति भत्वे 'अल्लोपोऽनः' इत्यल्लोपे राजन् असित्यवस्थायाम् 'अचः परस्मिन्नि'त्यत्र पञ्चमीसमासाऽश्रयणादल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेन व्यवधानाच्चुत्वाऽप्राप्तौ राज्ञ इति न सिद्ध्यदित्यत आह—**नचालोपः स्थानिवदिति** । पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवदिति स्थानिवत्त्वनिषेधान्न चुत्वाऽनाऽऽपत्तिरिति भावः । न च षष्ठाऽध्यायस्थ 'वाह ऊठि'ति सूत्रस्योठ्ग्रहणेन ज्ञापितयाऽन्तरङ्गपरिभाषयाऽन्तरङ्गे श्चुत्वे कर्त्तव्ये बहिरङ्गाऽल्लोपस्याऽसिद्धत्वबोधनात्पूर्वोक्तस्य श्चुत्वाऽनाऽऽपत्तिरूपदोषस्य तादवस्थ्यमेवेति वाच्यम् । यथोद्देशपक्षे उक्तपरिभाषाम्प्रति श्चुत्वविधायकशास्त्रस्याऽसिद्धत्वादन्तरङ्गशास्त्राऽभावेन प्रतिपाद्याऽभावात्प-

रिभाषाऽप्रवृत्तेः, तथा च श्चुत्वे कस्याऽपि व्यवधानस्य प्रतिबन्धकस्याऽसत्त्वादुक्तप्रयोगोपपत्तिः सुलभैव। न च कार्यकालपक्षे विधिशास्त्रप्रदेशे कार्यार्थं परिभाषाऽपकर्षणादस्या उक्तशास्त्रदेशस्थत्वादिमाम्प्रत्यन्तरङ्गशास्त्राऽसिद्धत्वाऽभावेन परिभाषाप्रवृत्तौ बाधकाऽभावात्पूर्वोक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यम्। एकतरपक्षेण लक्ष्यसिद्धौ पक्षाऽन्तरमवलम्ब्य दोषदानस्य भाष्ये क्वाऽप्यनाऽऽश्रयणात्। वस्तुतस्तु कार्यकालपक्षेऽप्युक्तपरिभाषाऽप्रवृत्तेरुक्तत्वाच्चेति दिक्॥

ननु प्रतिदिवन् शब्दाच्छसि शस्येत्वे भत्वे अल्लोपे प्रतिदिवन् अस् इति स्थितौ पञ्चमीसमासाऽऽश्रयणादचः परस्मिन्निति स्थानिवत्त्वादिकारस्योपधात्वाऽऽभावाद्धलि चेति दीर्घाऽप्राप्तौ प्रतिदीव्न इतीष्टरूपस्य सिद्धिर्न स्यादिति सन्देहे जाते समाधानमाह—**नचाऽल्लोपस्य स्थानिवत्त्वमिति।** 'न पदान्त' सूत्रेण दीर्घविधौ कर्त्तव्ये स्थानिवत्त्वनिषेधाद्दीर्घे इष्टप्रयोगसिद्धिः। नचान्तरङ्गपरिभाषयान्तरङ्गे दीर्घे कर्तव्ये बहिरङ्गाऽल्लोपस्याऽसिद्धत्वेन पूर्वोक्तदोषस्य तादवस्थ्यमिति वाच्यम्। यथोद्देशपक्षे षाष्ठीमुक्तपरिभाषाम्प्रति दीर्घस्याऽसिद्धत्वादन्तरङ्गाऽभावेन प्रतिपाद्यस्याऽसत्त्वात्परिभाषाया अप्राप्तेरिति भावः॥

ननु वृत्रघ्न इत्यत्र (१)'अनन्तरस्ये'ति न्यायेन 'अत्पूर्वस्ये'तस्य 'हन्तेरि'त्येत्येतद्बाधकत्वेन निर्णीतत्वात् 'एकाजुत्तरपदे' इत्यनेन प्राप्तणत्ववारणाऽसम्भवाण्णत्वं दुर्वारमेवेत्याशङ्कायामाह—**योगविभागसामर्थ्यादिति।** हन्तेरत्पूर्वस्येत्येकेनैव योगेन णत्वसिद्धौ पृथग्योगकरणसामर्थ्यादुक्तन्यायं बाधित्वाऽत्पूर्वस्येत्यनेनाऽत्र प्रवृत्तियोग्यणत्वविधायकशास्त्रमात्रस्य बाधान्न णत्वम्। नचाऽकारस्य लोपेऽत्पूर्वत्वाऽभावात्कथं निषेध इति वाच्यम्। पूर्वस्माद्विधिरिति पञ्चमीसमासाऽऽश्रयणात्स्थानिवत्त्वेन निषेधप्राप्तेः सुलभत्वात्। नचाऽल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेन कुत्वं कथमिति वाच्यम्। नकारे परे कुत्वविधानसामर्थ्यादल्लोपस्य स्थानिवत्त्वाऽभावबोधनादिति भावः॥

**यत्तु वृत्रघ्न इत्यादौ वैकल्पिकं णत्वं माधवेनोक्तमिति।** अस्याऽयमभिप्रायः, भसंज्ञायामल्लोपेऽल्विधित्वेन स्थानिवत्त्वाऽभावादुत्तरपदस्याऽनच्त्वात् 'एकाजुत्तरपदे' इत्यस्याऽप्राप्त्या 'प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु चे'त्यस्य प्रवृत्तौ रूपद्वयमिति—**तद्भाष्यविरुद्धमिति।** 'कुम्यग्रागे हादेशो णत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः' किम्प्रयोजनं वृत्रघ्नः, सुघ्नः, प्राघानि, हन्तेरत्पूर्वस्येत्यत्पूर्वग्रहणं न कर्त्तव्यम्भवतीति भाष्य उक्तम्। भाष्य-

(१) अनन्तरस्येति। 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वे'ति न्यायस्वरूपम्।

वार्त्तिकयोर्णत्वाऽभावे तात्पर्येण णत्वे तु स्पष्ट एव विरोध इति भावः । न च सूत्रसत्त्वे प्रघनाघन इत्यत्र णत्वं तदसत्त्वे तन्न स्यादिति वाच्यम् । अत्पूर्वग्रहणस्य हस्थानिककवर्गाऽभाववद्धन्तेरुपलक्षणत्वेनाऽदोषात् । अत एव योगविभागमूलकवार्त्तिके प्रत्याख्यातेऽपि फलभेदो नेति दिक् ॥

ननु मघवन्शब्दात्सौ 'मघवा बहुलमि'ति मकारस्य त्रादेशे 'उगिदचामि'ति नुमि 'हल्ङ्याबि'ति सुलोपे 'संयोगान्तस्ये'ति तकारलोपे मघवन्निति स्थितौ संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वेन नान्तत्वाऽभावाद्दीर्घो न स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—इह दीर्घे कर्त्तव्ये इति । मघवा बहुलमेतत्सूत्रस्थबहुलग्रहणेन दीर्घे कर्त्तव्ये संयोगान्तलोपो नासिद्ध इति कल्पनादुक्तदोषाऽवकाशो नेति समाधातुरभिप्रायः । बहुलग्रहणस्याऽनेकार्थकत्वेन विपरीतनियमस्यापि सम्भवात्तेन मूलोक्तनियम एव कल्पनीय इत्यत्र प्रमाणं दर्शयितुमाह—तथा च श्वन्नुक्षन्नित्यादि । अयम्भावः, उक्तसूत्रेण महधातोः कन्प्रत्ययाऽवुगाऽऽगमघकारनिपातनेन मघवा मघवानावित्यादि, धनार्थकमघशब्दान्मतुपि मकारस्य वकाराऽऽदेशे 'अत्वसन्तस्ये'ति दीर्घे मघवान् मघवन्तावित्यादि च द्विविधरूपमित्थं संसाध्य 'मघवा बहुलमि'ति सूत्रं कैयटः प्रत्याख्यातवान् । एवञ्च बहुलग्रहणेनाऽसिद्धात्वाऽभावस्याऽकल्पनादारम्भे मघवन् प्रत्याख्याने मघवानिति फलभेदस्य स्पष्टत्वेन प्रत्याख्यानासङ्गतिः स्यात्, "फलैक्ये प्रत्याख्यानं सम्भवति न तु फलभेदे" इति भाष्यम् । तथा च बहुलग्रहणेन तथा कल्पनीयं यथा फलभेदो न स्यात् । अत एव (१)'अर्वणस्तृ-मघोनश्चे'ति श्लोकवार्तिकं सङ्गच्छते । अनेन च मघवन्शब्दस्य लोकेऽनभिधानं बोध्यम् । बहुलग्रहणेन तथा कल्पनायां प्रमाणान्तरं कविप्रयोगं दर्शयितुमाह—हविर्जक्षितीत्यादि ॥

ननु 'ह्वः सम्प्रसारणमि'त्यतः सम्प्रसारणपदाऽनुवृत्त्यैव सिद्धावेतत्सूत्रस्थसम्प्रसारणपदस्य सामर्थ्यात्सम्प्रसारणमात्रनिषेधकत्वेन दूरस्थस्याऽपि 'श्वयुवे'त्यस्य 'व्यथो लिटी'त्यस्य च निषेधः । न च 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणमि'त्यतः सम्प्रसारणपदस्य 'व्यथो लिटी'त्यत्राऽनुवृत्त्या व्यथि–व्यधिप्रभृतिधातौ चरितार्थत्वेन यून इत्यत्र प्राक्कृतस्य सवर्णदीर्घरूपैकादेशस्याऽचः परस्मिन्निति स्थानिवत्त्वादुकारेण व्यवधानात्सम्प्रसारणपरत्वाऽभावेन निषेधो न स्यादिति वाच्यम् । व्यथोऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यान्न तु यकारस्येत्यर्थकेन "व्यथो लिटि न य" इति न्यासेनैव सिद्धौ सम्प्रसारणग्रहणस्य

(१) अर्वणस्तृमघोनश्चेति । 'अर्वणस्तृमघोनश्च न शिष्यं छान्दसं हि तत् । मतुब्वस्योर्विधानाच्च छन्दस्युभयदर्शनात् ॥' इति श्लोकवार्तिकस्वरूपम् ।

यून इत्यत्र यकारस्य सम्प्रसारणनिषेधकत्वेनैव चारितार्थ्यस्य अकारान्तरेण व्यवधानेऽप्येतन्निषेधप्रवृत्तेरङ्गीकारात् 'यूनस्तिरि'ति निर्देशाच्चेत्याऽऽशयेनाह—इति यकारस्य नेत्वमिति । न च कार्यकालपक्षे श्वयुवेत्यत्रोपस्थितस्येग्यणः सम्प्रसारणमित्यस्य पदैकवाक्यतयाऽन्वये भसंज्ञानिमित्तस्य यणाऽन्वयेन यकारा-यजादि-कप्रत्ययावधि—स्वाद्य-सर्वनामस्थानपरकाऽव्यवहितपूर्वत्वविशिष्टस्य यणः सम्प्रसारणमित्यर्थे (१) 'येन नाव्यवधान'न्यायेन पूर्वस्य सम्प्रसारणाऽप्राप्त्या व्यर्थमेव सूत्रमिदमिति वाच्यम् । उक्तपक्षेऽपि सञ्ज्ञासूत्राणां वाक्यभेदेनैव सम्बन्धस्योक्तत्वेन सम्प्रसारणविधायकेषु यण इत्यस्याऽसत्त्वेन निमित्तस्य यणाऽनन्वयेनाऽदोषात् । अन्यतन्निषेधशास्त्रमपि ज्ञापकं बोध्यम् ।

ननु यून इत्यत्र सकृत्प्रवृत्त्यैवोभयोः सम्प्रसारणे जाते निषेधो व्यर्थः, किञ्चोकारस्य दीर्घे कृतेऽनल्विधाविति निषेधेन स्थानिवत्त्वाऽप्राप्त्या सम्प्रसारणपरत्वेन निषेधशास्त्रप्राप्तिरेव न, किञ्च 'लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव-प्रवर्तते' इति न्यायेन वकारस्य सम्प्रसारणविधानेन चरितार्थस्य श्वयुवेत्यस्य पुनरप्राप्तिबोधनेन निषेधशास्त्रं सर्वथा व्यर्थमेवेत्याशङ्क्य समाधत्ते—**अत एव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं सम्प्रसारणमिति ।** एतस्मादेव ज्ञापकाद्दीर्घस्याऽपि स्थानिवत्त्वेन सम्प्रसारणपरत्वे निषेधः सुलभः, एतदारम्भसामर्थ्यादचः परस्मिन्निति स्थानिवत्त्वेन न व्यवधानशङ्कालेशोऽपि । न च (२)'लक्ष्ये लक्षण' न्यायेन पूर्वस्याऽप्राप्तौ व्यर्थमेवैतन्निषेधशास्त्रमिति वाच्यम् । कार्याश्रयवर्णभेदेन लक्ष्यभेदादुक्तन्यायस्याऽविषयत्वेनाऽप्रवृत्त्या तस्याऽऽवश्यकत्वात् । यमुद्दिश्य पूर्वं प्रवृत्तिस्तमुद्दिश्यैव पुनः प्रवृत्तौ तन्न्यायविषयत्वादिति भावः ॥

ननु अनञः किमित्यस्य सूत्रेऽसाविति पर्युदासेन सावप्राप्तावनर्वेति प्रत्युदाहरणमनुपपन्नमिति चेन्न । तस्य यज्वन्शब्दसदृशोऽनर्वन् शब्दो व्यावर्त्य इत्यत्र तात्पर्यादित्याशयेनाह—**अनञः किम् । अनर्वेति ॥**

ननु 'पथिमथ्यृभुक्षामादि'ति सूत्रे आदित्यत्र निरनुनासिकाऽऽकारोच्चारणेऽपि तपरसूत्रस्याऽणीव विधीयमानेऽपि प्रवृत्त्यभ्युपगमेन सवर्णग्रहणान्नकारस्याऽऽन्तरतम्यादनुनासिकः स्यात् । न च तपरस्तत्कालस्येत्यत्राणुदित्सूत्रादप्रत्ययपदाऽनुवृत्त्याऽविधीयमान एव तत्प्रवृत्त्या न कश्चिद्दोष इति वाच्यम् । तत्राऽप्रत्ययपदाऽनुवृत्तौ विनि-

(१) येन नाव्यवधानेति । 'येन नाऽव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि' इति स्वरूपम् ।
(२) लक्ष्ये लक्षणन्यायेनेति । 'लक्ष्ये लक्षणं सकृदेव प्रवर्तते' इति न्यायाकारः ।

गमनाविरहेण दोषस्य तादवस्थ्यादित्याशङ्कय समाधत्ते—**आ आदिति प्रश्लेषेति।** अत्र प्रश्लेषेणाऽऽकारस्यैवविधानात्सर्वाऽऽदेशत्वं नाऽऽशङ्कनीयम्, विशेष्य-विशेषण-भावेनाऽन्वयादनेकाल्त्वाऽभावात्। प्रश्लेषेण शुद्धाया एवाऽऽव्यक्तेर्विधानान्नाऽनुनासिकः। न च 'भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं ने'ति परिभाषया सवर्णग्रहणनिषेधाद्दोषाऽभावेन प्रश्लेषो नावश्यक इति वाच्यम्। भाव्यमानोऽण् सवर्णान् न गृह्णातीत्येव पाठादतोऽ-त्वाऽभावाभिधेयाऽप्राप्त्या सवर्णग्रहणस्य दुर्वारत्वेन तद्व्यावृत्तये प्रश्लेषस्याऽऽव-श्यकत्वादिति **प्राञ्चः।** वस्तुतस्तु **भाष्ये**ऽण्ग्रहितायां एवोक्तपरिभाषयाः पाठेना-ऽस्याः गुणाऽभेदकत्वेन जातिपक्षेणाऽणुदित्सूत्रेण तपरसूत्रेण च प्राप्तसवर्णग्रह-णस्य निषेधकत्वेनाऽदोषात्। अनुनासिकाऽऽकारविधानस्यैवेष्टत्वे प्रक्रियालाघवाय तथैवोच्चारणीये निरनुनासिकाऽऽकारविधानेन शुद्धाऽऽव्यक्तेरेव विधानमित्युक्तत्वा-च्चेति भावः ॥

**शतानि सहस्राणीति।** ननु शतानीत्यनुपपन्नं 'विंशत्याद्याः सदैकत्वे' इत्य-नुशासनादिति चेन्न। एकशेषेणाऽनेकशतबोधतात्पर्यकत्वात्। न च कृते नुमि नान्त-त्वेन षट्त्वाद्विभक्तेर्लुगिति वाच्यम्। सर्वनामसंस्थानसन्निपातेन कृतस्य नुमस्तत्सन्नि-पातविघातकलुगुपपादकत्वेन षट्संज्ञाया अपि सर्वनामस्थानसन्निपातविघातकत्वेन 'सन्निपात' परिभाषया तदनिमित्तत्वबोधनात्। कुम्भकारेभ्यो नगरकारेभ्य इत्यत्राऽ-व्ययसंज्ञावारणपरभाष्यप्रामाण्यात्परम्परासन्निपातविघातकेऽप्युक्तपरिभाषाप्रवृत्तिस्वीका-दिति भावः ॥

ननु 'रायो हली'त्यतो हलीत्यस्याऽपकर्षाद्धलादावात्वविधानेनाष्टावित्यत्राऽऽत्वन्न स्यादित्यत आह—**अष्टभ्य इति वक्तव्य इति।** आत्वस्य लक्षणवशसम्पन्नत्वे हि वैकल्पिकत्वेन लाघवाद्ध्रस्वघटित एव निर्देष्टव्ये कृताऽऽत्वाऽनुकरणं ज्ञापयति क्वचि-दजादावप्यात्वमिति भावः। दीर्घान्तादष्टनः पराऽसर्वनामस्थानविभक्तिरुदात्तेत्यर्थके 'अष्टनो दीर्घादि'ति सूत्रे दीर्घग्रहणं ज्ञापयति वैकल्पिकमिदमात्वमिति, तथाहि, दीर्घा-ऽन्तादेवाऽष्टनः परस्या असर्वनामस्थानविभक्तेरुदात्तत्वाय दीर्घग्रहणं तिष्ठति,आत्वस्य नित्यत्वे तु दीर्घग्रहणाऽभावेऽपि ह्रस्वान्तादष्टनः परस्या उक्तविभक्तेरुदात्तत्वाऽप्राप्त्या दीर्घग्रहणं स्पष्टमेव व्यर्थं स्यादिति दिक् ॥

ननु प्रियष्टन् शब्दाच्छसि शस्येत्त्वे लोपे च कृते भत्वेऽल्लोपे प्रियाष्टन् अस् इति स्थितौ टकारयोगे नकारस्य ष्टुत्वं कुतो नेत्यत आह—**इह पूर्वस्मादपीति।** 'अचः परस्मिन्' इति सूत्रे पूर्वविधावित्यत्र पूर्वस्माद्विधिः पूर्वविधिरिति पञ्चमीसमासाऽऽश्रयणा-

दल्लोपस्य स्थानिवद्भावादकारेण व्यवधानात् ष्टुत्वन्नेति । न च 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदि'ति स्थानिवत्त्वनिषेधादुक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यम् । संयोगादिलोप-लत्वणत्वेषु त्रिविधु कर्त्तव्येषूक्तवचनस्य न प्रवृत्तिरित्यर्थकेन 'तस्य दोषः संयोगादिलोप-लत्व-णत्वेषु, इति वार्त्तिकेन णत्वे कर्त्तव्ये तदप्रवृत्तिबोधनेनादोषात् । न च तस्य दोष इति वार्त्तिके प्रतिपदोक्तणकारस्यैव ग्रहणं न तु लाक्षणिकस्य ष्टुत्वनिष्पन्नस्येति वाच्यम् । तत्र तादृशणकारग्रहणे प्रमाणाऽभावात् । मूर्द्धन्यपदानुवर्त्तनेनैव सिद्धौ रषाभ्यामित्यत्रत्यणकारस्य भाष्यकृता प्रत्याख्याततत्वेन प्रतिपदोक्तत्वाऽलाभाच्चेति भावः । ननु रषाभ्यामित्येतदारम्भसामर्थ्यात्पञ्चमीसमासस्याऽनित्यत्वेन स्थानिवत्त्वाऽभावात्ष्टुत्वाप-त्तिर्दुर्वारैवेत्यत आह—**कार्यकालपक्ष इति ।** कार्येण हेतुना काल्यते स्वसन्निधिं प्राप्यते इति कार्यकालपक्षशब्दार्थः । अत्र पक्षे स्वप्रदेशे विधिशास्त्रेण कार्यहेतोरप-कृष्टयाः परिभाषायाः पृथगेव वाक्यार्थबोधो भवति न तु विधिशास्त्रेण सहेति विवेकः । एवञ्च प्रकृते ष्टुत्वविधायकशास्त्रेणाऽन्तरङ्गपरिभाषाऽपकर्षणात्तया तस्या-ऽन्तरङ्गत्वबोधनेन तत्र कर्त्तव्ये तदपेक्षया बहिरङ्गस्याऽल्लोपस्याऽसिद्धत्वान्न ष्टुत्व-मिति दिक् ॥

ननु 'युजेरसमासे' इत्यनेनाऽसमास एव नुमो विधानेन सोपपदे 'चोः कुरि'ति कुत्वेनैव सिद्धत्वात्किनि क्विपि च न कोऽपि विशेष इत्यत आह—**निरुपपदाद्युजेः क्विन्निति ॥**

ननु 'सृजिदृशोर्झल्यमकिती'ति सूत्रे "रज्जुसृड्भ्यामि"ति भाष्यप्रयोगात्काम्यच् सूत्रे "उपयट्काम्यती"ति प्रयोगाच्च 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः' इति कुत्वन्नेत्याशयेनाऽऽह—**इह सृजियज्योः कुत्वन्नेति क्लीबे वक्ष्यत इति ।**

**परिमृडिति ।** नन्वत्र 'मृजेर्वृद्धिरि'ति कुतो न वृद्धिरिति चेन्न । उक्तसूत्रेण धातुविहितप्रत्यये परे वृद्धेर्विधानेन 'धातोरुच्यमानं कार्यं तत्प्रत्यये' इति परिभाषयाऽत्र सुब्निमित्तकवृद्धेरप्राप्तेः । न च क्विनो धातोर्विहितत्वेन तन्निमित्तिका वृद्धिर्दुर्वारैवेति वाच्यम् । 'क्ङिति चे'ति निषेधात्तन्निमित्तिकाया अपि वृद्धेरप्राप्तेरिति दिक् ॥

ननु 'विश्वस्य वसुराटोः' इत्यनेन वसुशब्दे राट्शब्दे च परे दीर्घविधानादेतद्-दृष्ट्या षत्वादीनामसिद्धत्वाद्राट्शब्दपरत्वाऽभावेन दीर्घो न स्यादित्यत आह—**राडि-ति पदान्तोपलक्षणमिति ।** राडित्यस्य पदान्तोपलक्षकत्वेन पदान्तराजशब्दे परे दीर्घ इत्यस्य फलितत्वान्न काप्यनुपपत्तिरिति भावः । न चोक्तसूत्रेण वसुशब्दे दीर्घ-विधानात् 'आदित्यविश्ववसव' इत्यमरश्लोके कुतो न दीर्घ इति वाच्यम् । तत्र सूत्रे

'नरे सञ्ज्ञायामि'त्यतः सञ्ज्ञा'दाऽकर्षणेन सञ्ज्ञायामेव तद्विधानादित्यलम् ।

ननु त्वं स्त्री अहं स्त्री इत्यत्र मपर्यन्तस्य त्वाहादेशयोः कृतयोर्लोपेन दकारनिवृत्तौ त्व अम्, अह अमित्यवस्थायां परमपि पूर्वरूपं बाधित्वाऽपरनिमित्तकत्वेनाऽन्तरङ्गत्वाट्टाप् स्यात् । न च युष्मदस्मदोरलिङ्गत्वात्स्त्रियां विहितस्य टापोऽप्राप्तिरेवेति वाच्यम् 'शि-शी-लुग्-नुम्विधिभ्यो युष्मदस्मदोर्विभक्त्याऽऽदेशाः पूर्वविप्रतिषेधेने'ति वार्त्तिकप्रामाण्येन तयोर्लिङ्गवत्त्वप्रतीतेरिति चेन्न । शेष इति षष्ठ्यर्थे सप्तमी तथा च मपर्यन्ताच्छेषस्याऽदशब्दस्य लोप इत्यर्थेऽद इत्यस्य लोपेनाऽदन्तत्वाऽभावादुक्ताऽऽपत्तेरयोगात् । अन्यथा आत्वयत्वयोरपवादत्वेन तन्निमित्तेतरविभक्तावेव लोपप्रसक्तौ शेषग्रहणस्य वैयर्थ्याऽऽपत्तेरिति भावः । वस्तुतस्तु अन्त्यलोपपक्ष एव सिद्धान्तः, अत एव नचाऽऽदेशो हलादिरस्तीति 'युष्मदस्मदोरनादेशे' इति सूत्रस्थभाष्योक्तिः सङ्गच्छते । एतेनाऽम्यमादेशस्यैव न्याय्यत्वमुक्तम् । तथा च प्रकृते टावापत्तिस्तदवस्थैवेति चेदुच्यते, अन्तरङ्गपरिभाषया टापा प्रागन्तरङ्गत्वादतो गुणे इत्यस्यैव प्रवृत्तिरिति न तदापत्तिरिति दिक् ।

ननु युष्मच्छब्दादस्मच्छब्दाच्च प्रथमाद्वितीययोर्द्विवचने औ तस्य 'ङे प्रथमयोरम्' इत्यमि 'युवाऽऽवौ द्विवचने' इति क्रमेण युवाऽऽवादेशे युवाम् आवामित्यनयोर्मपर्यन्ताऽधिकारं विनाऽपि सिद्धौ व्यर्थऽमेवाऽधिकारसूत्रमित्याऽऽशयेनाऽऽशङ्कते—**मपर्यन्तस्य किमिति** । समाधत्ते—**साकचकस्य मा भूदिति** । अधिकारसूत्राऽभावेऽकच्चिशिष्टस्यापि युष्मदोऽस्मदश्चाऽऽदेशे युवकाम्आऽऽवकामित्यनयोर्न सिद्धिरित्याऽऽवश्यकं तदिति भावः । ननु 'ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकजन्यत्र तु सुबन्तस्य टेः प्रागि'त्यस्य त्वयकेत्यादिसिद्धये वक्ष्यमाणत्वादिहाऽकचः प्रागादेशे ततः सुबन्तस्य टेः पूर्वमकचि कृते प्रयोगाद्वयसिद्धिः सुलभैवेति नेदमधिकारसूत्रस्य प्रयोजनमित्यरुचेराह—**त्वया, मयेति** । अत्रोक्ताऽधिकारसूत्राऽभावे समुदायस्याऽऽदेशे 'योऽची'त्यनेनाऽकारस्य यत्वे नेष्टप्रयोगसिद्धिरित्याऽऽवश्यकन्तदिति भावः । नन्वत्राऽप्यजादौ विभक्तावकारस्यैत्वमित्यर्थकेन 'अच्ये' इति न्यासेनैवोक्तप्रयोगोपपत्तौ व्यर्थमेव तदित्यरुचेराह—**युवकाभ्याम् । आवकाभ्यामिति** । अत्रोक्तनियमबलेनाऽन्तरङ्गत्वात्सर्वनाम्नष्टः प्रागकचि ततश्चाऽऽदेशे नोक्तप्रयोगसिद्धिरिति तदाऽऽवश्यकमिति दिक् ॥

ननु अन्त्यलोपपक्षे जसोऽमादेशेऽपि तस्य स्थानिवद्भावेन जसबुद्ध्या 'जसः शी'ति स्यादेशो दुर्वार इत्याऽऽशङ्कते—**इह शेषे लोपोऽन्त्यलोप इति पक्षे जसः शी**

प्राप्त इति । समाधत्ते—अङ्गकार्यं कृते पुनर्नाङ्गकार्यमिति न भवतीति । अयम्भावः, 'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः' इति परिभाषास्वरूपम् । अङ्गाऽधिकारे वृत्तं निष्पन्नं यत्कार्यं तस्मिन्सति पुनरन्यस्याङ्गकार्यस्य वृत्तौ प्रवृत्तावविधानं भवतीत्यर्थः, तथा च, अङ्गाऽधिकारवृत्ते कार्येऽस्मि सति पुनरन्यस्याङ्गाधिकारवृत्तकार्यस्य श्यादेशस्य न विधानमिति न दोषः । इयं परिभाषा 'ज्यादादीयस' इत्याकारविधानेन ज्ञापिता, अन्यथेकार-लोपेन 'अकृत्सार्वधातुकयोरि'ति दीर्घेण च ज्यायानिति सिद्धावाद्विधानं स्पष्टमेव व्यर्थं स्यात् । ननु 'द्वयोरि'त्यादिनिर्देशेनोक्तपरिभाषाया अनित्यत्वात्किञ्चाऽङ्गोद्देश्यके कार्यं पुनरङ्गोद्देश्यकं कार्यन्नेत्यर्थकरणादुक्तपरिभाषाऽप्रवृत्तेः । किञ्चाऽस्या लक्ष्ये-सिद्ध्यर्थम्भाष्ये क्वाप्यनाश्रयणाच्च श्याऽऽदेशाऽऽपत्तिस्तदवस्थैवेत्यत आह—ङे प्रथमयोरि'ति । ङे प्रथमयोरम् शसो नेति संहितापाठ इति भावः, नातस्संयोगा-न्तलोपे झल्ग्रहणाऽनुवृत्त्याऽपि दोषः । वस्तुतस्तु न प्रश्लेषेणाऽपि निर्वाहस्तस्य भाष्येऽदर्शनादेवञ्च 'सन्निपात' परिभाषयैवोक्ताऽऽपत्तिवारणमिति न कश्चिद्दोष इति दिक् ।

ननु 'भ्यसो भ्यमि'ति सूत्र भाष्ये भ्यम् अभ्यमाऽऽदेश इति सन्देहे यदि भ्य-माऽऽदेशस्तदा 'शेषे लोप' । इत्यन्तलोपे एवं प्राप्नोति, अथाऽभ्यमादेशः शेषे लोप-ष्टिलोप इत्यन्तस्योदात्तनिवृत्तिस्वरः प्राप्नोतीत्युक्त्वा यथेच्छसि तथास्त्वित्युक्तन्तदाह-आद्यः शेषे लोपस्याऽन्त्यलोपत्व पक्षेऽति । अत्र पक्षे नैत्वमाशङ्कनीयम् , अङ्ग-वृत्तपरिभाषयैव तद्वारणात् । अस्या अनित्यत्वे तु सन्निपातपरिभाषये वैत्वं वारणीयम् । अभ्यमाऽऽदेशस्तु टिलोपपक्षे—अन्त्यलोपपक्षे च साधुर्न तु कश्चिद्दोषः । नचाऽन्त्य-लोपपक्षेऽकारोच्चारणसामर्थ्यात्पररूपं बाधित्वा सवर्णदीर्घाऽऽपत्तिरिति वाच्यम् । अकारोच्चारणस्यैत्वनिवृत्त्या चारितार्थ्येन सामर्थ्यविरहात्पररूपाऽबाधेन परत्वाद-स्यैव प्रवृत्तेः । नचाऽङ्गवृत्तपरिभाषयैव दीर्घव्यावृत्तावभ्यमित्यत्राऽकारोच्चारणं व्यर्थमिति वाच्यम् । तस्योक्तपरिभाषाऽनित्यत्वज्ञापनार्थत्वेन साफल्यात् । नचाऽन्त्यलोपपक्षे 'एकाऽदेश उदात्तेनोदात्त' इत्यनेन युष्मभ्यमित्यत्र युष्मोत्तराऽकारस्योदात्तत्वं टिलो-पपक्षे तु, अभ्यमोऽनुदात्तत्वेन युष्मोत्तराऽकारस्याऽनुदात्तत्वमिति फलभेद इति वाच्यम् । यत्राऽनुदात्ते वर्णे परे उदात्तो लुप्यते स वर्ण उदात्त इत्यर्थकेन अनुदात्तस्य च यत्रो-दात्तलोप' इत्यनेन तस्योदात्तत्वस्यैव विधानेन फलभेदाऽभावादिति दिक् ॥

ननु आकमाऽऽदेशात्पूर्वमनादेशत्वेन यत्वस्य प्राप्त्या 'शेषे लोप' इत्यस्य यत्व निमित्तेतरनिमित्ताऽपेक्षितत्वेनाऽन्त्यलोपाऽप्राप्ताववर्णान्तत्वाऽभावाऽभावात्सुडागमाऽप्र-सक्त्या साम इति ससुट्कनिर्देशो व्यर्थः सूत्राऽङ्गतिश्चेत्याऽऽशङ्क्य समधत्ते—

**भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थं ससुटकनिर्देश इति ।** आकमि शेषे लोपे कृतेऽकारान्तत्वात्सामस्येत्यर्थः । अयम्भावः, यथाऽऽर्द्धधातुकविषये 'अस्तेर्भूरि'त्यनेन भूप्रयोगोऽस्तेरप्रयोगो बोध्यते, एवं सामः प्रसङ्ग आकमित्यनेन सुडामोरत्यन्तमप्रयोगो बोध्यते; यद्यपि आमुदशायां साम इति स्थानिनोऽसत्त्वेन प्रकृताऽदेशाऽप्राप्त्या सत्वेऽन्त्यलोपाऽप्राप्तौ सुटोऽसम्भवेन सर्वथा साम इति स्थानिस्वरूपाऽसिद्धिरेव, तथापि भाविनं सुटं निवर्त्तयितुं ससुटकनिर्देशसामर्थ्यादाम्येव साम्त्वाऽऽरोपेणोक्तस्थानिस्वरूपस्य सिद्धत्वादादेशप्रवृत्तौ स्थानिवत्त्वेन साम्त्वस्यैवाऽऽनयनान्न त्वाऽऽम्त्वस्येति न सुडागमाऽऽपत्तिरिति । यत्तु साम इत्यत्र तन्त्रेणाऽऽमोऽपि सत्त्वात्तस्य पूर्वमाकमि ततोऽन्त्यलोपेऽकारान्तत्वात्सुटि तस्याऽप्याकमि न काऽप्यनुपपत्तिरिति केचित्तन्न । तन्त्राऽऽनाश्रयणे गौरवात् । केचित्तु 'आम आकमि'त्येव सिद्धे सकारोच्चारणं व्यर्थमिति सन्देहे पङ्क्तिमिमामवतारयन्ति—**भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थमिति ।** आकमः स्थानिवद्भावादाम्बुद्धौ प्राप्तसुटो व्यावृत्त्यर्थमुक्तनिर्देशः, साम आकमादेशे तु स्थानिवत्त्वेन साम्त्वमेव नाऽऽम्त्वमिति न कश्चिद्दोषः । वस्तुतः 'आमो डाकमि'-ति न्यासे आमः स्थाने डाकम्विधानाड्डित्वाट्टिलोपेनेष्टसिद्धावलमेतदायासेनेति । नन्वाकमि दीर्घोच्चारणव्यर्थमकारोच्चारणसामर्थ्येन पररूपस्य बाधादिति चेन्न । अकारोच्चारणस्यैत्वनिवृत्त्या चरितार्थत्वादित्यलम् ॥

'युवावौ द्विवचने' 'त्वमावेकवचने' इति सूत्रद्वयेऽपि द्विवचनैकवचनशब्दयोरर्थपरत्वं न तु प्रत्ययपरत्वमिति तत्फलं प्रदर्शयति—**समस्यमान इत्यादिना । द्व्येकत्ववाचिनीति ।** द्वित्वैकत्वविशिष्टवाचिनीत्यर्थः । **समासार्थ इति ।** मुख्यविशेष्यमित्यर्थः । **अन्यसङ्ख्यश्चेति ।** युष्मदाद्यर्थगतसङ्ख्येतरसङ्ख्यायुक्तश्चेदित्यर्थः ॥

ननु 'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थी'इति सूत्रेऽपदादावित्यधिकारो व्यर्थः, पदात्परयोर्युष्मदस्मदोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वान्नावित्याऽऽदेशौ स्त इत्यर्थेनैव सिद्धेरित्याशयेन शङ्कते—**अपदादौ किमिति ।** समाधत्ते—**वेदैरशेषैरिति ।** उक्तसूत्रेऽपदादावित्यस्याऽभावेऽत्र पूर्वाऽन्तवद्भावेनैकाऽऽदेशस्य पूर्वपदत्वादेकदेशविकृतन्यायेन स्मानित्यस्य द्वितीयाऽन्ताऽस्मच्छब्दत्वादादेशः स्यात् तत्सत्त्वे तु नोक्तदोषोऽपदादावविद्यमानत्वादिति भावः । आदेशे सति नः कृष्णः सर्वदाऽवत्विति पादादित्वाऽपत्त्योपजीव्यविरोधान्नादेश इति केचित् स्मानित्यस्याऽपादादौ विद्यमानत्वादादेशः, सत्यादेशेऽपादादित्वस्य विघातः पादादित्वस्य चाऽऽपत्तिरिति स्पष्ट एवोपजीव्यविरोध इति दिक् ॥

ननूक्तरीत्या षष्ठयाद्यन्तानामेवादेशा भविष्यन्ति स्थग्रहणं व्यर्थमिति सन्देहादाह—स्थग्रहणाच्छ्रूयमाणविभक्तिकयोरेवेति। अत्र स्थशब्दोऽहानौ वर्तते, यथा—

'समये तिष्ठ सुग्रीव ! मा वालिपथमन्वगाः।
नायं सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः' ॥

इति रामायणश्लोके समयं मा हासीरित्यर्थकः स्थाधातुरिति ॥

स्थग्रहणस्य फलमाह—नेह युष्मत्पुत्रो ब्रवीतीति। अत्र विभक्तेरश्रवणात्ऽऽदेशः प्रत्ययलक्षणेनाऽपि नादेशापत्तिः। अनेन विभक्तिबुद्धावपि वस्तुतस्तदभावात्। स्थग्रहणसामर्थ्याद्वस्तुतस्तत्सत्त्वे एवाऽऽदेशविधानादिति भावः। एकतिङ्वाक्यमिति। तिङ्पदेन तिङन्तं गृह्यते। एकं तिङन्तं यस्येति बहुव्रीहिः। एकतिङन्तघटितं वाक्यमित्यर्थः। तेन पचतीत्येतन्मात्रस्य न वाक्यत्वम्। इदं स्वशास्त्रकार्योपयोग्येकवाक्यत्वलक्षणं, तेन न पश्य मृगो धावतीत्यादावव्याप्तिः। वस्तुतस्तु एकतिङन्तार्थनिष्ठमुख्यविशेष्यताकबोधजनकं वाक्यमिति तल्लक्षणम्। अत एव पश्य मृगो धावति पचति भवतीत्यादेश्चैकवाक्यत्वसिद्धिः। अत एव 'तिङ्ङतिङः' इत्यत्राऽतिङिति पर्युदासस्य सार्थक्यम्। लौकिकवाक्यत्वञ्च—'सुप्तिङन्तचयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विते'त्यमरेणोक्तम्। तत्र वा शब्दश्चेदर्थे, कारकाऽन्वितक्रिया चेद्बोध्येति शेषः, तथा च कारकान्वितक्रियाबोधकसुबन्तचयस्तथा तिङन्तचयस्तथा सुप्तिङन्तचयश्च वाक्यमित्यर्थ इत्यलम् ॥

ननु 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यामि'त्यादिवत् 'न चवाहाहैवैः' इति तृतीयानिर्देशेनैव सिद्धौ युक्तग्रहणं व्यर्थमित्यत आह—युक्तग्रहणमिति। साक्षाद्योग इति। युष्मदस्मदर्थगतसमुच्चयादिद्योतकत्वे इत्यर्थः। परम्परासम्बन्धेति। स्वार्थाश्रयान्वयान्वयित्वादिरूपे इत्यर्थः। यत्र युष्मदस्मदर्थगतान् समुच्चयादीन् चादयो द्योतयन्ति तदा चादिभिः सहार्थद्वारा युष्मदस्मदोः साक्षाद्योगस्तत्राऽयं निषेधः यत्र तादृशो योगो न तत्र नायं निषेध इति भावः ॥

परम्परासम्बन्धेऽप्ययं निषेध इति। 'न चवाहाहैव युक्त' इति सूत्रस्थयुक्तग्रहणसामर्थ्याज्ज्ञायते साक्षाद्योग एवाऽयं निषेधो न तु परम्परासम्बन्धेऽपीति, पश्यार्थैरित्यत्र तु युक्तग्रहणाऽभावेनोक्तज्ञापनासम्भवात्परम्परासम्बन्धेऽप्येतन्निषेधप्रवृत्तिरिति भावः ॥

इह युष्मदस्मदोरादेशास्तिङन्तनिघात आमन्त्रितनिघातश्च नेति।

अग्ने! तव देवास्मान्पाहीत्यादौ सम्बोधनपदस्याऽऽमन्त्रितसञ्ज्ञाविधानेनाऽविद्यमानवद्भावात्पदात्परत्वाऽभावे न युष्मदस्मदोरादेशः। एवमग्ने! नयेत्यादौ 'तिङ्ङतिङः' इति तिङन्तनिघातो न। अग्न इन्द्र, अग्ने! वरुणेत्यादौ च 'आमन्त्रितस्य च' इत्यामन्त्रितनिघातो नेति विवेकः॥

ननु सर्वदा रक्ष देव! न इत्यत्र देवेति सम्बोधनस्याऽऽमन्त्रितसञ्ज्ञाविधानादविद्यमानवद्भावेन पदात्परत्वाऽभावादस्मदो नसादेशो न स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**सर्वदा रक्ष देव! न इत्यत्र त्विति।** उक्तरीत्या देवेत्यस्याऽविद्यमानवद्भावेऽपि रक्षःशब्दमाश्रित्याऽऽदेशो बोध्य इति भावः। एवं इमं मे गङ्गे! यमुने! इति मन्त्रे सम्बोधनपदानामविद्यमानवद्भावेनाऽऽदेशाऽप्राप्त्या मे शब्दाऽऽश्रयणादादेश इति दिक्॥

ननु प्रति अच् अस् इति स्थितौ यण्लोपयोः प्राप्तौ वहिर्भूतनिमित्तकत्वेन वहिरङ्गलोपाऽपेक्षयाऽन्तरङ्गत्वाद्यणाऽऽदेशः स्यादित्याशङ्क्य समाधत्ते—**अच इति लोपविषयेऽनन्तरङ्गोऽपीति।** अयम्भावः, वहिरङ्गशास्त्रेणाऽन्तरङ्गशास्त्रनिमित्तविनाशे पश्चात्सम्भाविते पूर्वमन्तरङ्गशास्त्रं न प्रवर्त्तते इत्यर्थिकया (१) 'अकृतव्यूह' परिभाषयाऽन्तरङ्गस्य यणोऽप्राप्त्या लोपे दीर्घे च कृते इष्टरूपसिद्धिः। नचोक्तपरिभाषाया भाष्येऽसत्त्वादुक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यम्। एतदभावे लुप्ताऽकारनकारेऽञ्चतौ परेऽन्तरङ्गशास्त्रस्य न प्रवृत्तिरित्यर्थकेन 'चौ प्रत्यङ्गस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः' इति भाष्योक्तवार्तिकेनैवोक्तदोषाऽयोगादिति दिक्॥

**आन्तरतम्यादिति।** सूत्रे ऊदे ह्रस्वदीर्घयोः समाहारद्वन्द्वे घ्यन्तत्वाद्ध्रस्वस्य पूर्वनिपाते सवर्णदीर्घे नपुंसकह्रस्वत्वम्। तेनोभयोर्ग्रहणमिति **प्राञ्चः।** वस्तुतो नैतद्युक्तम् उस् ऊस् इति द्वन्द्वे सुलोपे घ्यन्तत्वाद्ध्रस्वस्य पूर्वनिपाते नपुंसकह्रस्वसवर्णदीर्घयोः प्राप्तौ दीर्घस्य शब्दाऽन्तरप्राप्त्याऽनित्यत्वेन नित्यत्वादपरनिमित्तकत्वेनाऽन्तरङ्गत्वाच्च ह्रस्वत्वे ततः सवर्णदीर्घत्वे उ इति रूपाऽनुपपत्तेः। अत एव 'ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः' इत्यत्र ऊकाल इति न कृतम्। तस्मात् 'दिव उत्' 'ऋत उद्'-

---

(१) अकृतव्यूहेति। 'अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः' इति परिभाषास्वरूपम्। अत्र ज्ञापकं 'समर्थानां प्रथमाद्वे'ति सूत्रे समर्थानामिति, तथा हि कृतदीर्घेभ्यः सूत्थितादिभ्यः प्रत्ययोत्पत्त्यर्थमेव तद्ग्रहणम्, परिभाषाऽसत्त्वे तु अनन्तरङ्गत्वाद्दीर्घे कृत एव प्रत्ययोत्पत्तिरिति व्यर्थं तद्ग्रहणं परिभाषां ज्ञापयतीति।

त्यत्र च तपरकरणेन ज्ञापितया 'भाव्यमानोऽप्युकारः सवर्णान् गृह्णाति' इति परिभाषया सिद्धिर्बोध्या ॥

ननु 'ष्यङः सम्प्रसारणमि'त्यत्र भाष्ये 'अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्ये'ति परिभाषा पठिता । अन्त्यसदेशाऽनन्त्यसदेशयोरेकप्रयोगे युगपत्प्राप्तावन्त्यसदेशस्यैव भवतीति तदर्थः । अनन्त्यविकार इति तत्र लिङ्गम् । तात्पर्यतः पठति—अन्त्यबाध इति । अन्यथा 'णो न' इत्यादि शास्त्रं नेतेत्यादावेव प्रवर्तेत न तु नयतीत्यादाविति भावः । अन्त्यस्य बाधे कार्याप्राप्तावित्यर्थः—अन्त्यसदेशस्येति । अन्त्येन समानो देशो यस्येत्यर्थः । तत्त्वञ्च, अन्त्यवर्णतद्वर्णयोरितराव्यवधानम् । तथा च (१)चलीक्लृप्यते इत्यादौ ऋकारान्तर्गतरेफस्योत्तराज्भागेन व्यवधानादन्त्यसदेशत्वाऽभावेन नैतत्परिभाषाप्रवृत्तिः । (२)अत एव 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणमि'ति सूत्रोदाहरणस्य विद्ध इत्यादेरनया परिभाषया न सिद्धिः, (३)अत एवोक्तनिषेधसूत्रं सफलमन्यथा (४) विद्ध इत्यत्र तत्परिभाषयैवाऽन्त्यसदेशस्य यकारस्यैव कार्यप्राप्तौ वकारस्याऽप्राप्त्या तन्निषेधार्थं व्यर्थमेवोक्तसूत्रमिति । न च नैतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानीति न सम्प्रसारण इति सूत्रस्थभाष्यादेतत्परिभाषाया अभावबोधनात्तत्स्वीकारे तु भाष्यविरोधो दुर्वार इति वाच्यम् । एतत्सूत्रसाध्यानि विद्ध इत्यादीन्युदाहरणानि नैतत्परिभाषाप्रयोजनानीत्युक्तसूत्रस्थभाष्याऽभिप्रायवर्णनेन विरोधपरिहारादिति भावः ॥

ननु 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' इति सूत्रेऽसेरित्यस्य यस्य यकारस्य स्थाने अः सोऽसिस्तस्यासेरिति व्याख्यानात्त्यदादीनामत्वविषय एव मुत्वप्राप्तिरित्याशयेनाऽऽह—इति पक्षे तु अदद्र्यङिति । अत्र तन्त्रेणाऽर्थद्वये सूत्रतात्पर्यं तत्र लक्ष्याऽनुरोधःद्व्यवस्था । अत्र प्रमाणमाह—उक्तञ्च, अदसोऽद्रेरित्यादि । लत्ववदिति । यथा चलीक्लृप्यते इत्यत्र 'कृपो रो लः' इत्यनेन रीग्रकारयोरुभयोर्लत्वं भवति तथैवेत्यर्थः । अत्रादमुयङिति रूपवादिमतं युक्तम्, उक्तरीत्या लत्वे 'अन्त्यबाधेऽन्त्यसदेशस्ये'त्यस्याऽप्रवृत्तावपीह तदप्रवृत्तौ विनिगमकाऽभावात् । अत एव प्रकृतसूत्रे भाष्ये 'अदसो नोऽद्रेरि'ति वार्तिकप्रत्याख्यानायाऽथवाऽसेरिति पक्षं प्रतिपाद्य यथैवममुमुयङिति न सिद्ध्यति अदमूयङिति प्राप्नोति । अदमुयङिति भवितव्यम्, अनन्त्यविकारेऽ-

---

( १ ) चलीक्लृप्यत इति । अन्त्यसदेशत्वलक्षणे इतराव्यवधाननिवेशस्य फलमिदम् ।

( २ ) अत एवेति । इतराव्यवधाननिवेशादेवेत्यर्थः ।

( ३ ) अत एवेति । अनया तदुदाहरणाऽसिद्धेरेवेत्यर्थः ।

( ४ ) विद्ध इति । व्यध् धातोः क्तप्रत्यये 'ग्रहिज्येति' सम्प्रसारणे रूपम् ।

न्त्यसदेशस्त्युक्तम् । अत्रेति प्राप्नोतीत्युक्त्या च तत्र मुत्वाघटितरूपेऽसम्मतिः प्रदर्शिता । इति भवितव्यमित्यनेन पृथङ्मुत्वमिति पक्षसम्मत्यभावो दर्शितः । इति भवितव्यमित्युक्त्या च तत्र शब्देऽप्रयुक्तत्वं सूचितमित्यलम् ॥

विष्वग्देवयोः किमिति । चकारस्याऽप्युपलक्षणमिदम्, चेन सर्वनाम्नः परामर्शात् । तथा च सूत्रे तयोरग्रहणेऽन्यशब्दस्यापि टेरद्र्यादेशाऽऽपत्तावश्वाचीति न स्यादित्याशयेन प्रत्युदाहरति—अश्वाचीति ।

ननु उत्तरपदाधिकारादञ्चुरूपे उत्तरपदे विष्वग्देवशब्दयोष्टेरद्र्याऽऽदेश इत्यर्थे विष्वगञ्चनमित्यादिव्यावृत्तौ व्यर्थमेवाऽप्रत्ययग्रहणमित्याशयेनाऽऽशङ्कते—अप्रत्ययग्रहणं किमिति । समाधत्ते—विष्वगञ्चनमिति । अयम्भावः, व्यर्थमप्रत्ययग्रहणं ज्ञापयति धातुग्रहणे तदादिविधिरिति । तेनाऽञ्चादावुत्तरपदेऽद्र्यादेश इत्यर्थे विष्वगञ्चनमित्यत्राऽऽदेशाऽऽपत्तिरित्याऽऽवश्यकमप्रत्ययग्रहणमिति स्वांशे चरितार्थं जातम् । ज्ञापनफलञ्च 'अतः कृकमी'ति सूत्रे तदादिविधौ करोत्यादावुत्तरपदे सत्त्वसिद्धिरित्यत आह—तेनायस्कार इत्यादि । अन्यथा, अतः कृ इत्यत्र 'नित्यं समास' इत्यतोऽनुवृत्तेन समासग्रहणेनोत्तरपदाऽऽक्षेपेऽपि कृधातुरूपे उत्तरपदे इत्यार्थाऽऽपत्तावयस्कृदित्यादावेव सत्त्वं स्यान्नत्वयस्कार इत्यादाविति दिक् ॥

तिरश्च इति । नन्वत्र श्चुत्वे कर्त्तव्येऽल्लोपस्य स्थानित्वेनाऽकारेण व्यवधानात् श्चुत्वं न स्यादिति चेन्न । पूर्वत्राऽसिद्धीये तन्निषेधादिति भावः ।

ननु 'विप्रतिषेधशास्त्रबलेन पूर्वस्मात्परं बलवत्' ततोऽपि नित्यं कृताऽकृतप्रसङ्गित्वात्, तथा च धीमत्सु इति स्थितौ नुम्दीर्घयोः प्राप्तौ परत्वान्नित्यत्वाच्च दीर्घं बाधित्वा नुमि कृते दीर्घो न स्यादुपधात्वाऽभावादित्याशङ्कां समाधत्ते—परं नित्यं च नुमं बाधित्वा वचनसामर्थ्यादादौ दीर्घ इति । वाक्यार्थबोधकाले विरोधाऽभावादुपधानदसम्बन्धे कृते सामर्थ्यात्पूर्वं दीर्घप्रवृत्तिरेव कल्प्यत इति भावः ।

ननु 'एकानुबन्धकग्रहणे न द्व्यनुबन्धकग्रहणमि'ति परिभाषयाऽतुपदेन मतुपोऽग्रहणाद्धीमानित्यादौ 'अत्वसन्तस्ये'ति दीर्घो न स्यात् । न च सूत्राऽऽरम्भसामर्थ्याद्दीर्घः स्यादेवेति वाच्यम् । अनुनासिकोकारविशिष्टे भवतुशब्दे सूत्रस्य चारितार्थ्यादिति चेन्न । पकारस्य समुदायाऽनुबन्धत्वेऽप्यतुमात्रस्य द्व्यनुबन्धाऽभावात् । अतु इति लुप्तषष्ठ्यन्तं पृथक् पदं तथाचाऽधातोरित्यसन्तस्यैव विशेषणं नत्वत्वन्तस्य, तु शब्दादित्यभिप्रायेणाह—धातोरप्यत्वन्तस्य दीर्घ इति ॥

ननु 'उगिदचा'मिति सूत्रेऽधातोरित्यस्य सत्त्वेन धातोर्नुमोऽप्राप्त्या क्यजन्तादि-

गोमच्छब्दस्य धातुत्वाऽभावान्नुम्न स्यादित्यत आह—**उगिदचामिति सूत्रेऽज्ग्रहणं नियमार्थमिति ।** अयमाशयः, अञ्चतेरुगित्त्वादेव नुमि सिद्धेऽज्ग्रहणसामर्थ्याद्धातोश्चेदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेवेति नियमादन्यधातोर्नुमोऽप्राप्त्या तद्व्यावृत्त्यर्थं कृतमधातुग्रहणं व्यर्थं सज्ज्ञापयति अधातुभूतपूर्वस्याऽपि नुम्भवतीति तेन गोमतः सम्प्रति धातुत्वाऽभावेऽपि भूतपूर्वधातुमादाय नुम्सिद्धिरिति । न च पूजाऽर्थकस्य नुम्नेति नियमसम्पादनायाऽञ्चतेश्चेन्नलोपिन एवेति नियमकरणादज्ग्रहणस्य चारितार्थ्येनोक्ताऽर्थे ज्ञापकत्वञ्च सम्भवतीति वाच्यम् । अचामित्यत्र नलोपस्याऽविवक्षितत्वेन सामान्याऽपेक्षनियमस्यैवौचित्यात् । अज्ग्रहणकृतस्य धातोश्चेदुगित्कार्यमिति नियमस्य फलं तु उखास्रत्, पर्णध्वदित्यादौ नुम्—ङीपोरभावरूपमिति दिक् ।

ननु तादृश् इति स्थितौ निशादिशब्दे ऋत्विगादिशब्दे च चरितार्थयोः 'व्रश्चेति' 'क्विन्प्रत्ययस्ये'ति सूत्रयोः परत्वात्क्विन्प्रत्ययस्येति कुत्वशास्त्रे प्राप्ते पूर्वत्राऽसिद्धमित्यनेन षत्वविधायकशास्त्रदृष्ट्या कुत्वविधायकशास्त्रस्याऽसिद्धत्वप्रतिपादनात्षत्वमेवेत्याऽऽशयेनाह—**कुत्वस्याऽसिद्धत्वाद्व्रश्चेति ष इति ॥**

ननु 'क्विन्प्रत्ययस्य कुरि'त्यस्य स्थाने 'कुः क्विन्यत' इति न्यासेन दृष्ट इत्यध्याहारेण च बहुव्रीहिफलोपपत्तौ तदर्थं कृतस्य प्रत्ययग्रहणस्यान्यपदार्थांशे वीप्सागर्भबहुव्रीहिलाभाऽर्थत्वेन प्रतिलक्ष्यं लक्षणोपप्लवात्तादृशादिक्विन्नन्तविषयस्य लक्षणस्य कुत्वविधायकस्याऽचरितार्थत्वेन षत्वापवादत्वात्कुत्वमेवेत्यभिप्रेत्याह—**षत्वाऽपवादत्वात्कुत्वेनेति । खकार इति ।** अघोष-महाप्राणसाम्यादिति भावः । **कैयट इति ।** क्विन्प्रत्ययस्य कुरित्येतत्सूत्रस्थकैयट इत्यर्थः । **जश्त्वं प्रति कुत्वस्यासिद्धत्वादिति ।** न च कुत्वस्य जश्त्वस्याऽप्यपवादत्वेन कथं मूलोक्तसङ्गतिरिति वाच्यम् । कुत्वस्य शस्थानिकजश्त्वस्यैवाऽपवादत्वं न तु खकारस्थानिकस्याऽपीत्यदोषात् । वस्तुतस्तु प्रत्ययग्रहणस्य बहुव्रीहिमात्रफलकत्वस्यैव भाष्यकृतोक्तत्वाच्चिन्त्यमिदम् । तस्माद् ऋत्विगित्याद्यंशे चरितार्थस्य कुत्वस्य न जश्त्वापवादत्वं युक्तमिति तन्मत इति वदता सूचितमित्यलम् ॥

ननु 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपी'ति सूत्रेण नुमादिव्यवहितसकारस्य षत्वविधानान्निंस्वेत्यत्र नुम्शर्भ्यां व्यवहितप्रत्ययभूतसकारस्थानिकषत्वस्य दुर्वारत्वात्तन्निवृत्त्यर्थं कृतस्य 'निंसेः प्रतिषेधो वक्तव्य' इति वार्तिकस्य प्रत्याख्यानं विधाय योगविभागात्सिद्धम्, तद्यथा नुम्व्यवाये शर्व्यवाये इति स तर्हि योगविभागः कर्त्तव्यो न कर्त्तव्यो व्यवायशब्दस्य प्रत्येकं परिसमाप्तत्वात्प्रत्येकव्यवधान एव षत्वं न त्वनेकव्यवधान इति

अप्रकृतोक्तत्वान्नोक्तस्थले षत्वाऽऽपत्तिरूपदोष इत्येतदेवाह—**प्रत्येकमिति व्याख्यानादनेकव्यवधाने न षत्वं निस्स्वेति ॥**

ननु सर्पींषीत्यादौ षत्वप्राप्तिकाले नुमोऽसत्त्वात्षत्वाऽर्थं नुम्ग्रहणस्याऽनुस्वारोपलक्षणाऽर्थत्वमित्यवश्याऽऽश्रयणादनुस्वारस्य शर्त्वेनैव गतार्थत्वान्नुम्ग्रहणं निष्फलमेवेति चेत्। अनुस्वारव्यवधाने षत्वं चेन्नुम्स्थानिकाऽनुस्वारेणैव व्यवधान इति नियमार्थत्वेन साफल्यात्। अत एव मस्थानिकाऽनुस्वारव्यवधाने पुंस्वित्यादौ न षत्वाऽऽपत्तिरित्याऽऽशयेनाह—**नुम्ग्रहणं नुम्स्थानिकाऽनुस्वारोपलक्षणार्थमिति।**

**तक्षिरक्षिभ्यां ण्यन्ताभ्यामिति।** णिजन्तात् तक्षधातोः रक्षधातोश्च क्विप्प्रत्ययः। क्विपः सर्वापहारः, प्रत्ययलक्षणेन तस्मिन् णिलोपे कृदन्तत्वात्प्रातिपदिकत्वे तक्ष् सु रक्ष् सु इति स्थितौ 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते चे'ति न संयोगादिलोपप्राप्तिः, 'अचः परस्मिन्पूर्वविधावि'त्यनेन क्विपि लुप्तस्य णिचः स्थानिवद्भावेन णिचा व्यवधानेन झल्परकत्वाभावात्। न च पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदित्यनेन णिलोपस्य स्थानिवद्भावनिषेधान्न संयोगादिलोपानुपपत्तिरिति वाच्यम्। संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदित्यस्याप्रवृत्त्या तल्लोपानुपपत्तेस्तादवस्थ्यात्। एवञ्च संयोगान्तलोप एव भवतीति भावः।

ननु पदसंस्कारपक्षे सेद्वस् असिति स्थितौ पूर्वोपस्थितिनिमित्तकत्वेनाऽन्तरङ्गत्वादिटि न सम्प्रसारणप्राप्तिरित्यत आह—**अन्तरङ्गोऽपीडागमः सम्प्रसारणविषये न प्रवर्त्तत इति।** अयम्भावः, इटो निमित्तस्य वलादित्वस्य सम्प्रसारणेन विनाशभावित्वात् 'अकृतव्यूह' परिभाषया न पूर्वमिटः प्राप्तिरिति **प्राञ्चः। नव्यास्तु,** पदावधिकेऽन्वाख्याने सेद्वस् असिति स्थिताविट्सम्प्रसारणयोः प्राप्तौ प्रतिपद्विधित्वेन शीघ्रोपस्थितिकत्वात्पूर्वं सम्प्रसारणे वलादित्वाऽभावादिटोऽप्राप्त्या सेदुष इत्यादिसिद्धावुक्तपरिभाषा निष्फलैव। लघ्व्याऽनुरोधात्पदाऽवधिकाऽन्वाख्यानपक्ष एवाऽत्रेत्याहुरिति दिक् ॥

**सान्तमहत इत्यत्र सान्तसंयोगोऽपि प्रातिपदिकस्यैव गृह्यते न तु धातोः, महच्छब्दसाहचर्यादिति।** न च महत्यतेः क्विपि महतोऽपि धातुत्वस्य सम्भवात्कथमेतत्साहचर्यात्तथा ग्रहणमिति वाच्यम्। क्विपि कृते महतो धातुत्वेऽपि तस्यौपदेशिकधातुत्वाऽसम्भवेन साहचर्यादौपदेशिकधातुभिन्नसान्तसंयोगस्य ग्रहणमित्याशयात्।

ननु 'अनडु् सावि'त्यस्य स्थाने सोडेति न्यासेनैव सिद्धावनड्विधानसामर्थ्यात्क-

चिदन्यतोऽप्यनङ् भवतीति ज्ञापनादुशनश्शब्दस्य सम्बुद्धौ नलिदिरिति भावस्तत्फलितमाह—**अस्य सम्बुद्धावित्यादि** । वस्तुतस्तूक्तन्यायाऽसम्भवे पुरुदंसेत्यत्र सोर्डादेशे टिलोपे 'सान्तमहत' इति दीर्घाऽऽप्तिः । न च 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' इति परिभाषया 'अङ्गवृत्त' परिभाषया वा नोक्तापत्तिरिति वाच्यम् : उभयोरेकस्या अपि भाष्येऽनाऽऽश्रयणात्, एवञ्च वार्त्तिकमिदमपूर्वमेवेति भावः ॥

इति हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् ॥

---

## अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

**निपातनाद्धलोपषत्वं इति** । पूर्वपदान्तस्य लोपो धातोः सस्य षत्वमित्यर्थः । नच 'आदेशप्रत्यययोरि'त्यनेनैव षत्वे सिद्धे निपातनात्षत्वविधानमनावश्यकमिति वाच्यम् । पदादादिः पदादिरिति पञ्चमीसमासपक्षे 'सात्पदाद्योरि'त्यनेन तन्निषेधादिति भावः ॥

**क्विन्नन्तत्वात्कुत्वेन ह्रस्य घ इति** । कैयटादिमते षत्वस्येव ढत्वस्यापि कुत्वेन बाधादिति तदाशयः । उष्णिगञ्चिवति निर्देशात्कुत्वस्य जश्त्वेनाऽसिद्धत्वं स्वरीत्या उ ठडगका इति बोध्यम् ॥

**द्यौरिति** । 'दिव औत्' इत्यौत्वे यणि रूपम् । नचाऽन्तरङ्गपरिभाषयाऽन्तरङ्गे यणि कर्त्तव्ये बहिरङ्गस्यौत्वस्याऽसिद्धत्वादच्परत्वाऽऽभावाद्यणादेशो न स्यादिति वाच्यम् । अजनिष्ठान्याऽऽनन्तर्यनिमित्तके कार्ये कर्तव्ये न बहिरङ्गत्वप्रयुक्ताऽसिद्धत्वस्य प्राप्तिरित्यर्थिकया (१)'नाऽजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः' इति परिभाषयोक्तपरिभाषाबाधेनाऽप्रवृत्तेः । एवञ्च यणुद्दृष्टौत्वस्याऽसिद्धत्वाभावान्नोक्तरूपोपपत्तौ किमपि प्रतिबन्धकमिति भावः ॥

**चतस्र इति** । ननु 'चतुरनडुहोराम्रुदात्तः' इत्यनेन कुतो नाऽऽमिति चेन्न । 'विप्रतिषेध'सूत्रेणाऽऽमोऽपेक्षया चतस्राऽऽदेशस्य परत्वबोधनेन परत्वादामं बाधित्वा चतस्राऽऽदेशस्यैव प्रवृत्तेः । न च कृते चतस्राऽऽदेशे कुतो नाऽऽमिति वाच्यम् ।

---

(१) नाजानन्तर्य इति । अत्र षत्वतुकोरसिद्ध इति सूत्रस्थं तुग्ग्रहणं ज्ञापकम्, तथा हि परिभाषासत्वे अधीत्य प्रेत्येत्यादौ समासोत्तरं ल्यप्प्रवृत्त्या पूर्वं समासे जाते तत्र संहिताया नित्यत्वाल्ल्यबुत्पत्तिपर्यन्तमप्यसंहितयाऽवस्थानासम्भवादेकादेशे ल्यपि तुगपेक्षया पदद्वयसम्बन्धिवर्णद्वयापेक्षैकादेशस्य बहिरङ्गत्वेनासिद्धत्वात्तुक् सिद्धौ सूत्रस्थं तुग्ग्रहणं व्यर्थं सत्परिभाषां ज्ञापयतीति ।

'अकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव' इत्यनया परिभाषया पुनरामोऽप्राप्ते-रिति भावः ॥

**सर्वावदिति ।** नन्वत्र पुंवद्भावः कुतो नेति चेन्न । सर्वाशब्दत्ववदिति तदर्थात् । शब्दपरस्य कदाऽपि सर्वनामत्वाऽभावात् 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव' इत्यस्य न प्रवृत्तिरिति भावः ।

**अमूभिरिति ।** अदन्तत्वाऽभावादेत्वाऽभावेन 'एत ईदि'त्यस्याऽप्रवृत्तौ मुत्वमेवेति भावः ॥ इति हलन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ॥

## अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ।

**दत्वमिति ।** ननु 'वसुस्रंस्वि'ति सूत्रेऽनडुहूशब्दस्यैवोपादानात्स्वनडुहूशब्दस्य दत्वं न स्यादिति चेन्न । तस्याऽङ्गाधिकारस्थत्वेन तदन्तेऽपि प्रवृत्तेः । एवमाङ्गत्वादामोऽपि तदन्ते प्रवृत्तिरिति बोध्यमिति भावः ॥

ननु राजपुरुष इत्यत्र यथा प्रत्ययलक्षणेन पूर्वपदस्य पदत्वान्नलोपादिकार्यं भवति तद्वद्विमलदिवीत्यत्राऽपि प्रत्ययलक्षणेनाऽन्तर्वर्त्तिनीं विभक्तिमाश्रित्योत्तरपदस्य दिव इत्यस्य पदत्वेन 'दिव उदि'त्युत्वं स्यादित्याशङ्कायामाह—**उत्तरपदत्वे चेति ।** 'उत्तरपदत्वे चाऽपदादिविधौ प्रतिषेधः' इति वार्तिकस्वरूपम् । तत्रोत्तरेति लुप्तषष्ठ्यन्तं पृथक् पदम् । तच्च लक्षणयोत्तरपदपरम् । प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारीभूतो भाव इति नियमेन पदत्व इत्यस्य पदसञ्ज्ञायामित्यर्थः **प्राचीनमते, नव्यमते** तु पदत्वप्रयुक्ते कार्य इत्यर्थः । तथा च, उत्तरपदस्य पदत्वप्रयुक्ते कार्ये कर्त्तव्ये लुमता लुप्ते प्रत्ययलक्षणन्नेति प्रथमखण्डार्थः । तेन विमलदिवीत्यादावुत्वं, परमवाचेत्यादौ कुत्वं, सुधियावित्यादौ शाकलह्रस्वत्वञ्च न । किमविशेषेणाऽयं निषेधो नेत्याह—**अपदादिविधाविति ।** न पदादिविधिरपदादिविधिः, पदादिविधिश्चाऽत्र प्रतिपदोक्तत्वात्सात्पदाद्योरित्येव, पदादिविधौ त्वयं निषेधो न प्रवर्त्तत इति द्वितीयखण्डाऽर्थः । एतत्फलं पृच्छति—**अपदादिविधौ किमिति ।** एतदंशासत्त्वे दधिसेचावित्यादौ सेचरूपोत्तरपदस्य पदत्वप्रयुक्तकार्यस्य कुत्वस्य कर्त्तव्यत्वान्निषेधप्रवृत्त्या प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधेन पदत्वाऽभावात्सात्पदाद्योरिति निषेधाऽप्राप्त्या षत्वाऽऽपत्तिस्तदंशसत्त्वे तु षत्वरूपपदादिविधेः कर्त्तव्यत्वादुक्तनिषेधाऽप्रवृत्त्या प्रत्ययलक्षणेन पदत्वस्य सुलभत्वात्सात्पदाद्योरित्यस्य प्रवृत्त्या न तदापत्तिरिति तत्फलमिति भावः । पदादिविधिश्च सात्पदाद्योरित्येवेत्युक्तन्तत्फलं परमवुधावित्यादौ भष्भावो नेति ।

अयं निषेध उत्तरपदस्य कार्यित्व एव प्रवर्तत इति । (१)अत एव माषकुम्भवापेनेत्यत्र 'पदव्यवायेऽपी'ति षत्वनिषेधः सिद्ध्यति । (२)अन्यथा प्रीतासुरपीयकुम्भेषूत्तरपदस्य पदत्वे कर्त्तव्ये प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधात्तस्य पदत्वाऽभावाण्णत्वनिषेधो दुर्लभः स्यात् । कार्यित्वनिवेशे तु तादृशकुम्भरूपोत्तरपदस्य पदत्वप्रयुक्तकार्यस्याऽनवसरत्वेन निषेधाऽप्राप्त्या प्रत्ययलक्षणेन तस्य पदत्वेन निषेधः सुलभ एव । न च कार्यित्वनिवेशे पूर्वदण्डप्रिय इति त्रिपदबहुव्रीहाववाऽन्तरतत्पुरुषोत्तरपदस्य दण्डिनः पदत्वप्रयुक्तनलोपाऽऽदिकार्यस्य कर्त्तव्यत्वान्निषेधप्रवृत्त्या प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधेन पदत्वाभावान्नलोपाऽऽदिकार्यं न स्यादिति वाच्यम् । उत्तरपदशब्देन मध्यमपदत्वाऽनाक्रान्तोत्तरपदस्य ग्रहणेन दण्डिनो मध्यमपदत्वाऽऽक्रान्तत्वान्निषेधाऽयोगेन पदत्वप्रयुक्तकार्यस्य सुलभत्वादिति दिक् ॥

ननु अहः, अहोभ्यामित्यादौ 'रोऽसुपि' 'अहन्' इत्यनयोरचारितार्थ्येनाऽपवादरूपत्वान्नलोपसूत्रस्य बाध एवेति चेन्न । नलोपोत्तरमुक्तसूत्रद्वयस्य चारितार्थ्येनाऽपवादत्वाऽसम्भवात् । असम्भवे सत्येवाऽपवादत्वं सम्भवतीत्युक्तत्वात् । एवञ्च नलोपदृष्ट्या रत्व–रुत्वयोरसिद्धत्वान्नलोपो दुर्वार एवेत्याशयेनाह—**रत्वरुत्वयोरसिद्धत्वान्नलोपे प्राप्त इति ।** न च नलोपे जाते हकारोत्तराऽकारस्य रत्वे रुत्वे वा कृते विशेषाभावादन्यतरविधानेनैवोपपत्तावुभयोरत्व–रुत्वयोर्विधानसामर्थ्यान्नकारस्य लोपो न स्यादिति वाच्यम् । सम्बुद्धौ 'न ङिसम्बुद्ध्योरि'ति नलोपप्रतिषेधेनाऽऽहर्गच्छेत्यादावुत्वाऽभावेन दीर्घाहो निदाघेत्यादावुत्वसम्पादनेन चोभयोश्चारितार्थ्येन सामर्थ्यविरहान्नलोपबाधे मानाऽभावात् । न च नकारोच्चारणसामर्थ्यलब्धेन नकारान्ताऽनुकरणेन नान्तस्याऽहन्शब्दस्य रुरिति व्याख्यानान्नलोपो न स्यादिति वाच्यम् । दीर्घाहो निदाघेत्यादौ प्रवृत्त्या भ्यामादौ व्यावृत्त्या च नकारोच्चारणस्य चरितार्थत्वेन सामर्थ्यविरहादुक्तव्याख्यानाऽसम्भवेन नलोपबाधकत्वाऽसम्भवादिति भावः । **आवृत्त्येति ।** अहन्सूत्रस्याऽऽवृत्त्या सूत्रद्वयस्य जायमानत्वादेकेन रुत्वविधानमपरेण नलोपबाध इति भावः । आवृत्तौ 'रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्' इति वार्त्तिकमेव प्रमाणमन्यथा नलोपेऽकारस्य रेफाऽऽदेशेनैव सिद्धौ वार्त्तिकमिदं व्यर्थमेवेति । न च सम्बुद्धिविषये 'न ङिसम्बुद्ध्योरि'ति निषेधेन नलोपाऽभावात्तत्राऽस्य चारितार्थ्येन, ज्ञापकत्वं न सम्भवतीति वाच्यम् । "सत्यपि सम्भवे बाधनं भवती"ति भाष्येण सम्बुद्धिविषयेऽपि

---

(१) अत एवात् । उत्तरपदस्य कार्यित्व एव निषेधप्रवृत्तेरेवेत्यर्थः ।
(२) अन्यथेति । कार्यित्वनिवेशाऽभावे इत्यर्थः ।

नत्वोन्तस्य प्राप्तिमात्रेण रुत्वरुत्वयोर्येन नाप्राप्तिन्यायेन तदपवादत्वादुक्तवार्त्तिकस्य वैयर्थ्येन ज्ञापकत्वसम्भवात् । अत एव "अत्वादो रुर्नलोपं बाधिष्यत" इत्युक्तम्भाष्ये इति दिक् ॥

ननु अहन्सूत्रे पदाधिकारात्तं प्रत्यहन्शब्दस्य विशेषणत्वेन 'येन विधिरि'त्यनेन तदन्तविधावहन्शब्दान्तस्याऽपि रुरित्यर्थे दीर्घाहन्शब्देऽपि रुत्वमित्यत आह— समुदायस्यापि रुत्वरत्वे इति । न च (१)'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति' इति परिभाषया तदन्तविधिनिषेधात्कथमत्र तदन्तविधिरिति वाच्यम् । उक्तपरिभाषायाः प्रत्ययविधिविषयकत्वेनाऽत्राऽप्रवृत्तेः । न च तदन्तेऽपि रुत्वविधानाद्दीर्घाऽह्नावित्यादावप्यन्तर्वर्त्तिविभक्त्या पदत्वाद्रुत्वाऽऽपत्तिरिति वाच्यम् । उत्तरपदत्वे चेति निषेधेनाऽपदत्वादुक्ताऽऽपत्तेरयोगादिति भावः ॥

**इह हल्ङ्यादिलोप इति ।** दीर्घनिमित्तस्य सोर्हल्ङ्यादिसूत्रेण पश्चाद्विनाशसम्भवात् 'अकृतव्यूह' परिभाषया दीर्घात्प्राक् हल्ङ्यादिलोप एवेति भावः । वस्तुतस्तु सोर्लोपेऽपि प्रत्ययलक्षणेन सुबुद्ध्या दीर्घनिमित्तस्य सोर्विनाशाऽभावादुक्तपरिभाषाऽप्रवृत्तेस्तस्या अनित्यत्वादसत्त्वाच्च परत्वाद्दीर्घ एव, अत एव परत्वादुपधादीर्घ इत्युक्तिः सङ्गच्छत इत्यलम् ॥

**तस्याऽसिद्धत्वान्नान्तलक्षण उपधादीर्घ इति ।** ननु रुत्वात्प्राक् परत्वाद्दीर्घप्रवृत्तौ कथं मूलोक्तसङ्गतिरिति चेन्न । 'अकृतव्यूह' परिभाषया ततः पूर्वं दीर्घाऽप्रवृत्तेः । न च तस्या असत्त्वादुक्ताऽऽपत्तिस्तदवस्थैवेति वाच्यम् । उक्तपरिभाषाऽसत्त्वाऽभ्युपगमे हल्ङ्यादि लोपात्प्राक् परत्वाद्दीर्घस्यैव प्रवृत्तावेतदंक्त्यसंगतेः स्पष्टत्वादिति भावः ।

**असृजः पदान्ते कुत्वमिति ।** अयम्भावः, असृजशब्दस्य पदान्तविषये कुत्वं भवति । यद्यपीह क्विप्प्रत्ययो न तु क्विन् तथापि कुत्वमेव, 'क्विन्प्रत्ययस्य कुरि'त्यत्र क्विन्यतः कुरिति वक्तव्ये प्रत्ययग्रहणसामर्थ्येनाऽत्र वीप्सागर्भबहुव्रीहिलाभस्तथा च यस्मा-

---

(१) ग्रहणवतेति । ग्रहणवत्प्रातिपदिकप्रयोज्यं तदन्तकर्मकं ग्रहणं नेति तदर्थः । ग्रहणवत्प्रातिपदिकप्रयोज्यं तदन्ते विधानन्न भवतीति यावत् । अत्र ज्ञापकं सपूर्वाच्चेति सूत्रमेव, तथा हि पूर्वादिनिरित्यत्र तदन्तविधिना पूर्वशब्दान्तादिनिरित्यर्थे सपूर्वादपि पूर्वशब्दादिनिप्रत्ययोपपत्तौ पृथक् सपूर्वाच्चेति सूत्रं व्यर्थं सत्परिभाषां ज्ञापयति, ज्ञापितायामस्यां तु परिभाषया तदन्तविधिनिषेधात्सपूर्वात्पूर्वशब्दात् पूर्वादिनिरित्यनेन प्रत्ययानुपपत्तौ तदर्थं सपूर्वाच्चेति सूत्रं स्वांशे चरितार्थमिति भावः ।

यस्मात्क्विन् दृष्टस्तस्य तस्य कुत्वं भवतीति फलितोऽर्थः, अत एव सृगित्यत्र सृजेः क्विनो विधानादसृगित्यत्र क्विप्प्रत्ययेऽपि कुत्वप्राप्तेः । नन्वेवं विश्वसृडित्यत्रापि कुत्वाऽऽपत्तिरिति वाच्यम् । 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति' इति सूत्रे रज्जुसृड्भ्यामिति भाष्यप्रयोगादव्ययपूर्वपदे कुत्वाऽभावबोधनादुक्तप्रयोगीयाऽऽनर्थक्यसम्भवात् । उक्तभाष्यप्रयोगेणाऽव्ययपूर्वपदे कुत्वं च बोध्यते इत्यपि बोध्यम् । ननु षत्वविधायकसूत्रे सृजमृजयजेति विशिष्यग्रहणात्षत्वस्य कुत्वाऽपवादत्वात्षत्वस्यैव प्राप्तिर्न तु कुत्वस्येत्यत आह—यद्वा व्रश्चेति सूत्र इति । अनेन पदान्ते षत्वं विधीयते, षत्वं तु कुत्वाऽपवादः, तेनाऽसृजः क्विप्प्रत्ययाऽन्तस्य षत्वमेवोचितम्, सृगिति तु ऋत्विगित्यादिना निपातनाद्बोध्यः । अयमभिप्रायः, निपातनं नाम 'अन्यादृशे प्रयोगे प्राप्तेऽन्यादृशप्रयोगकरणम्' । निपातनेनाऽपवादशास्त्राऽप्रवृत्तिमात्रं बोध्यते । कुत्वं तु सूत्रेणैवेति बोध्यम् । असृगिति तु अस्यतेरौणाऽऽदिकेन ऋच्प्रत्ययेन बोध्यम् ।

ननु वेभिद्यतेः क्विपि अल्लोपे च कृते वेभिदिति रूपम्, तस्माज्जसि तस्य शौ तस्य सर्वनामस्थानत्वेन तस्मिञ्झलन्तलक्षणो नुम् दुर्वार इति चेन्न । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वेनाऽझलन्तत्वादित्याशयेनाह—**अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वादझलन्तत्वान्न नुमिति ।** न चाजन्तलक्षणो नुमेव कुतो नेति वाच्यम् । अजन्तलक्षणे नुमि कर्त्तव्ये स्थानिवत्त्वाऽप्राप्तेः । स्वविधौ स्थानिवद्भावो न भवतीति भाष्योक्तेः । न च 'क्वौ लुप्तं न स्थानिवत्' इति स्थानिवत्त्वनिषेधाज्झलन्तलक्षणनुमाऽऽपत्तिस्तदवस्थैवेति वाच्यम् । उक्तनिषेधवचनस्याऽसार्वत्रिकत्वेनेहाऽप्रवृत्तेः क्वौ विधिं प्रति न स्थानिवदित्येव सार्वत्रिकमिति भावः ॥

जायन्ते नव सौ, तथाऽमि च नव, भ्यांभिस्भ्यसां सङ्गमे
षट्संख्यानि, तथैव सुप्यथ जसि, त्रीण्येव तद्वच्छसि ।
चत्वार्यन्यवचःसु, कस्य विबुधाः शब्दस्य रूपाणि त-
ज्जानन्तु प्रतिभाऽस्ति चेन्निगदितुं षाण्मासिकोऽत्राऽवधिः ॥

इति प्राचीनस्य तार्किकस्य प्रश्ने तदनुसारेणैव श्लोकद्वयेनोत्तरमाह—(१) **गवाक्शब्दस्येति ॥**

ननु गवाकशब्दस्य सप्तमीबहुवचने सुपि 'खरि चे'ति चर्त्वेन ककारे तस्य 'चयो

(१) गवाक्शब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः । असन्ध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाऽधिकशतं मतम् ॥ स्वमसुप्सु नव षड् भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः । चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय ॥ इति श्लोकद्वयम् ।

द्वितीया' इत्यनेन खकारे षड्रूपाणि स्युरिति चेन्न । चर्त्वस्याऽसिद्धत्वेनोक्तवार्त्तिकाऽप्रवृत्तेरित्याशयेनाह—**न चेह चयो द्वितीया इति प्रवृत्त इत्यादि ।** कुकूपक्षे तु जश्त्वदृष्टया कुकोऽसिद्धत्वाज्जश्त्वाऽप्राप्त्या द्वितीयाऽऽदेशे रूपत्रयवृद्धिर्भवत्येवेति भावः।

**अस्थादिभूतानीति।** सप्तविंशत्यधिका पञ्चशतीत्यर्थः । तथा हि, सौ नवानाम- न्त्यस्य 'अनचि चे'ति द्वित्वे अष्टादश । औङि चतुर्णां मध्ये पूजार्थानां त्रयाणां अद्वित्वे सप्त । जसि अद्वित्वेऽणोऽप्रगृह्यस्येत्यनुनासिकत्वे च द्वादश । सङ्कलनया सप्तत्रिंशत् । एवं द्वितीयायामपि विभक्तौ सप्तत्रिंशत् । तथा च सङ्कलनया चतुःसप्ततिः । टाविभक्तौ चतुर्णां मध्ये पूजार्थानां त्रयाणां अद्वित्वे सप्त । तेषां च सप्तानामनुनासिकविकल्पे चतुर्दश । सङ्कलनयाऽष्टाशीतिः । भ्यामि षट्सु रूपेषु भकारात्पूर्वस्य द्वित्वे कृते द्वादश । तेषामपि 'यणो मयः' इति यद्वित्वे चतुर्विंशतिः । तेषामपि मकारस्य द्वित्वेऽष्टचत्वारिंशत् । सङ्कलनया षट्त्रिंशदधिकशतम् । भिसि चतुर्विंशतिः । भकारात्पूर्वस्य विसर्गस्य द्वित्वे सङ्कलनया षष्ट्युत्तरशतम् । ङे-ङसि-ङस्-ओस्-आम्-ङि-ओस् एतेषु नकार-विसर्ग-मकाराणां द्वित्वे, अणोऽप्रगृह्यस्येत्यनुनासिके च यथासम्भवमष्टादीनि रूपाणि । भ्याम्-भ्यसोः, 'अनचि च' यणो मयो द्वे वाच्ये' इति द्वित्वे, अष्टचत्वारिंशत् । सुपि पूर्वोक्तयथासम्भवकार्यैं षडधिकनवतिः रूपाणीति स्वयमूहनीयमिति ॥

ननु सुष्टु आपो यस्मिन् सरसि इति विग्रहे स्वप्शब्दाज्जसि प्राप्तयोर्नुम्दीर्घयोर्मध्ये यद्यपि परत्वान्नित्यत्वाच्च नुम एव प्राप्तिस्तथापि प्रतिपदोक्तत्वान्नुमं बाधित्वा दीर्घस्यैव प्रवृत्तिरित्याशयेनाह—**नित्यात्परादपि नुमः प्रागित्यादि ।** "प्रतिपदोक्तत्वं निरवकाशत्वे सत्येव बाधप्रयोजकम्" इति भाष्यान्निरवकाशत्वप्रतिपदोक्तत्वपक्षे दीर्घस्याऽतथात्वेन नुमेव न तु दीर्घ इति बोध्यम् ॥

पिपठिषीत्यत्र नुमभावोपपादनप्रकारो वेभिदीत्यत्र प्रदर्शित एवेत्यलमत्र तत्प्रदर्शनेनेति दिक् ॥ इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम् ॥

---

## अथ अव्ययप्रकरणम् ।

**यस्मात्सर्वा विभक्तिरिति ।** वचनत्रयात्मिका विभक्तिरिति तदर्थः । नोत्पद्यत इति । किन्त्वेकवचनाऽऽत्मिकैव विभक्तिरुत्पद्यत इत्यर्थः । ननु स्वादिविधायकशास्त्रस्य 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' इत्यादिसङ्ख्याबोधकैः 'प्रातिपदिकाऽर्थलिङ्गपरिमाणे'त्यादिकारकबोधकैश्च सहैकवाक्यतया सुपां विधानमिति पक्षेऽव्ययाऽर्थे सङ्ख्याकार-

 

कयोरभावाद्विभक्त्यनुत्पत्त्यैकवचनोत्पत्तेरप्यसम्भवः। तथा चाव्ययाद्विभक्त्युत्पत्तौ 'अव्ययादाप्सुपः' इत्यस्यैव वैयर्थ्यमिति वाच्यम्। उक्तज्ञापकाऽऽश्रयणादव्ययाद्विभक्त्युत्पत्तिकल्पने तु सर्वासामपि विभक्त्युत्पत्तिसम्भवात्। किञ्च (१)विहितानां नियम इति पक्षेऽपि सर्वेषु प्रातिपदिकार्थकर्माद्यर्थेषु प्रथमादिविभक्तीनां विधेयत्वात् (२) प्रधानप्रत्ययानुरोधेन गुणभूतप्रकृतिभेदकल्पनात्सर्वविभक्त्युत्पत्तौ लोपेनैव जातस्य निवृत्तिः तन्निवृत्ता च कल्पितस्य गुणभूतप्रकृतिभेदस्वरूपस्य स्वत एव निवृत्तावेकवचनस्याऽप्यसम्भवात्। नियमो द्विविधोऽर्थनियमः प्रत्ययनियमश्च। तत्र प्रकृताऽर्थाऽपेक्षसामान्याऽपेक्षभेदेन प्रत्ययनियमोऽपि द्विविधः। तत्र (३)कर्माऽद्यर्थयोग्यप्रातिपदिकाच्चेद्द्विभक्तिस्तदा द्वितीयैव। कर्मादिरहिते कर्मादियोग्यप्रादिपदिकाऽर्थे प्रातिपदिकात्प्रथमैवेत्यादिरर्थनियमः। अस्मिन्पक्षे विभक्तीनाम् (४)अनियतत्वादव्ययेभ्यः सर्वासां सप्तानामपि विभक्तीनां लाभः कर्माद्यर्थयोग्यप्रातिपदिकाच्चेद्द्वितीया तदा कर्मण्येव न तु करणादौ। कर्मादियोग्ये कर्मादिरहितप्रातिपदिकार्थ एव प्रथमा न तु कर्मादौ। सङ्ख्यावदर्थयोग्यप्रातिपदिकादेकत्वाऽऽदावेवैकवचनादि न तु द्वित्वादावित्यादिः प्रकृतार्थापेक्षनियमः। अस्मिन्नपि पक्षे विभक्तीनामनियतत्वेनाऽव्ययेभ्यः सर्वविभक्तिलाभः। अथ प्रातिपदिकाच्चेद् द्वितीया तदा कर्मण्येव नान्यत्र। प्रातिपदिकाच्चेत्प्रथमा तदा मात्रग्रहणात्पर्युदासन्यासेन कर्मादियोग्ये तद्रहितप्रातिपदिकार्थ एवेत्यादिः सामान्यापेक्षः प्रत्ययनियमस्तदा नाव्ययेभ्यो विभक्त्युत्पत्तिरिति चेन्न। विभक्तिविधावुद्देश्यतावच्छेदकाऽवच्छिन्नादेकवचनमित्यर्थकेन 'एकवचनमि'त्येतावतैव सूत्रेणाऽभीष्टसिद्धावेकग्रहणेन सामर्थ्यादेकत्ववत्यपि भवत्येकवचनमिति ज्ञाप्यते।' न चैवं द्वित्वबहुत्वयोरप्येकवचनाऽऽपत्ति-

---

(१) विहितानामिति। ननु 'स्वौजसम्' इत्यादिसामान्यसूत्रेण विहितानां सर्वासां विभक्तीनां 'कर्मणि द्वितीये'त्यादि सूत्रेण नियमः क्रियते इति पक्षे 'तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः' रित्यस्योपपत्तिर्भविष्यतीत्यत आह—किञ्च विहितानामिति पक्षेऽपीति॥

(२) प्रधानेति। नन्वेकस्मात्प्रातिपदिकात्सर्वेषां प्रत्ययानां विधानमेवाऽनुपपन्नं प्रत्ययविधौ निर्दिष्टपरिभाषया प्रातिपदिकाऽव्यवधानेनैवोत्पत्तिर्भवति अव्यवधानश्चैकत्रैव सम्भवति न तु सर्वत्रेति चेन्न। प्रकृतिभेदकल्पनेन तत्तत्प्रकृतिपरत्वस्य तत्र तत्र प्रत्यये सम्भवादित्यत आह—प्रधानप्रत्ययाऽनुरोधेनेत्यादि॥

(३) कर्माद्यर्थयोग्येति। कर्मणि द्वितीयैवेति नियमेन यत्र कर्मादिसम्भवस्तत्रैवाऽन्यासां विभक्तीनां निवृत्तिसम्पादनात्प्रत्यासत्त्या कर्माद्यर्थयोग्यत्वस्य लाभः॥

(४) अनियतत्वादिति। अव्ययानां कर्माद्यर्थयोग्यत्वाऽभावेन तत्तदर्थविभक्त्यन्तरव्यवच्छेदेन नियतान्तत्तद्विभक्तीनामनियमादित्यर्थः।

रिति वाच्यम् । तत्र द्विवचन-बहुवचनयोस्तद्बाधकत्वात् । एवञ्चालिङ्गसंख्येभ्योऽव्ययेभ्यश्चैकवचनस्य सुलभत्वात् । द्विवचनाऽऽदिविधायकयोर्द्विबहुग्रहणसामर्थ्यादेकत्वाऽभावेऽप्येकवचनप्रवृत्तिरिति भावः । द्वित्वबहुत्वये द्विवचनबहुवचनयोर्विधानादर्थादेकवचनमित्येतद्वचनं विनाऽपि द्वित्वाद्यभावे कर्मादावेकवचनस्य सिद्धत्वेन सामर्थ्यादुक्तवचनस्याऽप्राप्तप्रापणार्थत्वेन कर्माद्यभावेऽपि प्रवृत्त्या विनिगमनाविरहात्सर्वविभक्त्येकवचनमप्येत्य इति बोध्यम् । अत एव 'अव्यायादाप्सुप' इत्यत्र प्रत्याहारग्रहणं चरितार्थं तृतीया-सप्तम्योरिति च चरितार्थमित्यलम् ॥

**कृन्मेजन्त इति ।** मान्त इति न कृदन्तविशेषणं किन्त्वेजन्त एव, अन्यथा श्रुत्या मान्तत्वात्प्रत्ययलक्षणेन कृदन्तत्वाच्चानेन सूत्रेणैवाव्ययत्वे सिद्धे गणे प्रशाम्-शब्दपाठस्य वैयर्थ्याऽऽपत्तेः । अत एव प्रतामौ लवमाचक्षाणौ लौरित्यत्र नाऽव्ययत्वाऽतिप्रसङ्गः । न च कृदन्तस्यैजन्तविशेषणत्वे आधये हे आधे इत्यत्र गुणे कुम्भकारेभ्य इत्यत्रैत्वे च कृते कृत एजन्तत्वादव्ययसञ्ज्ञा दुर्वारा । नचाऽव्ययसञ्ज्ञाया अन्तरङ्गत्वेन तद्दृष्ट्या वहिरङ्गगुणाऽऽदेरसिद्धत्वान्नोक्ताऽऽपत्तिरिति वाच्यम् । सञ्ज्ञायाः कार्यार्थत्वेन सञ्ज्ञाकार्यस्य वहिरङ्गत्वेन सञ्ज्ञाया अपि वहिरङ्गत्वादुक्ताऽऽपत्तेस्तादवस्थ्यात् । न च लिङ्गसंख्याद्यनन्वयिन एवाऽव्ययसञ्ज्ञाविधानादुक्तप्रयोगाणां लिङ्गसङ्ख्याद्यन्वयित्वेन नाऽव्ययसञ्ज्ञाप्राप्तिरिति वाच्यम् । अव्ययीभावादाविव लिङ्गसङ्ख्याद्यन्वयित्वेऽप्यापत्तेरिति वाच्यम् । सन्निपातपरिभाषयाऽव्ययसञ्ज्ञाबाधात् । न च लुक एव सन्निपातविघातकत्वादव्ययसञ्ज्ञायास्तदविघातकत्वेन परिभाषायास्तद्बाधकत्वं न स्यादिति वाच्यम् । अनया सन्निपातविघातकशास्त्रस्यैव सन्निपातविघातकशास्त्रप्रवृत्तिनिमित्तातिदेशसञ्ज्ञानामपि निवृत्तेरभ्युपगन्तव्यत्वात् । साक्षात्परम्परया वा स्वसन्निपातविघातकस्य स्वयमनिमित्तमिति परिभाषाऽर्थः । परम्परया सन्निपातविघाते परिभाषाऽप्रवृत्त्यभ्युपगमे तु उपादास्तेत्यत्र कित्वाऽऽपत्त्येत्वापत्तिः । एज्विषयसन्निपातनिमित्तकात्वीयेज्विषयत्वरूपसन्निपातविघातस्य 'क्ङिति च'त्यस्य परिभाषया निवृत्तावपि कित्वस्य परिभाषयाऽनिवृत्तेरिति भावः ॥

ननु उच्चैरतिक्रान्तावत्युच्चैसावित्यादौ उच्चैरित्यव्ययात्परस्य सुपो लुङ् माभूदिति हेतोर्विहितविशेषणमित्यत आह—**अथ विहितविशेषणान्नेहेति ।** अङ्गसञ्ज्ञाया विहितत्वांशप्रवेशेन विहितप्रत्ययनिरूपिताङ्गविशेषणादित्यर्थः । आप्-सुप्भ्यामाक्षिप्तस्याऽङ्गस्य प्रत्यासत्त्याऽव्ययरूपस्यैव ग्रहणमिति तदाशयः । तेन कुम्भकारेभ्य इत्यादौ सन्निपातपरिभाषयाऽव्ययसञ्ज्ञानिवृत्तिद्वारा लुगनिवृत्तिपरभाष्येण न विरोधः ।

ननु विहितविशेषणेऽप्येष दोषः, अव्ययसञ्ज्ञाविधौ प्रयोजनं सर्वनामाऽव्ययसञ्ज्ञायामिति भाष्यात्तदन्तविधिसत्त्वेनाऽत्युच्चैस् इति समुदायस्याऽप्यव्ययसञ्ज्ञाया दुर्वारत्वादिति चेन्न । अव्ययमिति महासञ्ज्ञाकरणसामर्थ्याल्लिङ्गसङ्ख्याद्यन्वयायोग्यस्यैव सञ्ज्ञाविधाने नेह समुदायस्य तदसत्त्वादित्यत आह—**यद्यप्यव्ययसंज्ञायां तदन्तविधिरस्ति तथापि न गौण इति ।** स्वरादीनामितरविशेषणत्वेन गौणत्वात्तदन्तस्य लिङ्गसङ्ख्याद्यन्वये बाधकाभावादिति भावः । वस्तुतस्तु अत्र प्रधानाऽप्रधानन्यायेन सर्वनामसंज्ञासाहचर्येण च प्रसिद्धान्तरङ्गपदान्तराऽनपेक्षादुपसर्जनीभूतस्यैव लिङ्गसंख्याद्यनन्वयिनोऽर्थस्य ग्रहणान्न समुदायस्य नाऽप्यवयवस्य सञ्ज्ञा । अत एव, सर्वनामसञ्ज्ञासूत्रस्योपसर्जनप्रतिषेधाऽनुवृत्त्याऽत्युच्चैसावित्यादावव्ययत्वाऽभावं प्रतिपाद्योपसर्जनप्रतिषेधप्रत्याख्यानप्रकारेणेवेहाऽपि तत्प्रत्याख्यानमुक्तम्भाष्ये । एवञ्चाऽव्ययात्परत्वस्याऽप्यभावाद्विहितविशेषणमङ्गाद्धेपश्च व्यर्थ एवेति । न चोच्चैरौ, उच्चैराभ्यामित्यादावव्ययसंज्ञावारणाय तदस्त्विति वाच्यम् । तादृशप्रयोगाऽनभिधानादिति दिक् ॥

ननु अव्ययानामलिङ्गत्वेन टापश्च स्त्रियां विधानादव्ययादविहितत्वेन व्यर्थमाब्ग्रहणमित्याह—**आब्ग्रहणं व्यर्थमलिङ्गत्वादिति ॥**

ननु इदं सदृशं त्रिष्विति विरुद्धमत आह—**लिङ्गेत्यादि ।** यथोपक्रमोपसंहाराभ्यां ब्रह्मप्रतिपादिकाया अप्यस्याः श्रुतेर्भाष्यप्रामाण्यादत्रोपसंहारस्तथा लिङ्गाद्यभावपरताऽपीति भावः । तत्र विभक्ति-वचनशब्दौ कारक-सङ्ख्याऽभावपरौ, न तु प्रत्ययपरौ तथा सत्यन्यतरवैयर्थ्यापत्तेः ॥

इति अव्ययप्रकरणम् ।

---

## अथ स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम् ।

ननु प्रत्ययविधौ तदन्तविधिनिषेधापवादभूतेन 'उगिद्वर्णग्रहणवर्जम्' इत्यनेन तदन्तलाभादकारान्तशब्दवाच्यस्त्रीत्वे द्योत्येटा वित्यर्थेऽजादीनामप्यकारान्तत्वस्याऽव्यभिचरितत्वादत इयतैव सिद्धे व्यर्थमजादिग्रहणं तत्राऽकारान्तशब्दग्रहणं वेति पूर्वं पक्षस्य जायमानत्वादुत्तरमाह—**अजाद्युक्तिर्ङीषो ङीपश्च बाधनायेति ।** अजादेरुक्तिरजादावुक्तिरिति चार्थः, 'येन नाप्राप्ति' न्यायेन बाध्यसामान्यचिन्ताश्रयणाद्यथाक्रमं जातिलक्षणयोर्लक्षणप्राप्तयोर्ङीष्-ङीपोर्बाधः । तथा हि अजादिग्रहणाभावे अथवा तत्राऽकारान्तग्रहणाऽभावे च न क्रुञ्चादिहलन्तशब्देषु टाबनापत्तिः । क्रुञ्चानालभेत उष्णिहककुभौ देवविशावित्यादिप्रयोगेण तेषामप्यकारान्तत्वादेव तदुपपत्तेः । एवञ्च तदभावे

अजत्वजातिविशिष्टा स्त्रीत्यर्थकेऽजेत्यत्र 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधादि'ति ङीषापत्तिः, प्रथमवयोविशिष्टा स्त्रीत्यर्थके बालेत्यत्र च 'वयसि प्रथम' इति ङीबापत्तिश्च दुर्वारा । न च टाबेव कुतो नेति वाच्यम् । टावपेक्षया जातिलक्षणङीषो वयोलक्षणङीपश्च परत्वात् । अतस्तद्बाधनार्थमजादिग्रहणं, कृते च तस्मिन् सामर्थ्यात्परस्याप्युक्तङीषो ङीपश्च बाधेन टापि न कश्चिद्दोषः । 'स्त्रियामि'त्यधिकारात् 'स्त्रीत्वे द्योत्ये टावि'ति सूत्रार्थः, तत्र स्त्रीत्वञ्च प्रत्यासत्त्याऽजादिवाच्यमेव । वागादिशब्देषु प्रत्ययं विनापि स्त्रीत्वबोधनेन प्रत्ययवाच्यमित्यस्य वक्तुमशक्यत्वात् । 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' 'स्वमोर्नपुंसकादि'त्यादि सूत्रस्वरसाच्च । अत एव व्यावक्रोशीत्यत्र 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियामि'ति णचि 'णच् स्त्रियामि' त्यञि च ङीप् सिद्धिः, न च 'प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः प्रत्ययार्थस्यैव प्राधान्यम्' इति व्युत्पत्तेः सत्त्वात् स्त्रीत्वस्य प्रधानत्वेन प्रकृतिवाच्यत्वं न स्यादिति वाच्यम् । उक्तव्युत्पत्तेर्यत्र प्रत्ययस्य वाचकत्वं तद्विषयकत्वेनेहाप्रवृत्तेरित्यलम् ॥

ननु प्रत्ययविधौ पञ्चम्या युक्ततया पञ्चमीनिर्देशमङ्गीकृत्य तस्य प्रातिपदिकादित्यनेन सामानाधिकरण्येन तदन्तविधावजाद्यन्तप्रातिपदिकेभ्यष्टाबित्यर्थ एव युक्तस्तं विहाय षष्ठ्यन्ततया व्याख्यानेनाऽजादीनां स्त्रीत्वविशेषणतया मूलोक्तार्थोपगमो विफल एवेति चेदत आह—**अजादिभिः स्त्रीत्वस्य विशेषणान्नेहेति । पञ्चाजीति ।** पञ्चानामजानां समाहार इत्यर्थे 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चे'ति समासे विभक्त्योर्लुकि 'सङ्ख्यापूर्वो द्विगुरि'ति द्विगुसंज्ञायाम् 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इति स्त्रीत्वे 'द्विगोः' इ ति सूत्रेण ङीपि पञ्चाजीति सिद्ध्यति, अजादीनां स्त्रीत्वाभावे अजादिभ्यष्टाप् स्त्रीत्वे द्योत्ये इत्यर्थे पञ्चाजशब्दान्ङीपं बाधित्वा टाप् स्यात् । न च पञ्चाजशब्दो नाऽजादिगणे पठितः, पठितश्चाऽजशब्दो नहि तदर्थगतं स्त्रीत्वमस्ति येन ततष्टाप् स्यादिति समुदायादवयवाच्च टापोऽप्रसक्तिरेवेति वाच्यम् । अमहत्पूर्वग्रहणेनाऽनुपसर्जनाधिकारेण च तदन्तविधिज्ञापनेनाऽजाद्यन्तेभ्यष्टाबित्यर्थे टाप्प्रसक्तेर्दुर्वारत्वात् । न चैवमपि स्त्रियामिति श्रुतत्वादेवाऽजादिविशेषणं स्यात् ततश्चोक्ताऽऽपत्त्यसम्भवे षष्ठ्यन्ततया व्याख्यानमनुपयुक्तमेवेति वाच्यम् । अनुपसर्जनाधिकारेण तदन्तग्रहणस्येव स्त्रियामित्यस्य तदन्तविशेषणताया अपि ज्ञापनात् । अत एवाऽतिखत्वरीत्यादिसिद्धिः इह तु षष्ठ्यन्ततया व्याख्यानसामर्थ्यादेव गृह्यमाणविशेषणत्वम्, पञ्चाजशब्दवाच्यस्याऽजशब्दवाच्यत्वेऽप्यजादिमात्रवाच्यत्वस्य विवक्षितत्वान्नेह टाबिति भावः ।

**शूद्रा चाऽमहत्पूर्वा जातिरिति।** अत्र शूद्रा चेत्येको योगः, अमहत्पूर्वा जातिरित्यपरो योगः, तत्र पूर्वयोगे जातेरित्यनुकर्षात् शूद्रशब्दष्टापं लभते जातिश्चेद्वाच्येति वाच्योऽर्थः, स्त्रीत्वं तु प्रत्यासत्त्या शूद्राशब्दार्थसमवेतमेव गृह्यते, तथा च, शूद्रशब्दार्थसमवेते स्त्रीत्वे द्योत्ये जातिवाचकाच्छूद्रशब्दाट्टाप्प्रत्ययः स्यादिति फलितोऽर्थः, तथा च पञ्चानां शूद्राणां समाहारः पञ्चशूद्री, अत्र समाहारनिष्ठस्त्रीत्वस्य शूद्रशब्दार्थसमवेतत्वाभावान्न टाप्, शूद्रस्य स्त्री शूद्रीत्यत्र तु जातिवाचकत्वाभावान्न टाप् जातिमात्रप्रवृत्तिनिमित्तकस्यैव जातिवाचकत्वात्, इह तु शूद्रशब्दस्य सम्बन्धित्वं प्रवृत्तिनिमित्तं न तु शूद्रत्वम्। न चेह शूद्रशब्दस्य सम्बन्धिनि लक्षणया बोधकस्य लाक्षणिकत्वरूपगौणतया (१)'गौण मुख्य' न्यायेन टापो वारणमिति वाच्यम्। पदकार्य एवोक्तन्यायप्रवृत्तेः। विभक्तिनिमित्तकत्वे सति स्त्रीत्वाऽनिमित्तकत्वं हि पदकार्यत्वम्, टापः स्त्रीत्वनिमित्तकत्वेन तत्त्वायोगात्॥

**अमहत्पूर्वाजातिरिति** द्वितीययोगस्य महत्पूर्वकशूद्रशब्दष्टापं न लभते जातिश्चेद्वाच्येत्यर्थः। **महाशूद्रीति।** आभीरजातिवाचकान्महाशूद्रशब्दादुक्तयोगेन टापो निषेधाज्जातिलक्षणे ङीषि सिद्ध्यतीति फलम्। ननु आभीरजातिवाचकमहाशूद्रघटकशूद्रशब्दो नाभीरजातिवाचको नापि तदर्थगतं स्त्रीत्वमिति शूद्रशब्दान्महाशूद्रशब्दाच्च प्रापकाभावाट्टापोऽप्रसक्त्या विफल एव निषेध इति चेन्न। स्त्रीप्रत्यये तदन्तविधिर्भवतीत्यर्थज्ञापनेन शूद्रशब्दान्ताट्टाबित्यर्थे महाशूद्रशब्दात्प्राप्तस्य टापो निषेधेन साफल्यात्। नन्वेवमपि (२)'अर्थवद्ग्रहण' परिभाषयाऽर्थवच्छूद्रशब्दान्तादेव टाप् स्यात् इह तु महाशूद्रशब्दोऽर्थवान्न तु तदवयवः शूद्रशब्द इति पुनस्तदवस्थमेव टापोऽप्रसक्त्या निषेधवैयर्थ्यमिति चेन्न। शूद्रत्वाऽऽरोपेण महाशूद्रशब्दस्याऽऽभीरे प्रयोगाच्छूद्रशब्दस्याऽर्थवत्त्वाऽनपायात्। प्रतिपादितञ्चैतच्छेखरे। न च महाशूद्रशब्दस्य जातिवाचकत्वाऽव्यभिचारेणोत्तरयोगे जातिरिति व्यर्थम्। महती शूद्रेत्यर्थे तु समासात्प्रागेवाऽन्तरङ्गत्वाट्टापि महाशूद्रेत्येवेति वाच्यम्। मृगक्षीर–कुक्कुटाण्डमित्यत्रेव पूर्वं स्त्रीत्वस्याऽविवक्षया टापोऽप्रसक्त्या शूद्रशब्दस्य महच्छब्देन समासे निष्पन्नस्य महाशूद्रशब्दस्य जातिवाचकत्वाभावेन निषेधाऽप्राप्त्या महाशूद्रेत्येव भवति, जातिग्रहणाभावे टापो निषेधाज्जातिलक्षणङीषि उक्तरूपानुपपत्तेः। न च जातिवाचकत्वाऽभावे ङीषोऽप्यसम्भव इति वाच्यम्। शूद्रशब्दस्य जातिवाचकत्वेन तदन्तान्ङीषो दुर्वारत्वादिति भावः।

---

(१) गौणमुख्येति। 'गौण–मुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' इति तत्स्वरूपम्।
(२) अर्थवद्ग्रहणेति। 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्' इति परिभाषास्वरूपम्॥

ननु 'वनो र च' इति सूत्रे वन इति निरनुबन्धकस्य ग्रहणेन 'तदनुबन्धकग्रहणे नाऽतदनुबन्धकग्रहणमि'ति परिभाषाया अप्रवृत्तिरित्याशयेनाह—**वन इति सामान्यग्रहणमिति**।

ननु 'वनो र चे'त्यनेन वन्नन्तप्रातिपदिकान्ङीबादिविधानेऽप्यतिधीवरीत्यादौ वन्नन्तत्वाभावान्ङीप् न स्यादित्यत आह—**प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणमिति**। एतत्सिद्धिप्रकारश्चेत्थम्, तथा हि यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्यये इति योगविभागः, गृह्यमाणे, उपतिष्ठते, इति च शेषः, तथा चाऽयमर्थः—प्रत्यये गृह्यमाणे यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादीत्युपतिष्ठते इति तदाद्यंशसिद्धिः, तदन्तांशस्य सिद्धिस्तु वन्नन्तेति विशेषणं प्रातिपदिकमिति विशेष्यञ्चादाय 'येन विधिरि-स्य'नेनैवेति, देवदत्तश्चिकीर्षतीत्यादौ देवदत्तादेः सन्नन्तत्वप्रयुक्तकार्याभाव एतत्फलम्बोध्यम्। न च 'ग्रहणवते'ति निषेधात्कथमिह तदन्तविधिरिति वाच्यम्। अनुपसर्जनाधिकाराऽमहत्पूर्वग्रहणाभ्यामिह प्रकरणे तदन्तविधेर्ज्ञापनात्। वन इत्यस्य प्रातिपदिकत्वाभावेन निषेधायोगाच्चेत्यलम्॥

ननु 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा' इति न्यायेन 'न षट् स्वस्रादिभ्यः' इत्यनेनाऽव्यवहितङीप एव निषेधः स्यान्नतु ङीप्-टापोरिति चेन्न। 'स्त्रियां यत्प्राप्तं तन्ने'ति व्याख्यानेनोभयोर्निषेधादित्याशयेनाह—**पञ्च, चतस्र इत्यादि**। अयम्भावः, पञ्चेत्यत्र नलोपे तस्य षट्संज्ञां प्रत्यसिद्धत्वान्नान्तत्वेन षट्सञ्ज्ञायां 'न षट्स्वस्रादिभ्य' इति निषेधे न टाविति, इदमसिद्धत्वोपवर्णनं कार्यकालपक्षे एव न तु यथोद्देशपक्षे अत्र च पक्षे पञ्चन्निति नान्तं जायमानषट्त्वस्यैकदेशविकृतन्यायेनाऽदन्तेऽपि सुलभत्वात्। नचोक्तन्यायस्य स्थानिवत्सूत्रे उपसंख्यानादल्विधौ प्रवृत्तिर्न स्यादिति वाच्यम्। षट्त्वस्याऽल्धर्मत्वाऽभावात्तदाश्रयविधीनामपि तत्त्वाभावेन निषेधाऽप्राप्त्या न्यायप्रवृत्तौ बाधकाऽभावात्। नचाऽन्तरङ्गपरिभाषयैवाऽन्तरङ्गे टापि कर्त्तव्ये बहिरङ्गनलोपस्यासिद्धत्वेन नान्तत्वात्षट्त्वेन निषेधोपपत्तौ मूलोक्तप्रयासस्य वैफल्यमिति वाच्यम्। परिभाषायां 'सञ्ज्ञाकृतबहिरङ्गत्वाऽनाश्रयणेन तदप्रवृत्त्या मूलोक्तप्रयासस्य साफल्यात्। न च 'न लोपः सुप्स्वरे'ति सूत्रे सञ्ज्ञापदेन घिसञ्ज्ञाग्रहणात्तां प्रति नलोपाऽसिद्धत्वेन 'द्वन्द्वे घी'त्यस्याऽप्राप्त्या विनिगमनाविरहात्पर्यायेणोभयोः पूर्वप्रयोगे दत्तदण्डिनौ दण्डिदत्ताविति भाष्योदाहरणोपपत्तिः, न च 'द्वन्द्वे घी'ति पूर्वपदत्वे नलोपे च सति घित्वं घित्वे च पूर्वप्रयोग इति परस्परापेक्षारूपान्योन्याश्रयदोषापत्तिरिति वाच्यम्। यस्य पूर्वप-

दत्वे घित्वं भावि तत्पूर्वं प्रयोज्यमिति तत्सूत्रार्थकरणादन्योऽन्याश्रयापत्तेरभावात्। तथा च तत्र घिसञ्ज्ञाया एव ग्रहणे बट्सञ्ज्ञां प्रति नलोपासिद्धत्वाऽनापत्तौ षट्त्वाभावान्निषेधाऽप्राप्त्योक्तदोषस्तदवस्थ एवेति वाच्यम्। निषेधशास्त्रस्य त्रियां यत्प्राप्नोति तन्नेति भाष्यसिद्धान्तभूतार्थाश्रयणबलेन भूतपूर्वषट्त्वमादाय निषेधेनाऽदोषादिति दिक्॥

ननु 'प्रत्ययस्थात्कादि'ति सूत्रे पूर्वस्येत्यस्याभावे पञ्चमी—सप्तमीभ्यां निर्देशात् 'तस्मादित्युत्तरस्य' 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्ये'त्यनयोः प्राप्तौ (१)'उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्' अनया 'तस्मादि'ति परिभाषोपस्थित्या प्रत्ययस्थककाराद्व्यवहितपरस्याऽकारस्येत्वमित्यर्थे कटुकेत्यत्र कटुक आ इति स्थितावन्तरङ्गत्वात्प्राप्तमपि सवर्णदीर्घं (२)'वार्णादाङ्गं बलीयः' इत्यनया परिभाषया (३)'येन नाप्राप्ति' न्यायेन अपवादत्वाच्च बाधित्वेत्वापत्तिरतस्तदावश्यकम्। न च सर्विका कारिकेत्यादावेव परस्येत्वापत्तिवारणाय तदावश्यकत्वे कटुकेति प्रत्युदाहरणोपन्यासो न युक्त इति वाच्यम्। इहाऽदिति तपरकरणादद्ग्रहणाच्च तस्मादिति परिभाषाबाधेऽपि न सर्वथा बाधः, परांशबाधेनैवोपपत्तावव्यवहितांशबाधे मानाभावस्तथा च प्रत्ययस्थककाराऽव्यवहितस्याऽत इत्वमित्यर्थे पूर्वपरयोः प्राप्तौ पूर्वस्यैवेत्यर्थस्याऽनुनासिक इत्यादिनिर्देशेनोपपत्तौ सर्विकेत्यादावदोषात्। एवञ्च युक्त एव कटुकेति प्रत्युदाहरणोपन्यास इत्याशयेनाह—**पूर्वस्य किम्। परस्य माभूत्कटुकेति।** केचित्तु 'प्रत्ययस्य की'ति न्यासमङ्गीकृत्य पूर्वस्येति खण्डयन्ति, तेषामयमाशयः' तथा न्यासे सप्तमीनिर्देशात्तस्मिन्नितीति परिभाषोपस्थितौ प्रत्ययस्थककाराद्व्यवहितपूर्वस्याऽत इदित्यर्थे परस्याऽकारस्येत्वाऽप्राप्तौ कटुकेत्यत्र दोषाभावादलन्तद्ग्रहणेनेति॥

**आतः किम्। साङ्काश्यिकेति।** ननु स्त्रीबोधकाऽकारस्येत्वमिति 'उदीचामि'ति सूत्रस्यार्थेऽकारस्य स्त्रीप्रत्ययावयवत्वेऽप्यस्त्रीबोधकत्वेन न तत्रेत्वापत्तिरिति चेन्न। सङ्काशेन निर्वृत्तं नगरं साङ्काश्यम् 'सङ्काशादिभ्यो ण्यः' इत्यनेन ण्यप्रत्यये तत्र भवेति

---

(१) उभयनिर्देश इति। पञ्चमीनिर्देशस्याऽनवकाशत्वमस्याः प्रवृत्तौ बीजम्। उभयनिर्देशस्य चारितार्थ्येऽपि पञ्चमीनिर्देशस्य परत्वञ्च तत्प्रवृत्तौ बीजम्।

(२) वार्णादाङ्गमिति। वर्णत्वाऽवच्छिन्नोद्देश्यककार्यापेक्षयाऽङ्गोद्देश्यककार्यस्य बलवत्त्वमित्यर्थः।

(३) येन नाप्राप्तीति। 'येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति' इति तत्स्वरूपम्।

विग्रहे 'वन्वयोपधादि'ति वुञि तस्याऽकादेशे साङ्काश्यिकेत्यत्र स्त्रीप्रत्ययाऽवयवाऽकारस्येत्वमिति सूत्रस्याऽर्थकरणे दोषस्य तादवस्थ्यात् । न च स्थाने ग्रहणस्य सद्भावात्स्वयवपक्षप्रभावेन न दोष इति वाच्यम् । भाष्यकृता तस्य प्रत्याख्यातत्वात् । न च साक्षाद्विधेयविशेषणे चरितार्थानां परिभाषाणां विधेयविशेषणविशेषणे न प्रवृत्तिरित्यर्थक (१)'विधौ परिभाषोपतिष्ठते नाऽनुवादे' इत्येतत्परिभाषाज्ञापनार्थं स्थानेग्रहणस्याऽऽवश्यकत्वेन कथं भाष्यकृता तत्प्रत्याख्यातमिति वाच्यम् । एतत्परिभाषाया अपि भाष्येऽदर्शनात् । एतस्या असत्त्वादेव 'उरण् रपरः' इत्यत्र 'उदात्तयणो हल्पूर्वादि'त्यत्र च स्थानार्थलाभः (२)अन्यथा तया 'षष्ठी स्थाने योगा' इत्यस्या अप्रवृत्तिबोधनात्तत्र स्थानार्थलाभो न स्यात् । न च (३)'प्रतिपदोक्त' परिभाषया स्त्रियां विहितस्य स्त्रीप्रत्ययस्यैव ग्रहणात् (४)भवार्थविहितस्य स्त्रीप्रत्ययस्य स्त्रियामविहितत्वेनाऽग्रहणान्न दोष इति वाच्यम् । सूत्रे विशेष्यरूपेण स्त्रीप्रत्ययस्यानुच्चारणादुक्तपरिभाषाया अप्रवृत्तेः । **प्रतिपदोक्तत्वञ्च**—यस्मिन्पदे परिभाषाप्रवर्त्तनीया तत्पदवृत्त्यानुपूर्व्यवच्छिन्नसाक्षाद्विधेयतोद्देश्यताऽन्यतरविषयताप्रयोजकपदघटितशास्त्रत्वमित्यलम् ॥

ननु सूत्रे नञ्पूर्वाणामित्यस्य सत्त्वे नञ्पूर्वाणां भस्त्रा-एषा-अजा-ज्ञा-द्वा-स्वेत्येतेषामात इदित्यर्थस्य भस्त्राद्यन्तानामेषामात इदित्येतत्फलितत्वेन च (५)'पदाङ्गाऽधिकारे तस्य च तदन्तस्य चे'ति तदन्तविधिनैव लाभान्नञ्पूर्वाणामिति व्यर्थमित्याशयेनाह—

**तदन्तविधिनैव सिद्धौ नञ्पूर्वाणामपीति स्पष्टार्थमिति ॥**

ननु सूत्रे भस्त्राशब्दस्येत्वार्थं ग्रहणन्त्वाऽनुपसर्जनादुक्तशब्दादुत्तरसूत्रेणैव सिद्धमितीह व्यर्थन्तद्ग्रहणमित्यत आह—**भस्त्राग्रहणमुपसर्जनार्थमिति ।** एवञ्चाऽनुपसर्जने आदाचार्याणामित्यात्वम्भवत्येव । नचानेनोक्तसूत्रस्य बाधे कथन्तेनाऽऽत्वमिति

---

(१) विधावीति । परिभाषाणामवश्यप्राप्तपरम्पराधिकपरम्परया विधेयोपकारकत्वं न भवतीत्यर्थः । परिभाषायाः प्रधानीभूतविधेयोपकारके सम्पादनीये यावती परम्पराऽवश्यप्राप्ता ततोऽधिकपरम्परा यत्र शास्त्रे विधेयोपकारके तत्र शास्त्रे परिभाषा न प्रवर्तते इति यावत् । (२) अन्यथेति । एतत्परिभाषासद्भावे इत्यर्थः ।

(३) प्रतिपदोक्तेति । 'लक्षण-प्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणमिति' परिभाषास्वरूपम् ।

(४) भवार्थेति । तत्र भवेति विग्रहे जातो वुञ् प्रत्ययः स्त्रियमाहेति तस्य स्त्रीप्रत्ययत्वं परन्त्वसौ स्त्र्यधिकारे विहित इति भावः ।

(५) पदाङ्गेति । पदाधिकार्यङ्गाधिकारि च कार्यं सूत्रोपात्तसजातीयस्य सूत्रोपात्तसजातीयान्तस्य च भवतीत्यर्थः ।

वाच्यम् । उपसर्जनेऽस्य चारितार्थ्येन बाधे मानाभावात् । अन्यस्येति । अनुपसर्जनस्येत्यर्थः । उत्तरसूत्रेणेति । 'अभाषितपुंस्काच्चे'त्यनेनेत्यर्थः ॥

ननु न सु एतद् सु इत्यवस्थायामकचि कृते वा ततः पूर्वमेव नञ्तत्पुरुषसमासे कृते ततोऽकचि 'अन्तरङ्गानपि विधीन्वहिरङ्गो लुग्बाधते' इति न्यायेनान्तरङ्गात्यदाद्यत्वात्प्राक् विभक्त्योर्लुकि पुनर्विशिष्टात्सुपि त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च कृते टापि, अनेषकेति सिद्ध्यति । अत्र टापः सुपः परत्वादसुप इति प्रतिषेधान्नेत्वमित्यत आह—**एषा द्वा एतयोस्तु सपूर्वयोर्नेत्वमित्यादि** ॥

ननु 'अभाषितपुंस्काच्चे'त्यस्य न भाषितः पुमान्येन शब्देन सोऽभाषितपुंस्कस्तस्माद्विहिताऽऽत्स्थानिकस्याऽत इद्वेत्यर्थस्तत्र विहितविशेषणस्य फलमाह—**बहुव्रीहेर्भाषितपुंस्कत्वात्ततो विहितस्य नित्यमिति** । अयम्भावः, अविद्यमाना खट्वा यस्या इति विग्रहे 'शेषाद्विभाषे'ति समासान्तकपो वैकल्पिकत्वेन तदभावपक्षे 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये'त्युपसर्जनह्रस्वेऽखट्वशब्दाट्टापि सुपि अज्ञातादौ के सुब्लुकि 'केणः' इति ह्रस्वे पुनष्टापि अभाषितपुंस्काद्विहिताऽऽकारस्थानिकाऽकारस्याऽभावादेव तद्विकल्पाऽप्राप्तौ प्रत्ययस्थेति नित्यमेवेत्वम् । परविशेषणत्वाऽभ्युपगमे तु आत्स्थानिकाऽकारस्याऽभाषितपुंस्कखट्वशब्दात्परत्वेन वैकल्पिकेत्वाऽऽपत्तिरूपदोषः स्यादेवेति ॥

**शैषिके कपि तु विकल्प एवेति** । अयम्भावः, न खट्वा स्विति स्थितौ कपि सुब्लुकि प्रत्ययलक्षणेन भागद्वयस्य सुबन्तत्वात्समाससञ्ज्ञायां 'समासान्ता' इति शास्त्रबलेन कबन्तस्यैव समासत्वादुपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्तसमासरूपप्रातिपदिकाऽभावात् 'गोस्त्रियोरि'ति ह्रस्वत्वाऽभावेन 'केण' इति प्राप्तह्रस्वत्वस्य 'न कपी'ति निषेधेन 'आपोऽन्यतरस्यामि'ति ह्रस्वे कपः प्राग्वर्त्तिखटवशब्दात्परस्याऽऽपोऽभाषितपुंस्काद्विहितत्वेन तत्स्थानिकाऽकारस्य वैकल्पिकेत्वेऽखट्विका, अखट्वकेति, ह्रस्वाऽभावे तु अखट्वाकेति त्रिविधं रूपं निर्बाधमेवेत्यलम् ॥

**अयमेव स्त्रीप्रत्ययेषु तदन्तविधिं ज्ञापयतीति** । नन्वयमेवेत्ययुक्तम् शूद्रा चाऽमहत्पूर्वा जातिरित्येतद्वार्तिकाऽमहत्पूर्वग्रहणस्याऽपीह तदन्तविधिज्ञापकत्वादिति चेन्न । एवशब्दस्याऽप्यर्थकत्वेनाऽदोषात् । शङ्खः पाण्डुरेवेत्यस्य यथा शङ्खः पाण्डुरोऽपीत्यर्थस्तथाऽयमेवेत्यस्याऽयमपीत्यर्थो बोध्यः । नचाऽनड्वानिवाऽऽचरति अनडुहति ततः कर्तृक्विबन्तादनडुह् शब्दात् 'षिद्गौरादिभ्यश्चे'ति ङीषो वारणायानुपसर्जनाऽधिकारस्याऽऽवश्यकत्वात्तदन्तविधिज्ञापकत्वं न सम्भवतीति वाच्यम् । तदन्तविधिज्ञापक-

तावन्मात्रप्रामाण्यादाचारक्विबन्तप्रकृतिककर्तृक्विबन्तानामनभिधानेन ज्ञापकत्वस्य सुस्थत्वात् । न च पञ्च स्त्रीगोव्यक्तयो धनानि यस्य स पञ्चगवधन इत्यत्र पञ्चगवेत्यस्योपसर्जनत्वेन तत्र ङीबनिवृत्त्यर्थंतस्य चरितार्थत्वेन कथं ज्ञापकत्वमिति वाच्यम् । अर्थवत्सूत्रोक्तस्य 'एतत्सञ्ज्ञाफलभूतविभक्तीतरसमभिव्याहाराऽनपेक्षया लोकेऽर्थविषयकबोधजनकत्व' रूपाऽर्थवत्त्वस्याऽभावेन टजन्तस्य प्रातिपदिकत्वाऽभावेन ङीपोऽप्रसक्तेः । प्राचीनमतेऽपि स्वपर्याप्तत्व-स्वप्रयोज्यबोधजनकत्वप्रकारकवक्तृतात्पर्यीयविशेष्यतापर्याप्त्यधिकरणत्वैतदुभयसम्बन्धेन शक्तिविशिष्टत्वरूपाऽर्थवत्त्वस्य पञ्चगवेत्यत्राऽसत्त्वेन तदप्रसक्तेः । नचाऽऽपिशलिना प्रोक्तमधीते या सा आपिशला ब्राह्मणीत्यत्र ङीब्व्यावृत्त्यर्थमुपसर्जनाधिकारस्य चारितार्थ्यमिति वाच्यम् । प्रोक्ताऽर्थकस्याऽणः स्त्रियामवर्त्तनेन तदप्राप्तेः । नचाऽध्येत्रर्थकाऽणुनिमित्तको ङीप् तु दुर्वार एवेति वाच्यम् । तस्य लुप्तत्वेन तन्निमित्तकस्य ङीपोऽप्रसक्तेः । न च प्रत्ययलक्षणेन तत्सत्ता सुलभैवेति वाच्यम् । अण्योऽकार इति व्याख्यानेन वर्णाऽऽश्रये प्रत्ययलक्षणाऽभावात् । नचाऽध्येत्रर्थगतस्त्रीत्वमादाय प्रोक्ताऽणुनिमित्तको ङीप् स्यादिति वाच्यम् । स्त्रियामित्यस्य गृह्यमाणविशेषणत्वेन प्रोक्ताऽणोऽध्येत्रर्थगतस्त्रीत्वेऽविद्यमानत्वेन तदप्राप्तेः । अत एव काशकृत्स्निप्रोक्तां मीमांसामधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणीत्यत्राऽपि न ङीप् । न च प्रोक्तार्थगतस्त्रीत्वमादाय पुनर्ङीप् कुतो नेति वाच्यम् । लक्ष्ये लक्षणन्यायस्य जागरूकत्वात् । तस्मादनुपसर्जनाऽधिकारस्य बहुकुरुचरेत्येव व्यावर्त्यम् । तत्र तदन्तविधिं विना प्राप्तिरेव नेति तदन्तविधिज्ञापनमावश्यकमेव, सति तु तस्मिन् विशेष्यत्वादनुपसर्जनाऽधिकारसामर्थ्याच्च स्त्रियामिति प्रातिपदिकविशेषणमेव । स्त्रियामित्यस्य प्रातिपदिकविशेषणत्वादेव धीवानमतिक्रान्ताऽतिधीवरीति सिद्धम् (१) एवञ्च आपिशला ब्राह्मणीत्यप्यस्यैव व्यावर्त्यम् । अनुपसर्जनादिति च सामर्थ्याद्गृह्यमाणविशेषणमेव, (२) अन्यथाऽधिकारसूत्रं व्यर्थमेव स्याद्भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिरिति न्यायादतो गुणः कृतात्मसंस्कारः प्रधानमनुरुध्यते इति न्यायाद् गृह्यमाणविशेषणत्वमेव तस्येति भावः । तदन्तविधिफलन्तु कौम्भकारेयसिद्धिः । अन्यथा कुम्भकार्या अपत्यमिति विग्रहेपि केवलकारीशब्दादपि स्त्रीप्रत्ययान्तत्वात् 'स्त्रीभ्यो ढगि'ति ढगाऽपत्त्या कुम्भकारेय इत्यापद्येत । नचैकार्थीभावरूपसामर्थ्यस्य समुदायवृत्तित्वेनैकदेशाऽवृत्तित्वात्तस्मात्तद्धितोत्प-

---

(१) एवञ्चेति । 'अनुपसर्जना'दिति सूत्रे कृते चेत्यर्थः ।
(२) अन्यथेति । 'अनुपसर्जना'दित्यस्यापि प्रातिपदिकविशेषणत्वे इत्यर्थः ।

त्तिर्न स्यादिति वाच्यम् । 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चे'त्यनेनोत्तरपदे समासविधानसामर्थ्यादपर्यायस्याऽप्यैकार्थीभावमादाय वृत्तेः स्वीकारात् । न च (१) 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणमि'ति परिभाषया समुदायादेव ङीबुत्पत्त्या तस्मादेव च ढकि न काऽप्यनुपपत्तिरिति वाच्यम् । उक्तपरिभाषायाः कृन्मात्रग्रहण एव प्रवृत्तेः स्वीकारादित्यलम् ॥

ननु 'टिड्ढाणञि'ति सूत्रेऽनुपसर्जनादित्यधिकारादनुपसर्जनं यट्टिदाद्यन्तं तदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकं ततो ङीबित्यर्थे बहवः कुरुचरा यस्यामिति बहुव्रीहौ कुरुचरशब्दस्याऽन्यपदार्थे विशेषणत्वेनोपसर्जनत्वान्न तद्घटितबहुकुरुचरशब्दान्ङीपः प्रसक्तिरित्याशङ्कनाऽऽह–उपसर्जनत्वान्नेह बहुकुरुचरेति । न च 'समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः' इत्यनेन तदन्तविधिनिषेधाट्टिद्रूपं यत्प्रातिपदिकमित्यर्थस्यैव सम्भवेन नोक्तस्थलीयोक्तापत्तिः । नचोक्तार्थस्वीकारे कुरुचरशब्दस्याऽपि टिद्रूपप्रातिपदिकत्वाऽभावान्ङीपोऽप्रसक्त्या कुरुचरीत्यपि न स्यादिति वाच्यम् । 'अवयवेऽचरितार्था अनुबन्धाः समुदायोपकारका भवन्ती'ति न्यायात्कुरुचरघटकचरेत्यत्राऽनुबन्धस्याऽचरितार्थत्वेन कुरुचरेति समुदाये टित्वस्य बोधनात् । नचोक्तन्यायेन बहुकुरुचरेति समुदायस्याऽपि टिद्रूपत्वादुक्ताऽऽपत्तिस्तादवस्थ्यमेवेति वाच्यम् । यं समुदायं यो न व्यभिचरति स तस्योपकारको भवतीति स्वीकारेणोक्तसमुदाये टिद्रूपत्वस्य व्यभिचारात्तत्राऽऽपत्तेरसम्भवादिति वाच्यम् । अनुपसर्जनाऽधिकारेण ङीप्रत्यये तदन्तविधिज्ञापनात्तत्र चोक्ततदन्तविधिनिषेधकवार्त्तिकाऽप्रवृत्तेश्च ज्ञापनात् । नचोक्ताधिकारेण तदन्तविधिज्ञापनेपि बहुकुरुचरेति समुदायेऽनुपसर्जनत्वस्यैव सत्त्वान्ङीपो दुर्वारत्वेन कथमेतदनुपसर्जनाऽधिकारव्यावर्त्यमिति वाच्यम् । (२)तेनैव सामर्थ्याद्गृह्यमाणविशेषणत्वस्यापि 'ज्ञापनात्तस्य' गृह्यमाणविशेषणत्वात्समुदायस्याऽनुपसर्जनत्वेऽपि गृह्यमाणस्य कुरुचरेत्यस्योपसर्जनत्वेन व्यावर्त्यत्वसम्भवात् । नचाऽनुपसर्जनादित्यस्य गृह्यमाणविशेषणत्वेपि 'स्त्रियामित्यस्याऽपि' गृह्यमाणविशेषणत्वात्तस्य च स्त्रियामविद्यमानत्वेन दोषाऽभावात्कथं

---

(१) कृद्ग्रहण इति । अत्र गतिरनन्तर इति सूत्रेऽनन्तरग्रहणं प्रमाणम् । तथा हि, अभ्युद्धृतमित्यादावभेः प्रकृतिस्वराऽभावायाऽनन्तरग्रहणं तिष्ठति, परं प्रत्ययग्रहणपरिभाषयोद्धृतस्य क्तान्तत्वाभावादेवाभेः प्रकृतिस्वराप्राप्तौ तदर्थं कृतमनन्तरग्रहणं व्यर्थं सत्परिभाषां ज्ञापयति, ज्ञापितायान्त्वस्यामनयोद्धृतस्य क्तान्तत्वात्तस्मिन्नभेः प्राप्तस्य प्रकृतिस्वरस्य वारणार्थमनन्तरग्रहणं स्वांशे चरितार्थमिति भावः ।

(२) तेनैवेति । अनुपसर्जनाऽधिकारेणैवेत्यर्थः ।

व्यावर्त्त्यमिति वाच्यम् । 'अनुपसर्जनादि'त्येतत्सामर्थ्यात्स्त्रियामित्यस्य तदन्तविशेषणत्वज्ञानादिति भावः ॥

ननु वचधातोर्लृटि तत्स्थाने शानचि स्यप्रत्यये वच्यादेशे मुगागमे चकारस्य कुत्वे सकारस्य षत्वे कषोर्योगे वक्ष्यमाणशब्दात्टापि णत्वे सति वक्ष्यमाणेति सिद्धम् । अथाऽत्र लृटष्टित्वोगित्वयोः स्थानिवद्भावेनाऽऽदेशभूते शानचि सुलभत्वाट्टापं बाधित्वा (१)ङीपा भवितव्यम् । नचाऽनल्विधाविति निषेधात्स्थानिवद्भावाऽप्राप्त्या टित्वोगित्वयोरनतिदेशेन नोक्ताऽऽपत्तिलेशोऽपीति वाच्यम् । 'न ल्यपी'ति ज्ञापकात् (अनुबन्धकार्ये) इत्पदघटिताऽल्मात्रवृत्तिधर्मघटितधर्मावच्छिन्नोद्देश्यताके कार्येऽनल्विधाविति निषेधाऽप्रवृत्तिज्ञापनात् । (२)अन्यथा प्रधाय, प्रदायेत्यादावनल्विधाविति निषेधेन क्त्वाघृत्तिकित्वस्याऽनतिदेशात् 'घुमास्थागापे'तीत्वाऽप्राप्त्या तन्निषेधार्थं 'न ल्यपी'-त्यस्य स्पष्टमेव वैयर्थ्यं स्यात् । (३) अत एव रमायामित्यादौ परत्वात् 'ङेराम्'त्यामि कृते स्थानिवद्भावेनाऽऽमो ङित्वात् 'याडापः' इति याडागमस्य सिद्धिरित्याशयेनाऽऽह—वक्ष्यमाणेत्यत्र टित्वादुगित्वाच्च ङीष्प्राप्त इति । समाधत्ते-यासुटो ङित्त्वेनेति । अयम्भावः, 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्चे'ति सूत्रेण लिङादेशतिबादीनां यासुडागमस्य ङित्वं विधीयते परमेतद्विफलं लिङ्गतङ्त्वस्य स्थानिवद्भावेन तत्स्थानिकादेशे सुलभत्वात् (४)'यदागम' परिभाषया यासुड्विशिष्टेऽप्यतिदेशात् । एवञ्चोक्तसूत्रविहितं ङित्वं व्यर्थं सज्ज्ञापयति लाऽऽश्रयमनुबन्धकार्यं नादेशानामिति । लकारवृत्तीत्पदघटिताऽल्मात्रवृत्तिधर्माऽतिदेशेऽनल्विधाविति निषेधः प्रवर्त्तत एवेति तदर्थः । तथा च प्रकृतेऽनल्विधाविति निषेधाट्टित्वोगित्वयोरनतिदेशान्न तत्प्रयुक्तोक्ताऽऽपत्तिरिति । ननु 'सार्वधातुकमपिदि'ति सूत्रेऽपिदिति योगं विभज्य तत्र 'गाङ्कुटादिभ्यो ञ्णिन्ङिदि'त्यतो ङिद्ग्रहणमनुवर्त्योभयोरावृत्तिं कृत्वाऽपिदिति प्रसज्यप्रतिषेधमाश्रित्य 'ङिच्च पिन्न भवती'त्युक्तम्भाष्ये, अत एव नूतादित्यत्र 'ब्रुव इट्' इतीण् न भवति तथा च रुयात् स्तुयादित्यादावुक्तभाष्यात्तदुभयोस्समावेशाऽसम्भवात्साक्षात्पित्वे-

(१) ङीपेति । 'टिड्ढाणञि'ति 'उगितश्चे'ति सूत्राभ्यामित्यर्थः ।

(२) अन्यथेति । अनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति निषेधप्रवृत्तावित्यर्थः ।

(३) अत एवेति । न ल्यपीति ज्ञापकेनाऽनुबन्धकार्येऽनल्विधाविति निषेधाऽप्रवृत्तेरेवेत्यर्थः ।

(४) यदागमेति । 'यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते' इति परिभाषास्वरूपम् । अत्र 'नेटि', 'णेरनिटी'तिसूत्रेऽनिटीति च ज्ञापकम् ।

नाऽऽतिदेशिकङित्त्वबाधे गुणनिषेधाऽनुपपत्त्या गुणनिषेधाय ङित्त्वविधानस्य साफल्ये लाऽऽश्रयेति वचनज्ञापनाऽसम्भवाद्वक्ष्यमाणेऽत्र दोषसद्भावस्य परिहारायेदमाह—**श्नः शानचः शित्त्वमिति।** शानचि शित्त्वस्य 'सार्वधातुकमपिद्' इति ङित्त्वेन 'क्ङिति च' इति निषेधेन पुषाण, मुषाणेत्यादौ गुणाभावः प्रयोजनम्, तच्च तत्र शित्करणमन्तराऽपि श्नानुवृत्तिशित्त्वस्य स्थानिवद्भावादानचि सुलभत्वादुकारान्तोपपत्तावेवेति व्यर्थं शानचि शित्त्वं ज्ञापयति क्वचिदनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति निषेधः प्रवर्तत इति। तथा च तेन ज्ञापितार्थेन 'न ल्यपी'ति ज्ञापिताऽर्थबाधेन न ङीबापत्तिः स च बाधो न सार्वत्रिक इति तत्र क्वचिदित्युक्तम्। न च शानचः शित्त्वस्य भाष्ये प्रत्याख्यातत्वादुक्ताऽर्थे तस्य ज्ञापकत्वाऽसम्भवेन कथमत्र ङीबभाव इति वाच्यम्। सत्यभिधाने वक्ष्यमाणेत्यस्याः ऽजादौ पाठेन तदुपपत्तेः। टापो ङीबादेर्बाधकत्वान्न ङीबिति भावः। 'न मुने' इति सूत्रे टायामादेश इति भाष्यप्रयोगादजादेस्त्वाकृतिगणत्वेन न कश्चिद्विवाद इति दिक्॥

ननु चुरा शीलमस्या इति विग्रहे 'शीलं' 'छत्रादिभ्य' इतिणेऽणत्वाऽभावेन 'टिड्ढाणञि'त्यस्याऽप्राप्त्या ङीबभावेन चौरीति ङीबन्तप्रयोगो न स्यादित्याशङ्क्य, समाधत्ते–**ताच्छीलिके णेऽपीति।** उक्तसूत्रेण णप्रत्यये कृतेऽणपरत्वाऽभावादेव 'अन' इति प्रकृतिभावस्याऽप्राप्त्या 'नस्तद्धिते' इति टिलोपेनैव कार्म इति सिद्धावन इत्यस्य बाधनार्थं कृतं ताच्छील्येऽर्थे कार्म इति निपातनं व्यर्थं सज्ज्ञापयति अणि सति यत्कार्यं तत्ताच्छीलिके णेऽपि भवतीति नोक्तप्रयोगाऽसिद्धिरूपदोषाऽवकाश इति भावः। उक्तज्ञापने ताच्छीलिकेत्यस्य फलं 'तदस्यां प्रहरणमि'ति विहितणान्ते दाण्डेत्यादौ ङीबभावरूपम्, ण इत्यस्य फलं पुष्पाण्याहरति तच्छीला पुष्पाहरेत्यच्प्रत्ययान्ते ङीबभावरूपमिति बोध्यम्॥

ननु 'प्राचां ष्फ तद्धित' इत्यत्र यञ् एवाऽनुवृत्त्यर्थं 'टिड्ढाणञि'ति सूत्रात्पृथक् 'यञश्चे'ति योगविभागः कृतस्तत्र वार्त्तिककारेणाऽपत्यग्रहणं कर्त्तव्यमिति यद्यपि पठितं तथापि तदपत्याधिकारपरं तादृशश्च 'गर्गादिभ्यो यञि'ति विहित एव तदन्तादेव च ङीप् नाऽन्यस्मादित्याशयेनाह—**अनपत्याधिकारस्थान्न ङीबिति।** अपत्याधिकारस्थभिन्नादित्यर्थः। अपत्यार्थभिन्नादपत्यार्थेऽप्यपत्याधिकारस्थभिन्नाच्च न ङीबिति पर्यवसितोऽर्थः। तथा च द्वीपे भवा द्वैप्येत्यत्र न ङीप्। तत्र 'द्वीपादनुसमुद्रं यञ्' इति विहितयञो भवार्थकत्वेनाऽपत्यार्थभिन्नत्वात्। एवं देवस्याऽपत्यं दैव्येत्यत्राऽपि न ङीप्, अत्र 'देवाद्यञञावि'ति विहितस्य यञः प्राग्दीव्यतीयत्वेनाऽपत्याऽधिकार-बहिर्भूतत्वात्। 'तेन दीव्यती'त्यतः प्राग्येऽपत्यादयोऽर्थास्तत्रैवास्य यञो विधानं नत्व-

ष्टस्यातिप्रसङ्ग इति भावः । नचोक्तस्याऽपत्यग्रहणं कर्त्तव्यमिति वार्तिकस्य भाष्यकृता प्रत्याख्यातत्वात्कथमुक्तकल्पनेति वाच्यम् । उक्तयोगविभागाऽकारप्रश्लेषादिकरणात् 'यञश्चे'त्यत्राऽपत्याधिकारस्थस्यैव यञो ग्रहणमिति भाष्यकारव्याख्यानाच्चोक्तार्थकल्पनाऽसम्भवादित्यलम् ॥

ननु षित्वविधानसामर्थ्यादेव प्रातिपदिकत्वाऽभावेऽपि ङीप्सिद्धौ 'प्राचां ष्फतद्धित' इत्यत्र तद्धितग्रहणं व्यर्थमित्याशङ्क्य समाधत्ते—तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वमिति । अयम्भावः, अत्र सूत्रे तद्धितग्रहणे कृते सति ष्फप्रत्ययस्य तद्धितसञ्ज्ञाविधानेन तदन्तस्य प्रातिपदिकत्वात् 'षिद्गौरादिभ्य' इति ङीष्सिद्धिः । तद्ग्रहणे तु न स्यात् । नचोक्त ङीष्विधायकशास्त्रे प्रातिपदिकविशेषणे सति तद्धितग्रहणस्याऽऽवश्यकत्वम्भवति परमुक्तविशेषणस्यैव तत्र फलाऽभावाद्वैफल्यमिति वाच्यम् । (१)तस्य त्रपा क्षमा भृजेत्यादौ धातोः षित्वान्ङीष्व्यावृत्त्यर्थत्वेन साफल्यात् । एवञ्च प्रातिपदिकत्वाऽर्थं तद्धितग्रहणमावश्यकमेव परमेतदयुक्तम्, त्रपा क्षमेत्यादौ धातोः षित्वस्याङ्प्रत्ययसम्पादनाचारितार्थ्येन सामर्थ्यविरहात्तत्र ङीषोऽप्राप्त्या तदर्थं ङीष्विधायकशास्त्रे प्रातिपदिकविशेषणस्याऽनावश्यकत्वेन तद्धितग्रहणस्याऽप्यनावश्यकत्वात् । न च गार्ग्यशब्दात्ष्फप्रत्यये कृते यञोऽकारस्य 'यस्येति चे'ति लोपार्थं तद्धितग्रहणमस्त्विति वाच्यम् । सवर्णदीर्घेणाऽपि रूपसिद्धेः । एवञ्च व्यर्थीभूतं तद्धितग्रहणं ज्ञापयति क्वचिदन्तादपि ष्फो भवतीति तेन 'आसुरेरुपसङ्ख्यानम्' इति वचनं सिद्धम् । तद्धितग्रहणज्ञापितार्थफलितमेवैतद्वचनं नाऽपूर्वमिति दिक् ।

ननु ष्फप्रत्ययस्य स्त्रियामेव विधानादुक्तार्थानामिति न्यायेन पुनस्तदर्थं ङीष् न स्यादिति प्रादुर्भूतं पूर्वपक्षं निराकरोति—षित्वसामर्थ्यात्ष्फेणोक्तेऽपीत्यादिना । अयम्भावः, षित्वविधानसामर्थ्यादुक्तन्यायबाधेन ष्फप्रत्ययस्य स्त्रियां विधाने न कश्चित्प्रतिबन्धक इति । वस्तुतस्तु पञ्चकं प्रातिपदिकाऽर्थ इति सिद्धान्तसम्मते पक्षे प्रत्ययानां द्योतकत्वस्यैव युक्तत्वात् । तथा च द्योतकविषये नोक्तार्थानामप्रयोग इति न्यायप्रवृत्तिः । अत एव 'द्विर्बद्धं सुबद्धमि'ति न्यायबलेन व्यतिलुनीते इत्यादौ द्योतकसमुच्चयस्य दर्शनम् । एतद्विषये उक्तन्यायाऽप्रवृत्ताविदं षित्वमपि ज्ञापकमन्यथा स्पष्टमेवैतस्य वैयर्थ्यं स्यात् । अत एव, अक्ष्णा काण इति प्रयोगो 'येनाङ्गविकार' इति सूत्रभाष्योक्तः सङ्गच्छते । अन्यथा काणशब्दस्याऽक्षिगतविकारवाचकत्वेन तदुपादाने-

(१) तस्येति । प्रातिपदिकविशेषणस्येत्यर्थः ।

वाऽर्थादन्णो लाभे पुनरश्विशब्दप्रयोगस्योक्तन्याये नाऽप्राप्त्याऽऽनेना काः इति प्रयोग एव न स्यादित्यलम् ।

**सर्वत्र लोहितादीति ।** सर्वत्रेत्यस्य सर्वेषाम्मते इत्यर्थस्तेन नित्यत्वलाभस्तथा च लोहितादिभ्यो यञन्तेभ्यः कतशब्दान्तेभ्यश्च यञन्तेभ्यो नित्यं ष्फप्रत्ययः स्यात् । लौहित्यायनी, कात्यायनीति । लौहित्यशब्दात्कात्यशब्दाच्च ष्फप्रत्यये तस्याऽऽयनादेशे षित्वान्ङीषि तत्सिद्धिः । नन्वत्र प्राचामित्यस्य निवृत्त्यैव नित्यत्वसिद्धौ तदर्थं कृतं सर्वत्रग्रहणं व्यर्थमेवेति चेन्न । तस्य 'प्राचां ष्फतद्धित' इत्यत्राऽऽकर्षणेन बाधकविषयेऽपि प्राचामित्यस्य प्रवृत्तिसम्पादनेन सार्थक्यात् । उक्तसूत्रस्य बाधकविषयेऽपि प्रवृत्त्यभ्युपगमेन, आवट्यायनीत्यत्र 'आवट्याच्चे'ति चापं बाधित्वा प्राचां मते ष्फप्रत्यय एव । न च चापोऽपवादत्वात् तेन ष्फप्रत्ययबाधे कथमसाविति वाच्यम् । उदीचाम्मते ङीवबाधनेन चापश्चारितार्थ्यात् । 'प्राचां ष्फ' इत्यत्र सर्वत्रग्रहणाच्चापो ङीप्बाधकत्वमेव नत्वनन्तरष्फबाधकत्वम् । चापि कृते न ष्फप्राप्तिरत इत्यधिकारादित्यलम् ॥

**टाप् ङीषोरपवाद इति ।** 'कौरव्य-माण्डूकाभ्यां चे'त्येतद्विहितः ष्फप्रत्ययस्तयोर्बाधक इत्यर्थः । 'जातेरस्त्री'ति सूत्रेण योपधभिन्नाज्जातिवाचकान्ङीष्विधानात्कौरव्यशब्दस्य जातिवाचकत्वेऽपि योपधभिन्नत्वाऽभावादुक्तसूत्रविहितङीषोऽप्राप्त्या तस्माट्टाप् मण्डूकशब्दस्य जातिवाचकत्वाद्योपधभिन्नत्वाच्च ङीषिति विवेकः । टाप्-ङीपोरित्येव पाठो यद्यपि प्रायो दृश्यते तथापि ङीबिति लेखकप्रमाद एव, अथवा परिभाषिकस्य पुत्र-पौत्रप्रभृतिगोत्रस्यैव जातित्वेन न ङीषिति मतान्तरेण तादृशः पाठ उपपाद्य इति । कौरव्यसाहचर्यान्मण्डूकशब्दोऽप्यपत्यप्रत्यान्त एवात्र गृह्यते । तेन मण्डूकस्येयं भार्येत्यर्थे 'तस्येदमि' त्यणन्तस्य माण्डूकशब्दस्याऽग्रहणात् यद्यसौ 'कूपमाण्डूकी'ति भट्टिप्रयोगोपपत्तिरिति दिक् ॥

**परिमाणान्तात्तु-द्व्याढकीति ।** ननु न तद्धितलुकीत्येव सिद्धे सूत्रेऽपरिमाणग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न । अपरिमाणग्रहणाऽभावे आढकस्य परिमाणत्वेन तदन्तादपि ङीप्निषेधाऽऽपत्त्या द्व्याढकीत्यस्याऽसिद्ध्यापत्तेः । न च परिमाणान्तान्ङीब्निषेधाऽभावाय सूत्रेऽपरिमाणग्रहणकरणादेव द्विविस्तेत्यादेरपरिमाणान्तत्वात्ततोऽपि ङीप्निषेधसिद्धौ विस्तादिग्रहणं व्यर्थमेवेति वाच्यम् । आचितशब्दस्य परिमाणत्वेन ततो ङीप्निषेधाऽनापत्त्या तस्मादपि निषेधायाऽऽचितशब्दग्रहणस्याऽऽवश्यकत्वात् । न चापरिमाणाऽऽचिताभ्यान्न तद्धितलुकीत्येतावतैव सूत्रेण विस्त-कम्बल्ययोरुन्मानत्वादपरि-

माणत्वेन तदन्ताभ्यामपि निषेधसिद्धौ सूत्रे तयोर्ग्रहणं स्पष्टमेव व्यर्थमिति वाच्यम् । अन्यानान्तात्ङीब्निषेधश्चेत्तर्हि विस्त-कम्बल्यशब्दान्तादेवेति नियमार्थत्वेन सार्थक्यात् । एवञ्च सूत्रे विस्त-कम्बल्यशब्दान्तभिन्नत्वेन सङ्कोचाद्विस्त-कम्बल्यशब्दान्तभिन्नादपरिमाणान्तादाचितशब्दान्ताच द्विगोर्न ङीवित्यर्थेऽपरिमाणाऽचिताभ्यान्न तद्धितलुकीति योगेन विस्त-कम्बल्यशब्दान्ताभ्यां ङीब्निषेधानाऽप्रत्या तदर्थं तयोर्ग्रहणस्याऽऽवश्यकत्वेन स्वांशे चारितार्थ्यं जातम् । फलञ्च नियमस्य द्विनिष्कीत्यत्र ङीब्निषेधाऽभावः । अत्र सूत्रे परिमाणशब्देन—

'उदूर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः ।
आयामस्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः ॥

इति पारिभाषिकस्य परिमाणस्य ग्रहणात् द्विवर्षे भूता-द्वाभ्यां शताभ्यां क्रीतेत्यर्थे द्विवर्षा, द्विशतेत्यादौ, **तिर्यङ्माने** द्विहस्ता भित्तिरित्यादौ च निषेधसिद्धिरिति । 'अपरिमाणविस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धिते' इत्येवास्तु सूत्रं मास्तु च तत्र लुग्ग्रहणं द्विगोरित्यस्याऽनुवृत्तिः, तद्धितपदस्य तद्धितार्थपरत्वम्, तथा च तद्धितार्थे विद्यमानो योऽपरिमाणान्तो द्विगुस्ततो ङीब् नेत्यर्थे समाहारे पञ्चाश्वीत्यादिद्विगौ न निषेधः पञ्चाश्वेत्यपरिमाणान्तद्विगोस्तद्धितार्थेऽविद्यमानत्वादिति **केचित्तन्न** । अपरिमाणाद्यन्ताद्द्विगोर्यस्तद्धितस्तदन्तान्ङीब् नेत्यर्थस्यापि सम्भवादध्यर्द्धकार्षापणिकी, अध्यर्द्धसाहस्री वडवेत्यत्राऽपि निषेधप्रसक्तेः । अत्र च 'विभाषा कार्षापणसहस्राभ्यामि' ति विकल्पेन लुग्विधानं लुगभावपक्षे चोक्तरूपम्, तत्र निषेधो दुर्वारस्तस्माल्लुग्ग्रहणं कर्त्तव्यम्, कृते च तस्मिन्न दोषस्तद्धितलुकि सत्येव निषेधविधानादिति दिक् ॥

ननु परिमाणशब्दस्य परितः सर्वतः आरोहतः परिणाहतश्च मीयते येन तत्परिमाणमित्यर्थस्तथा च षोडशहस्तप्रमाणदण्डवाचककाण्डशब्दस्याऽऽयाममात्रपरिच्छेदकत्वात्प्रमाणत्वेनाऽपरिमाणत्वादनेनैव तदन्तादपि ङीब्निषेधसिद्धौ 'काण्डान्तात्क्षेत्रे' इति निषेधसूत्रं व्यर्थमिति चेन्न । तस्य काण्डान्ताद्द्विगोर्ङीब्निषेधश्चेत्क्षेत्रे एवेति नियमार्थकत्वेन सार्थक्यात् । एवञ्च द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः सा द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिरित्यत्रैव निषेधो न तु द्विकाण्डी रज्जुरित्यत्रापि इह काण्डस्य क्षेत्रेऽविद्यमानत्वादित्याशयेन प्रत्युदाहरति—**क्षेत्रे किम्, द्विकाण्डी रज्जुरिति** । निषेधस्य पूर्वसूत्रेण सिद्धत्वादेतत्सूत्रारम्भफलमपीह ङीबेवेति बोध्यमिति भावः ॥

ननु द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्या इत्यर्थे प्रमाणशब्दस्याऽपरिमाणत्वादपरिमाणाचितेत्यनेनैव निषेधसिद्धौ 'पुरुषात्प्रमाणे'ति सूत्रं व्यर्थमिति चेन्न । पुरुषस्योदूर्ध्वाधरदिगव-

स्थितवस्तुमात्रपरिच्छेदकत्वेनोन्मानत्वादुन्मानान्तानां ङीनिषेधवाक्ये विस्ताचितान्तादेवेति नियमादुक्तसूत्रेण निषेधाऽप्राप्तौ 'द्विगोरि'ति प्राप्तनित्यङीपं बाधित्वा वैकल्पिकङीष्विधानार्थमावश्यकत्वेन सार्थक्यात्। अत्र सूत्रे प्रमाणशब्दो नायामपरिच्छेदकवाची किन्तु परिच्छेदकमात्रपरः प्रमाणशब्दस्य परिच्छेदकमात्रपरत्वादेव, पुरुषविशेषणत्वं तस्य संगच्छते। प्रमाणशब्दस्याऽऽयामपरिच्छेदकवाचित्वे तु पुरुषस्याऽऽयामपरिच्छेदकत्वाभावात्तद्विशेषणत्वं तस्य सङ्गतं न स्यात्। जातिवचनस्याऽपि पुरुषशब्दस्य परिच्छेदकवाचित्वं 'पञ्चारत्निः पुरुषः' इति शुल्वसूत्रादत्र प्रमाण इति विशेषणाल्लोकव्यवहाराच्चेति वोध्यम् ॥

ननु लाघवात् 'ऊधसोऽनङ्' त्यस्य स्थाने ऊधसो न इत्थमेव सूत्रकरणस्य समुचितत्वेऽनङ्विधानं व्यर्थमेवेति चेन्न। तस्य 'धनुपश्चे'त्युत्तरार्थत्वेन सार्थक्यात्। अन्यथाऽप्रत्वाऽभावादगोऽनापत्त्या शार्ङ्गधन्वेति प्रयोगो नोपपद्येतेति **केचित्। केचि**च्च, अनङ्विधानस्येहार्थमप्यत्राश्यकत्वमेव, अन्यथाऽस्यानो लाक्षणिकत्वेन "लक्षणप्रतिपदोक्त" परिभाषया तदग्रहणात् 'अल्लोपोऽनः' इत्यस्याऽप्राप्त्या कुण्डोघ्नीति प्रयोगो न सिध्येदित्याहुस्तन्न। एतत्सूत्रस्थभाष्यप्रामाण्यादुक्तपरिभाषाया अल्लोपोऽन इत्येतद्विषयेऽप्रवृत्तेः ॥

ननु 'ऊधसोऽनङि'ति पृथक् योगं विहाय 'वहुव्रीहेरूधसो ङीष्' 'नश्चे' त्येवाऽस्तु सूत्रम्, 'अनङ्श्चे'ति वा समासान्तेषु 'ऊधसोऽनङि'त्येव च पठ्यतामिति चेन्न। तथा सति समासान्तकपो वैकल्पिकत्वेन तदभावपक्षे लब्धाऽवकाशस्योक्तसूत्रस्य कपा वाधाऽऽपत्तेः। धनुषोऽनङिति यथा न्यासे तु, अनङः समासान्तत्वेन शेषत्वाऽभावान्न कवापत्तिरिति भावः ॥

ननु 'ऊधसोऽनङ्' 'वहुव्रीहेरूधसो ङीष्' इति सूत्रद्वये स्त्रियामित्यधिकाराभावे कुण्डमिवोधो यस्य धेनूनां समूहस्येत्यर्थके कुण्डोधो धैनुकमिति प्रयोगेऽनङ् ङीपोरापत्तिः। तदधिकारे तु स्त्रीत्वरूपाऽर्थस्य तत्राऽगम्यमानत्वेन न तयोरापत्तिरित्यभिप्रायेण प्रत्युदाहरति-**स्त्रियां किम्। कुण्डोधो धैनुकमिति।** तत्र हेतुमाह—**तद्विधौ स्त्रियामित्युपसंख्यानादिति।** उक्तकार्यद्वयविधायकशास्त्रद्वये स्त्रियामित्यस्याऽधिकारात्स्त्रीत्वरूपार्थे गम्यमाने सत्येव तद्विधानादिति तदर्थः।

ननु 'दामहायनान्ताच्चेति' सूत्रे 'संख्याऽव्ययादेर्ङीप्' इत्यस्मादव्ययग्रहणस्याऽस्वरितत्वेन भाष्यकृताऽननुवर्तितत्वादुद्दामेत्यत्रोक्तसूत्राऽप्राप्त्या डाप्–ङीप्–निषेधेषु प्राप्तेषु वहुराजीवद्रूपत्रयं भवत्येवेत्यत आह—**अव्ययग्रहणाऽननुवृत्तेरुद्दामा वड-**

[illegible] पक्षे स्त इति । अपिना अन उपधेति ङीपश्च संग्रहः, [illegible]ऽणोऽनर्थकत्वेन कथमन उपधेत्यस्य प्राप्तिरिति वाच्यम् । "अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन तदन्तविधिं प्रयोजयन्ती"ति परिभाषयाऽन्ग्रहणेऽनर्थकस्यापि तस्य ग्रहणादिति भावः ॥

ननु संज्ञाशब्दानां नियताऽऽनुपूर्वीकत्वेनाऽनादित्वाच्छन्दसि दृष्टस्यैवाऽनुविधाना[illegible] च ङीपभावविशिष्टस्य प्रयोगासम्भवात्तादृशप्रयोगस्य च 'अन उपधे'त्येव सिद्धौ 'नित्यं संज्ञाछन्दसोरि'ति सूत्रं व्यर्थमिति चेन्न । 'केवल-मामक-भागधेये'त्युत्तरार्थत्वेन सार्थक्यात् । नचोत्तरार्थं कृतस्य नित्यं संज्ञा-छन्दसोरित्यस्याऽऽरम्भसामर्थ्यादेव नित्यत्वलाभेऽत्रत्यनित्यग्रहणं विफलमेवेति वाच्यम् । उत्तरसूत्रे विकल्पानुवृत्त्यर्थत्वेन साफल्यादिति भावः ।

ननु ममेयमित्यर्थेऽस्मच्छब्दात् 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्चे'त्यनेनाऽणि 'तवकममकावेकवचने' इति ममकाऽऽदेशे आचचो वृद्धौ मामकेत्यस्याऽण्णन्तत्वादेव ङीपि सिद्धे 'केवल-मामक-भागधेये'ति सूत्रस्थं मामकग्रहणं व्यर्थमेवेति चेन्न । अणन्तान्मामकशब्दाद्यदि ङीप् स्यात्तर्हि संज्ञा-छन्दसोरेवेति नियमार्थत्वेन सार्थक्यादित्यत आह— **मामकग्रहणं नियमार्थमिति** । नचाऽनेन मामकशब्दान्ङीप एव विधानात् "मामक-नरकयोरुपसंख्यानम्" इत्यत्र मामकग्रहणं व्यर्थमिति वाच्यम् । मां मातीति मामः मामं कायतीति मामिकेत्यत्रेत्वविधानार्थं तद्ग्रहणस्य सार्थक्यात् । नचाऽत्रापि केवल-मामकेत्यस्य प्राप्तिरिति वाच्यम् । भागधेयशब्दसाहचर्येण तद्धितान्तस्यैव मामकशब्दस्यात्र ग्रहणात् । नियमस्य व्यावर्त्यमाह— **तेन लोकेऽसंज्ञायां मामिकेति** । न च मामक-नरकयोरितिवार्त्तिकाऽऽरम्भसामर्थ्यान्ङीबभावकल्पनेन कथं मामिकेत्यस्य नियमव्यावर्त्यत्वमिति वाच्यम् । उक्तवार्त्तिकस्याऽऽप्परत्वाऽभावेऽपीत्वविधानेन चरितार्थत्वात्सामर्थ्यविरहेण ङीबभावस्य कल्पयितुमशक्यतया ङीपो दुर्वारत्वेनोक्तप्रयोगस्य नियमव्यावर्त्यत्वस्य सुलभत्वादिति भावः ॥

ननु 'तदस्याऽस्त्यस्मिन्निति मतुबि'ति सूत्रस्य तदिति प्रथमान्तात् षष्ठ्यर्थे सप्तम्यर्थे चाऽस्तिना सामानाधिकरण्ये सति मतुप्स्यादित्यर्थेऽस्तीत्यत्र तिङर्थकर्त्रा सह प्रथमान्तस्याऽभेदान्वयेन प्रथमान्तान्मतुप् सिद्ध्यति, तथा च, अन्तरस्त्यस्यां गर्भ इति विग्रहे मध्ये इत्यर्थकस्याऽन्तःशब्दस्याऽधिकरणशक्तिप्रधानत्वादस्तिसामानाधिकरण्याऽभावान्मतुप् न स्यात् । नचोक्तमतुब्विधायकसूत्रेऽस्तिग्रहणस्याऽस्तिसामानाधिकरण्याऽभावेनाऽस्तिशब्दान्मतुब्विधानार्थत्वादुक्तप्रयोगे मतुप् सुलभ एवेति वाच्यम् । तेन

प्रथमान्तादेव मतुपो विधानात् । अत एवाऽस्तिना सामानाधिकरण्याऽभावादत्रोतो मतुप् निपात्यते इति भाष्योक्तं सङ्गच्छते । एवञ्चोक्तरीत्या प्रकृते मतुप् नैव संभवदित्याशङ्कां समाधत्ते-गर्भिण्यां जीवद्भर्तृकायां च प्रकृतिभागो निपात्यते इति। नुक्सन्नियोगेन मतुपो विधानं वत्वं तु 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' इत्यनेनैव सिद्धिमिति भावः ।

ननु 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' इति सूत्रे संयोगपदं सम्बन्धोपलक्षणमित्यत आह— यज्ञेन सम्बन्ध इति । स्त्रिया इत्यर्थः । यद्यपि पतिशब्दः पुंल्लिङ्गस्तथापि स्ववाच्यकर्तृकयज्ञफलनिरूपितविलक्षणसम्बन्धो यदा स्त्रियां विवक्षितस्तदा पुंवाचकोऽपि तकारोत्तरेकारस्थानिकनकारघटितोऽयमेव पतिशब्दः स्वपूर्वत्वसम्बन्धेन ङीप्विशिष्टः स्वभावात्स्त्रियाम्प्रवर्त्तत इति तदाशयः । सम्बन्धश्च यज्ञफलप्रतियोगिकैश्वर्यवत्वन्तदाह - तत्कर्तृकयज्ञस्य फलभोक्त्रीति ।

ननु 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' इत्यत्राऽधिकृतस्याऽनुपसर्जनादित्यस्य पत्युरिति षष्ठ्यन्तेन सामानाऽधिकरण्याऽनुरोधात् षष्ठ्यन्तत्वकल्पनादनुपसर्जनस्य पत्युरिति तत्सम्बन्धिनोऽनुपसर्जनस्येत्यस्य 'पूतक्रतोरि'त्युत्तराऽर्थं 'विभाषा सपूर्वस्ये'त्यत्राऽनुवृत्तावपि न पत्युर्विशेषणत्वं किन्तु पतिशब्दाऽन्तस्येत्याशयेनाह—अनुपसर्जनस्येतीहोत्तरार्थमनुवृत्तमपि न पत्युर्विशेषणं किन्तु तदन्तस्येति । सपूर्वस्येत्यत्र व्याख्यानात्सहशब्दस्य विद्यमानवाचित्वं पूर्वशब्दस्य पूर्वाऽवयवपरत्वं तत्र पतिशब्दस्य विद्यमानपूर्वावयवत्वासम्भवाद्व्यभिचाराच्च सामर्थ्यात् "ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ती"ति प्रतिषेधं बाधित्वा पतिशब्देन तदन्तस्य ग्रहणात्केवलस्य पतिशब्दस्याऽत्राऽभावात्सपूर्वविशेषणसद्भावात्कथमनुपसर्जनस्येति केवलपतिशब्दस्य विशेषणम्भवितुमर्हतीति भावः । अनुपसर्जनस्येत्यस्य तदन्तविशेषणत्वे फलमाह—तेन बहुव्रीहावपीति । दृढः पतिर्यस्या इति विग्रहे पत्यन्तस्याऽनुपसर्जनत्वाद्विकल्पेन नकारे दृढपत्नी दृढपतिरिति रूपद्वयसिद्धिः अनुपसर्जनस्येत्यस्य पत्युर्विशेषणत्वे तूक्तविग्रहे पतिशब्दस्योपसर्जनत्वाद्रूपद्वयं न सिद्ध्येत् । बहवो वृषलपतयो यस्या इति कर्मधारयोत्तरपदबहुव्रीहौ पतिशब्दान्तस्य वृषलपतीत्यस्योपसर्जनत्वात्तत्राऽतिप्रसङ्गवारणायेहाऽप्यनुपसर्जनपदसम्बन्ध इत्यन्ये । (१) इदमुपसर्जनस्योपलक्षणम् , अतः पतिमतिक्रान्ताऽतिपत्नीति सिद्धमिति भावः ।।

ननु 'विभाषा सपूर्वस्ये'त्यत्र सहशब्दस्य विद्यमानाऽवयववाचित्वेन विद्यमानावयव-

---

(१) इदमिति । बहुव्रीहावपीतीत्यर्थः ।

पूर्वस्य पतिशब्दान्तप्रातिपदिकस्य नत्वमित्यर्थे समास एवास्य प्रवृत्तिः स्याद्वाक्ये न स्यात् । न च 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे' इत्यनेन वृषलस्य पत्नीति वाक्येऽपि सुलभ एवादेश इति वाच्यम् । तत्रापि यज्ञसंयोगे इत्यस्य सत्त्वाद् वृषलत्वेन यज्ञसंयोगाऽभावादस्याऽप्यप्रवृत्तेरित्याशयेनाशङ्कते—**अथ वृषलस्य पत्नीति व्यस्ते कथमिति चेदिति** । समाधत्ते—**पत्नीव पत्नीत्युपचारादिति** । अग्निसाक्षिकपाणिग्रहणाश्रयणादित्यर्थः । यज्ञफलप्रतियोगिकैश्वर्यवत्त्वस्याऽऽरोपादिति **केचित्** । वृषलस्त्रियां बहुधर्माचरणदर्शनादियं वृषलस्य पत्नी वशिष्ठस्य वेति लोकप्रवाद इत्यन्ये । नन्वेवं यज्ञसंयोग इति व्यावर्त्याऽभावाद्व्यर्थमित्याशङ्क्य समाधानान्तरमाह—**यद्वेति** । वस्तुतस्तु, आचारक्विबन्तप्रकृतिककर्तृक्विपि दृढप्रमाणाऽसत्त्वादियं प्रौढोक्तिः । पूर्वसूत्रे यज्ञसंयोगे इत्यस्य तु वृषलस्य पतिः स्त्रीत्यस्य साधनेन सार्थक्यमिति भावः ॥

ननु 'विभाषा सपूर्वस्ये'त्यत्र पत्युरित्यस्य प्रातिपदिकविशेषणत्वेन 'येन विधिरि'ति तदन्तविधौ पतिशब्दान्तस्येत्यर्थे दृढपत्नीत्यादिसिद्धावन्वयवाची पूर्वशब्दः किमर्थ इत्याशयेनाऽऽशङ्कते–**सपूर्वस्य किमिति** । प्रत्युदाहरणमुखेन समाधत्ते–**गवां पतिः स्त्रीति** । अयम्भावः, तदभावे केवलस्यापि पतिशब्दस्य व्यपदेशिवद्भावेन पतिशब्दान्तत्वादुक्तस्थलेऽतिप्रसङ्गः स्यादिति तदावश्यकं सति तु तस्मिन् गवामित्यस्य पूर्वं सत्त्वेऽपि तस्य पतिशब्दाऽवयवत्वाऽभावान्नाऽतिप्रसङ्ग इति । **वस्तुतस्तु**, व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेनेति निषेधेन केवलपतिशब्दस्य तदन्तत्वाऽभावात्सूत्राऽप्राप्त्या दोषाऽभावात्सपूर्वस्येति व्यर्थमेवेति दिक् ॥

ननु 'वृषाकप्यग्नी'ति सूत्रे भाष्ये वृत्तौ च वृषाकप्यर्थमुदात्तग्रहणमन्यथा 'लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुरि'ति मध्योदात्तापत्तेरित्युक्तम् । कुसिदशब्दस्य दीर्घमध्यत्वे तु कुसिदार्थमप्युदात्तग्रहणस्य वक्तव्यत्वात्तदनुक्त्या ह्रस्वमध्यत्वमेवोक्तशब्दस्य, न तु दीर्घमध्यत्वमित्यत आह—**कुसिदशब्दो ह्रस्वमध्यो न तु दीर्घमध्य इति** ॥

ननु 'वर्णादनुदात्ते'ति सूत्रेऽधिकृतस्याऽनुपसर्जनादित्यस्य "श्रुतानुमितयोरि"ति न्यायेन गृह्यमाणविशेषणत्वात् त्रीण्येतान्यस्या इति बहुव्रीहावेतशब्दस्याऽन्यपदार्थे विशेषणत्वेनोपसर्जनत्वान्ङीब्नत्वे न स्यातामित्याशङ्क्य समाधत्ते—**श्येण्या च शलल्येतीति** । अयम्भावः, लक्ष्यानुरोधेनोक्तन्यायं बाधित्वोक्ताधिकारस्य तदन्तविशेषणत्वमेवोचितम् । तथा च, तत्रैतशब्दस्योपसर्जनत्वेऽपि तदन्तस्याऽनुपसर्जनत्वान्न ङीब्नत्वयोः किमपि प्रतिबन्धकमिति । अत एव गृह्यसूत्रवृत्तिकृता

नारायणेनोक्तप्रयोगे बहुव्रीहिं कृत्वा ङीन्नत्वमित्युक्तमिति प्राञ्चः । नव्यास्तु—'उपमानानी'ति सूत्रस्थभाष्यस्वरसात् 'टिड्ढाणञि'ति सूत्रेऽनुपसर्जनादित्यस्य गृह्यमाणविशेषणत्वस्यैव क्लृप्तत्वेनेहाऽपि तस्य गृह्यमाणविशेषणत्वमेवोचितम् । अत एव कुम्भकपालं लोहितमिवेति विग्रहे कुम्भकपाललोहिनीत्यत्र लोहितशब्दस्योपसर्जनत्वाद्वर्णादनुदात्तादित्यनेनाऽनुपसर्जनलक्षण ईकारो न प्राप्नोतीत्याशङ्कितमुपमानानीति सूत्रे भाष्ये । एवञ्च त्रिषु स्थानेषु एनी श्येनीति सिद्धमित्याहुरिति दिक् ॥

ननु 'अन्यतो ङीषि'ति सूत्रेण तकारोपधभिन्नाद्वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात्प्रातिपदिकात् ङीष्विधानेन पिशङ्गशब्दस्य 'लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुरि'त्यनेन मध्योदात्तत्वाच्छेषस्य 'अनुदात्तं पदमेकवर्जमि'त्यनेनाऽनुदात्तत्वविधानाद्गुरुशब्दस्यानुदात्ताऽन्तत्वात्तस्मान्ङीषि प्राप्ते ङीवर्थं वार्तिकमवतारयति—पिशङ्गादुपसंख्यानमिति । वर्णवाचिनः पिशङ्गशब्दान्ङीप् स्यादिति तदर्थः, स च ङीप् न नित्यः किन्तु वैकल्पिक इति पिशङ्गेति रूपद्वयसिद्धिः । न च ङीष्विधानेनैवोपपत्तौ तं विहाय ङीप्विधाने को विशेष इति वाच्यम् । स्वरे विशेषादिति भावः ॥

**छन्दसि क्नमेक इति** । 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो न' इत्यनेन, असित–पलितयोस्तकारस्य प्राप्तं नत्वं बाधित्वा क्नमादेशं तत्सन्नियोगेन ङीपं चेच्छन्त्येके आचार्या इत्यर्थः । अत्र छन्दसीत्युक्त्या भाषायां क्नमादेशस्य भाष्यासम्मतत्वात् गतो गणस्तूर्णमसिक्निकानामित्यादयः प्रयोगाः प्रामादिका एवेति **प्राञ्चः** । वस्तुतस्तु, छन्दस्येके इत्यन्वयात् छन्दस्येवैके क्नमादेशमिच्छन्ति । **अन्ये तु** भाषायामपीति पर्यवसितोऽर्थः, तथा च नोक्तप्रयोगे काऽप्यनुपपत्तिः । अत्रैकग्रहणं प्रमाणमन्यथा भाष्यकारो नैकग्रहणं कुर्यादित्याहुरिति भावः ॥

ननु अवपूर्वकाद्दैप् शोधने इत्यस्माद्धातोः क्तप्रत्यये 'आदेच उपदेशेऽशिती'त्यात्वे निष्पन्नस्याऽवदातशब्दस्य विशुद्धवाचित्वेन वर्णवाचित्वाऽभावाद्वर्णादनुदात्तादिति ङीपोऽप्राप्त्या टावेवेत्यत आह—**अवदातशब्दस्तु न वर्णवाची किन्तु विशुद्धवाची । तेन अवदातत्येवेति** । न च 'अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुन' इत्यमरकोशेऽवदातशब्दस्य वर्णवाचित्वदर्शनात्तत्र ङीपो दुर्वारत्वेन कथमवदातेत्युक्तमिति वाच्यम् । तत्रापि विशुद्धत्वसाधर्म्याद्वदातशब्दप्रवृत्तिसम्भवादिति भावः ॥

**लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुरिति** । अन्ते नाम एकस्मिन् लघौ द्वयोर्लघ्वोश्च परतो बह्वषो बह्वच्कस्य गुरुरुदात्त इत्यर्थः ॥

ननु पितामहीत्यादिरूपसिद्ध्यर्थं 'पितृव्य–मातुल–मातामहे'ति सूत्रस्थस्य

...ल, १२ जून। गत वर्ष की तरह इस बार ...ी विजेता लंकाशायर एवं उपजेता वूस्टर ...ायर ५५ ओवरों वाले बेंसन-हेजेज क्रिकेट ...र्धा में आमने-सामने होंगे। लंकाशायर ने

टाम मूडी

...ार्क शायर को ६८ रनों से हराया वहीं ... ने शक्तिशाली एसेक्स को नौ विकेट से ... दिया।

...काशायर के ५४ ओवरों में २६८ के जवाब ... आफ द मैच मेटकाफ के, जिन्होंने १०४ ...ी शतकीय पाली खेली संघर्ष...

यार्कशायर की टीम ५० ओवरों में २०८ रनों पर सिमट गयी जबकि एसेक्स के १०४ रनों को वूस्टर शायर ने ३१ ओवरों में एक विकेट खोकर पार कर लिया।

चेम्सफर्ड में गूच के नेतृत्व वाली एसेक्स से मुकाबले की उम्मीद की जा रही थी लेकिन हरफनमौला इयान बाथम (३/११) की उत्कृष्ट गेंदबाजी और आस्ट्रेलियाई बल्लेबाज टाम मूडी (अजेय ७२) की बल्लेबाजी ने मामला मेहमानों

## बेंसन-हेजेज कप क्रिकेट

ने एकतरफा कर दिया। बाथम को 'मैन आफ द मैच' घोषित किया गया।

एसेक्स के लिए गूच और स्टीफेंसन ने पहले विकेट पर २५ रन जोड़ दिये थे लेकिन उसके बाद दोनों आउट हुए और पाकिस्तानी बल्लेबाज सलीम मलिक भी दस रन बनाकर चलते बनें। ...ग्रेगन को टाम मूडी ने प्वाइंट से थ्रो पर रन आउट कर दिया। फोस्टर ने अंतिम में दो चौके मारकर दल को सौ रन पार कराया। बाथम ने ११ ओवरों में छह मेडन रखकर ११ रन देकर तीन विकेट लिये। नील रैडफोर्ड को भी इतने ही विकेट मिले। वूस्टर ने ३१ ओवरों में लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

उधर ओल्ड ट्रेफर्ड में लंकाशायर ने टास हारकर पहले खेलते हुए गेहान मेंडिस और ग्रीम फाउलर (५८) के पहले विकेट पर २७ ओवरों में जोड़े गये १२५ रन से दिव्य शुरुआत की। मेंडिस ने भी अर्धशतकीय पाली खेली जबकि फेयरब्रदर ने ४१ गेंदों पर ४० रन बनाये।

जवाब में कप्तान मॉक्सन (१५) जल्दी आउट हो गये। तीन विकेट जल्दी गिर जाने के बाद रिचर्ड ब्लैकी (३८) और मेटकाफ (१०४) ने चौथे विकेट पर १०९ रन की भागीदारी कर संघर्ष करना चाहा लेकिन माइक वाटकिंसन (५/४९) ने ऐसा करने से उन्हें रोक दिया।

# ब्रिटेन समर्थन कर सकता है

लदन, १३ जून। दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद सुधार के बाद अंतर्राष्ट्रीय ... दक्षिण अफ्रीका आईसीसी ... नहीं है। उन्होंने १९७० के बाद अधि... नहीं खेला है।

# अजहर ... आकर्षक पाली

डर्बी (इंग्लैण्ड), १३ जून। ... प्रतिनिधित्व कर रहे भारत... अजहरुद्दीन की बल्ला आज... बैटरी के सामने मुखर हो ... वेस्टइंडीज के साथ खेले जा रहे ... मैच के दूसरे दिन ७२ रनों की ... खेल दी।

वर्षा के चलते आज प्रथम सत्र ... सका। वेस्टइण्डीज के कल के स्कोर (पांच विकेट पर पाली घोषित) ... डर्बीशायर ने लंच के बाद अपनी पा...

अजहर के अर्धशतकीय प्रहार... डर्बीशायर ने मेहमानों से ५७ रन ... आठ विकेट पर २०४ रनों के स्कोर ... पाली घोषित कर दी। कार्ल हूपर ... कल विण्डीज के लिए ८२ रनों की ... खेली थी, डर्बीशायर के तीन विकेट ...

खेल समाप्ति के समय वेस्टइंडीज ... पाली में १७ रनों पर अपने दो विके... थे। उसकी कल बढ़त ७४ रन...

दैनिक जागरण,

# राजीव की हत्या से भाजपा को नुकसान हुआ, सजपा को नहीं

लखनऊ, १३ जून (वा.)। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने आज यहां दावा किया कि उत्तर प्रदेश में समाजवादी जनता पार्टी की ही सरकार बनेगी।

श्री यादव ने आज यहां पत्रकार सम्मेलन में कहा कि १५ जून को होने वाले मतदान में उन्हें २० मई को हुए मतदान से ज्यादा सीटें मिलने की उम्मीद है क्योंकि इस बार उनके प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में मतदान हो रहा है।

एक प्रश्न के उत्तर में मुख्यमंत्री ने कहा कि कांग्रेस (इ) अध्यक्ष राजीव गांधी की हत्या से भाजपा को नुकसान हुआ है सजपा को नहीं। सजपा का वोट बैंक अपनी जगह बरकरार है।

श्री यादव ने कहा कि लोकसभा चुनाव के कुछ नतीजे हों, अल्पसंख्यकों की हिफाजत के लिए उनकी पार्टी का संघर्ष जारी रहेगा।

सवालों के जवाब में उन्होंने कहा कि राजीव गांधी की हत्या के बाद कांग्रेस (इ) के पक्ष में सहानुभूति लहर जैसी कोई बात नहीं है। लेकिन उसको कुछ फायदा जरूर मिलेगा।

मुख्यमंत्री ने कहा कि अल्पसंख्यकों के वोट नहीं प्रभावित होंगे और उनकी पार्टी को इनका भारी समर्थन मिलेगा।

यह पूछे जाने पर कि क्या वे अब भी यह महसूस करते हैं कि कांग्रेस (इ) उनकी पार्टी के काफी करीब है, उन्होंने कहा कि भाजपा की तुलना में कांग्रेस (इ) निश्चित तौर पर हमारे ज्यादा करीब हैं।

## दो बसों की टक्कर में तीन मरे ३५ घायल

हिसार (हरियाणा), १३ जून (प्रे.)। हिसार-रोहतक राजमार्ग पर अकबरपुर नामक गांव के निकट कल हरियाणा रोडवेज की दो बसों में आमने-सामने से हुई टक्कर में एक महिला समेत तीन व्यक्ति मारे गये और ३५ अन्य घायल हो गये। घायलों में सात की हालत गंभीर बतायी जाती है।

दो व्यक्तियों ने घटना स्थल पर ही दम तोड़ दिया, जबकि तीसरे की रोहतक मेडिकल कालेज अस्पताल ले जाते समय मृत्यु हो गयी।

...

## वाराणसी मंडल में भारी वर्षा की संभावना

# 'विभिन्न दलों में न्यूनतम...

वाराणसी, १३ जून (वा.)। प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने कहा कि, देश को वर्तमान कठिन स्थिति से निकालने और उसे एक रखने के लिये विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच सामान्य न्यूनतम कार्यक्रमों पर सहमति आवश्यक है।

श्री चन्द्रशेखर ने यह बात पूर्वी उत्तर प्रदेश के अपने तीन दिन के चुनाव दौरे के समय दिल्ली से आये संवाददाताओं से बातचीत के दौरान कही।

उन्होंने कहा कि, वह यह बात कोई पहली बार नहीं कह रहे हैं। उनकी हमेशा से यह राय रही है कि, देश सभी मुद्दों पर टकराव बर्दाश्त नहीं कर सकता।

उन्होंने याद दिलाया कि, सन सत्तर के दशक के शुरू में जब श्रीमती इंदिरा गांधी और जयप्रकाश नारायण के बीच टकराव की स्थिति पैदा हो गयी थी तब भी उन्होंने यही कहा था कि, देश हित में इस टकराव से हर कीमत पर बचा जाना चाहिये।

श्री चन्द्रशेखर ने ... की हत्या के पीछे देश ... साजिश की संभावना ... सकता।

उन्होंने यह भी क... विदेशी ... संभावना से भी ... लेकिन देश को ... ताकतों का ही ... उन्होंने कहा ...

साम्प्रदायिक तनाव, चाहे धा... भड़काई गयीं हों या अन्य भावना... हों इन सबके कारण ही देश की ... है।

## चंद्रशेखर को रा... विदेशी साजिश...

उन्होंने कहा कि, राष्ट्र ने ... साहस के साथ झेलने की कोशिश ... लोगों की उम्मीदों पर पानी फिर ... को तोड़ना चाहते हैं।

उन्होंने कहा कि, वह संसद ... दंगारोधी पुलिस तैनात किये जाने ... हैं।

श्री चन्द्रशेखर ने कहा कि, ... बढ़ते खतरे को देखते हुए संसद ...